॥ श्रीहरि ॥

ईश्वरकी सत्ता और महत्ता

सम्पादक

हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रथम संस्करणका निवेदन

सन् १९३३ मे 'कल्याण' का 'ईश्वराङ्क' प्रकाशित हुआ था। उस समय देश-विदेशके कुछ चुने हुए विभिन्न मतोंके संतो, विद्वानो और अध्ययनशील पुरुषोसे निम्नलिखित चार प्रश्नोंके उत्तर माँगे गये थे—

(१) ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

(२) ईश्वरको न माननेमें क्या हानि है ?

(३) ईश्वरके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है ?

(४) क्या आप अपना कोई निजी अनुभव बतला सकते है ?

इन प्रश्नोके उत्तर कई महानुभावोने लिखनेकी कृपा की थी। किन्हीं महानुभावने चारो प्रश्नके उत्तर लिखे थे तो किन्हींने तीन, दोके या एकका ही। किन्हीं महानुभावने व्यापकरूपसे लेख लिख भेजनेका अनुग्रह किया था। इन महानुभावोके वे प्रश्नोत्तर या लेख 'कल्याण' में 'ईश्वराङ्क' मे एवं उसके बादके अङ्कोंमे प्रकाशित हो चुके है। खेदकी बात है कि इन माननीय लेखकोमें अधिक-से-अधिक इस समय हमारे बीचमे नहीं रहे है।

उन्हीं लेखोमेंसे कुछ लेख पुस्तकाकार प्रकाशित किये जा रहे है। पुस्तक बहुत बडी होगी तो लोग उत्साहसे पढेगे नहीं, इस दृष्टिसे कई लेख महत्त्वपूर्ण होनेपर भी इसमे नहीं दिये जा रहे है। कुछ छोटे लेख ऐसे भी इसमें है जो पहले नहीं छपे है। आरम्भमे कुछ महात्माओके संकलित वाक्य है। आशा है, इस पुस्तकसे ईश्वर-सम्बन्धी बहुत-से संदेह दूर होंगे और अनीश्वरवादके घोर अन्धकारकी ओर जाती हुई जनताको प्रकाश मिलेगा।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

—— × ——

॥ श्रीहरि ॥

ईश्वरकी सत्ता और महत्ता

[कौन क्या कहते हैं]

(आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)

ईश-स्तवन

जागर्ति देव तव शक्तिरनन्तरूपा
व्याप्ता चराचरमये भुवनत्रयेऽस्मिन्।
तारापथे भुवि नरे च नरेश्वरे च
तोयेऽनले मरुति मृद्यपि साऽऽविरास्ते ॥

भगवन्! आपकी शक्ति और सत्ताकी इयत्ता नहीं। वह अनन्त है और इस चराचर त्रिभुवनमें अनेक रूपवाली बनकर व्याप्त है। वह है कहाँ नहीं? आग और पानीमे, पृथ्वी और आकाशमे, नर और नरेश्वरमे यहाँतक कि मरुत् (हवा) और मृत्तिकातकमें भी वह अपना काम कर रही है।

पश्यामि तां भुवननायक भूतमात्रे
दृष्टं हि नैकमपि वस्तु तया विहीनम्।
एतन्मुहुर्मुहुरहं मनसा विचिन्त्य
पारं न यामि परमेश्वर ते महिम्नः ॥

भुवनेश्वर! मैं उसे भूतमात्रमें विद्यमान देख रहा हूँ। ऐसी एक भी तो वस्तु नहीं जिसमे आपकी शक्ति या सत्ता न पायी जाती हो। परमेश! इन्हीं सब बातोंका विचार मन-ही-मन करके मैं हैरान हो रहा हूँ। आपकी महिमा या महत्ताका ओर-छोर नहीं। मैं पामर भला उसके

पार कैसे जा सकता हूँ ? यह तो मेरे लिये सर्वथा असम्भव है।

लोकैकदीपकमणौ द्युमणौ त्वदीय
सत्त्वं चकास्ति खलु यत्तिमिरापहारि।
तस्यैव कोऽपि भुवनाधिपते. सदंशो
रथ्यारजःकणगणेषु विराजतेऽयम् ॥

समस्त लोकोके लिये देदीप्यमान दीपकका काम देनेवाले भगवान् भास्कर जिस दीप्तिके द्वारा त्रिलोकीका अन्धकार दूर करते है, वह उनकी निजकी चीज नही। वह तो उन्हे आपहीने दी हे, आपहीकी कृपासे वह उन्हे प्राप्त हुई है, परतु इससे कोई यह न समझे कि वह एकमात्र उन्हींके हिस्सेमे पडी हे। नहीं, आपकी वही दीप्ति, वही शक्ति, वही सत्ता अलक्ष्यभावसे गलियोमे पडे हुए रज कणोतकमे भी व्याप्त है। ओह ! आपकी सत्ता और शक्तिमत्ता इतनी अद्भुत !

न ब्रह्मण. स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्
सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदितो न विपर्ययोऽत्र ॥

यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकारकी भेदबुद्धि तो आपको छू ही नहीं गयी, उसका तो आपमे लवलेश भी नही। कारण यह कि आप तो परब्रह्म, अतएव सभीकी आत्मा हैं, सभीमे आप व्यापक हैं। इसीसे तत्त्ववेत्ता आपको समदर्शी और स्वय सुखानुभवकर्ता कहते हैं। रागादि दोषोके सम्पर्कसे आप सर्वथा अछूते हैं। तथापि आपकी सर्वव्यापकता और समदर्शितामे एक विशेषता है, वह यह कि जो आपकी सेवा करता है, जो अनन्यभावसे आपकी शरण जाता है—उसीको आप, उसकी सेवाके अनुरूप कल्पवृक्षके सदृश फल देते हैं।

उसे सेवानुरूप ही आपका प्रसाद प्राप्त होता है। इसमे कदापि विपर्यय नही होता।

युक्तं रिपौ सुहृदि वा समदर्शनस्य
दोषोद्धतेऽपि यदि ते हृदयं दयार्द्रम्।
तत् साम्प्रतं गतिविहीनमनात्मनीनं
दीनं जनं प्रति कुतः करुणावलोपः ॥

भगवन्! आप समदर्शी है और समदर्शियोका क्या कर्तव्य होता है, यह तो आपको बतानेकी बात नहीं। उनके सम्मुख चाहे शत्रु आ जाय, चाहे मित्र। आत्मसमर्पणभर वह कर दे? फिर चाहे उसने जितना भीषण अपराध किया हो, चाहे उसमे बड़े-से-बड़े दोष ही क्यो न हो, समदर्शियोका हृदय तो ऐसी दशामे ऐसोपर भी दयार्द्र ही हो जाता है। आपका हृदय भी ऐसा ही है। तो फिर आप ही बताइये—क्या कारण है जो अब भी आप मुझ दीन, गतिविहीन और पुण्यहीन पामरपर कृपा नही करते? मेरे विषयमे आपको अपनी करुणाकी याद क्यो नहीं आती?

अभ्युद्गमोऽयमशनेरमृतांशुबिम्बात्
स्वामिन्नसौ दिनमणेस्तिमिरप्ररोहः।
युष्मादृशस्य करुणाम्बुनिधेरकस्मा-
दस्मादृशेष्वशरणेष्ववधीरणं यत् ॥

*आपके पास करुणाकी कमी तो है नहीं। लोटे-दो-लोटे या घड़े-*दो-घड़ेकी तो बात ही नहीं; उसका तो अथाह सागर ही आपके विशाल हृदयमें लहरा रहा है। इस दशामे स्वामिन्! यदि आप मुझे उसका एक कण या एक बूँदतक पानेका पात्र या अधिकारी न समझकर मुझ निःशरण और निराश्रय जनका तिरस्कार करेगे तो मै यही समझूँगा कि

उन्हीकी पुनरुक्ति करनेसे क्या लाभ ? वह सब व्यर्थ होगा। इस तरहके इन निष्फल, पुनरुक्ति-दूषित प्रलापोसे तो मेरा हृदय और भी उद्विग्न हो उठता है। यह सब मैं जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ, परतु फिर भी मै करुणाजनक रुदन न करूँ—फिर भी न रोऊँ-धोऊँ तो करूँ क्या ? आपके सिवा मुझे कही अन्यत्र शरण मिलनेकी आशा भी तो नही। मेरे शरण्य तो एकमात्र आप ही है।

अन्यद् ब्रवीमि किमहं जगदेकबन्धो
बन्धुर्न कोऽपि मम देव सुतोऽपि नास्ति।
तत् ते पदाब्जविमुखस्य महाधमस्य
हस्ते तवैव करुणाम्बुनिधे गतिर्मे॥

जगदेकबन्धो ! मै और अधिक बाते बनाना नही चाहता, और अधिक कहने-सुननेकी शक्ति भी मुझमे नही। मेरा कोई सहायक भी तो नहीं। आपसे छिपा नहीं, मैं तो बन्धु-बान्धवोसे भी रहित हूँ, ससारमे सुत-दारा आदि आत्मीय भी मेरा कोई नही। अतएव करुणासागर ! आपके पाद-पद्मसे विमुख मुझ नि सहाय और महाधमकी गति केवल आपके हाथ है। मुझे तो बस, एक आपका ही भरोसा है। चाहे पार लगा दीजिये, चाहे ससृतिके गहरे गर्तमे पडा ही रहने दीजिये। **'यदिच्छसि तत्कुरु।'**

═★═

श्रीरामकृष्ण परमहंस
(संकलित)

ईश्वरको तुमलोग देख नही सकते, क्या इसीसे कह दोगे कि वह है ही नही ? दिनको तारे नही दीख पडते, तो क्या तुम कहोगे कि तारे हैं ही नहीं ? सूरजके तीखे तेजमे दिनको तारे नही दीख पडते, वैसे ही माया और अहकारके आच्छादनसे मनुष्य ईश्वरको नही देख सकता।

दूधमे मक्खन रहता है, पर वह मथनेसे ही निकलता है, वैसे ही ईश्वरको जो जानना चाहे, वह उसका साधन-भजन करे।

भगवान् सगुण भी है और निर्गुण भी तथा गुणातीत भी। जब वह सगुण रहता है, तब उसे ईश्वर कहते है, जब वह निर्गुण रहता है, तब उसे ब्रह्म कहते है और उसकी गुणातीत अवस्थाको तो हम मुँहसे कहकर समझा ही नही सकते।

ईश्वरके दर्शनकी इच्छा रखनेवालोको नाममे विश्वास तथा सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये। एक डुबकीमे रत्न न मिला, इससे रत्नाकरको रत्नहीन मत समझ बैठना। डुबकी लगाते ही जाओ, रत्न अवश्य मिलेगा। अल्प साधना करनेपर ईश्वर-दर्शन न हो तो हताश न होना चाहिये। धीरज रखकर साधन करते रहो। यथासमय ईश्वरकी तुमपर अवश्य ही कृपा होगी।

जल एक है। कोई उसे, 'पानी' कहता है, कोई 'वाटर' और कोई 'अम्' कहता है। इसी प्रकार भगवान्को कोई 'गॉड', कोई 'हरि', कोई 'राम', कोई 'यीशु' और कोई 'अल्लाह'

कहता है। वस्तु एक ही है, केवल नाममे भेद है। ससारमे केवल ईश्व ही सत्य है और सब असत्य है।

जिसके मनमे ईश्वरका प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे ससारका औ सुख अच्छा नही लगता। जो एक बार भी बढिया मिस्रीका स्वाद ले चुका, वह क्या कभी राब खाना चाहेगा ?

लोग भला कहे या बुरा उनकी बातोपर जरा भी ध्यान न देकर ससारकी स्तुति और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके पथपर चलना चाहिये।

अपने सब कर्मफल ईश्वरके अर्पण कर दो, अपने लिये किसी फलकी कामना मत करो।

जिस घरमे नित्य हरि-सकीर्तन होता है, वहाँ कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता। ईश्वरको पानेका उपाय विश्वास है, जिसको विश्वास हो गया उसका काम बन गया।

ईश्वरके नाममे ऐसा विश्वास चाहिये कि मैंने उसका नाम लिया है इससे अब मुझमे पाप कहाँ है ? मेरे बन्धन अब कहाँ हैं ?

—★—

स्वामीजी श्रीदयानन्दजी

(संकलित)

जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवोंको कर्मानुसार अपने सत्य न्यायसे फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसीको मै ईश्वर मानता हूँ। सब सत्य विद्या तथा जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते है, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

═══ ★ ═══

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

(संकलित)

ईश्वर सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्तस्वरूप है, वे आनन्द शक्ति और अमृतत्वके मूल है। वे कल्याणमय, एक, अद्वितीय, पवित्र, निरञ्जन, निराकार, स्वतन्त्र, अनुपम, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी है। वे ही सृष्टिकर्ता और प्रतिपालक है। इस सृष्टिके पहले कुछ नही था, वे ईश्वर ही थे, उस समय न दिन था, न रात। पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष, जल, वायु, पर्वत, नदी, वृक्ष, लता आदि कुछ भी नही थे। ईश्वरने अपनी इच्छासे इन सबका सृजन किया। ईश्वर ही मूल सत्य हैं। ईश्वरमेसे ही सब पदार्थोकी सृष्टि हुई है। प्रत्येक पदार्थमे प्राणरूपसे परमेश्वर ही ओतप्रोत है। वे सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी और प्रत्येक घटनाके निरीक्षक हैं। उनसे छिपाकर कुछ भी नहीं रखा जा सकता। वे अन्तर्यामी, असीम, अनन्त तथा मन-वाणीके अगोचर हैं, स्वयज्योति और स्वयम्भू हैं। वे स्वय यदि मनुष्यके हृदयमें प्रकट न हो तो मनुष्य उनके दर्शन करनेमे असमर्थ है। वे आनन्द, शान्ति और अमृतके निर्झर हैं। वे मङ्गलदाता, पवित्र और सचेत जाग्रत् भावसे सर्वत्र व्यापक हैं। इस प्रकार ईश्वरके स्वरूपका विचार करके उनकी पूजा करनेको आराधना कहते हैं। समस्त विश्वमें उनकी महिमाके दर्शन कर भक्तिपूर्वक उन्हे प्रणाम करना आराधना है।

ईश्वरके चिन्तनका नाम ही ध्यान है। परमेश्वर हमारे हृदयमे विराजमान हैं, इस प्रकार सतत चिन्तन करनेसे अन्त.करणमे प्रभुका प्रकाश होता है और प्रभुकी दिव्य ज्योतिके दर्शन होते हैं। ·· · प्रभुका प्रकाश मिलते ही उनका स्तवन करनेकी स्वयमेव इच्छा होती है। उनका गुण-कीर्तन और उनकी महिमाका गान ही स्तवन है। इस स्तवनकी भी समाप्ति नही है। स्तवन करते-करते जब मन आनन्द-सागरमे डूबने लगता है तब उनके चरण-कमलोमे आत्मसमर्पण किये बिना रहा ही नही जाता।

━━ ★ ━━

स्वामी रामतीर्थ

(संकलित)

ऋषिकेशके पासका जिक्र है कि गङ्गाके इस पार बहुत साधु रहते थे और उस पार एक मस्त रहता था। उसके रगोरेशेमें (अनहलहक) 'शिवोऽह' बसा हुआ था। रात-दिन यह आवाज आया करती थी— **'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** एक दिन वहाँ एक शेर आया। साधु इस पारसे देख रहे थे कि शेर आया और उसने महात्माकी ओर रुख किया। वह महात्मा शेरको देखकर उच्च स्वरसे कह रहा था—**'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** उसकी धारणामे यह जमा हुआ था कि यह शेर मैं ही हूँ, सिह मैं ही हूँ। स्वय केसरीके शरीरमे स्वर भर रहा हूँ—**'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** वनराजने आकर इनके कधेको पकड लिया तो वह (महात्मा) आनन्दके साथ सिहके रूपमे नर-मासका स्वाद ले रहे थे और आवाज निकल रही थी— **'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** दीवालीमें खाँडके खिलौने बनते हैं। खाँडके हिरन और खाँडके शेर। अगर खाँडका हिरन अपने-आपको नाम-रूपरहित विशेषणके साथ समझे कि मैं हिरन हूँ तो क्या वह यह कहेगा कि खाँडका शेर मुझको खा रहा है। यदि वह अपने-आपको खाँड मान ले तो खाँडका मृग कह सकता है कि खाँडके रूपमे मैं ही इधर हिरन और उधर शेर हूँ। इसी तरह जब तुम जानो कि तुम्हारी असलियत क्या है, वह इस खाँडके अनुरूप ईश्वरका स्वरूप है। अत इस खाँडके शेरकी दशामें तुम ईश्वरकी हैसियतसे यह कह सकते हो कि मै इधर हिरन और उधर शेर हूँ।

पगडी, पायजामा, दुपट्टा, अँगरखा गौरसे देखा तो सब कुछ सूत है।

दामनी तोड़ी तो मालाको गढ़ा, पर निगाहे-हकमें वह भी थी तिला।

प्यारे ! यह महात्मा वह दृष्टि रखते थे। जिस समय सिंह खा रहा था उस समय वह क्या-क्या स्वाद ले रहे थे। आज नर-रक्त हमारे मुँह लगा। टॉग खायी तो भी **'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।'** पर्दा पहले ही पतला था, मगर सरकाया गया।

सिकन्दर जब भारतवर्षमे आया और उसने देखा कि जितने देश मैंने जीते, सबसे अधिक सचाईवाले बुद्धिमान् और रूपवान् भारतवर्षमे ही देखे। उसने कहा—'इस भारतवर्षके सिर अर्थात् तत्त्ववेत्ताओ और ज्ञानियोको देखना चाहता हूँ।' सिकन्दरको सिन्धुके किनारे ले गये। वहॉ एक अवधूत बैठे थे। सिकन्दर सारे संसारका सम्राट्, वहॉ लंगोटी भी नही। सामना किस गजबका है। सिकन्दरमें भी एक प्रताप था। मगर मस्तकी निगाह तो यह थी—

शाहोको रोब और हसीनोको हुस्नो-नाज।
देता हूँ, जब कि देखूँ उठाकर नजरको मै॥

सिकन्दरपर उस मस्तका रोब छा गया। उसने कहा—'महाराज। कृपा कीजिये। यहॉके लोग हीरेको गुदड़ीमें लपेटकर रखते है। पश्चिममें जरा-जरा-सी चीजोकी बडी कदर की जाती है। मेरे साथ चलो, मैं तुझे राज-पाट दूँगा, सम्पत्ति दूँगा, धन दूँगा, हीरे-जवाहिरात दूँगा, जो कुछ चाहो सब दूँगा, लेकिन मेरे साथ चलो।' महात्मा हँसे और बोले—'मैं हर जगह हूँ, मेरी दृष्टिमे कोई जगह नहीं है।' सिकन्दर नही समझा। उसने कहा—'अवश्य चलिये।' और वही लालच फिर दिखलाया। मस्तने कहा—'मुझे किसी चीजकी परवा नहीं, मैं अपना

फेका हुआ थूक चाटनेवाला नही।' सिकन्दरको क्रोध आ गया और उसने तलवार खींच ली। इसपर साधु खिलखिलाकर हँसा और बोला—'ऐसा झूठ तो तू कभी नही बोला था, मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार।'

'बच्चे रेतमे बैठकर रेत अपने पैरोपर डालते हैं। आप ही घर बनाते है और आप ही ढाते हैं।' रेतका क्या बिगडा ? जो पहले थी वह अब भी है। प्यारे। इसी तरह उस साधुकी दशा थी। यह शरीर उसको वालूके घरकी तरह है, जो लोगोकी कल्पनामे उनकी समझका घर बना था। मैं तो बालू हूँ। घर कभी था ही नहीं। अगर तुम या जो कोई इस घरको बिगाडता है, वह अपना घर खराब करता है।

'तारे क्या रोशनीसे न्यारे है। तुम हमारे हो हम तुम्हारे है॥'

उत्तर सुनकर सिकन्दरके हाथसे तलवार छूट पडी।

एक भगिन थी जो किसी राजाके घरमे झाड़ू दिया करती थी। कभी-कभी उसको सोना या मोती इनाममे मिल जाता था। कभी गिरे-पडे उठा लाती थी। उसका एक लडका था, जो बचपनसे परदेश गया हुआ था। जब वह पद्रह वर्षका हुआ, तब घर आया। देखा कि उसकी माँने झोपडीमें लालोका ढेर लगा रखा है। उसने पूछा-चीजे कहाँसे आयीं ?' मेहतरानीने कहा—'बेटा। मै एक राजाके यहाँ नौकर हूँ, ये उनके गिरे-पडे मोती हैं, जिनका यह ढेर है।' लडका अपने मनमे कहने लगा, जिसके गिरे-पडे मोती ऐसे उत्तम हैं, वह आप कैसी रूपवती होगी ? यह खयाल आया था कि उसके मनमे प्रेम छा गया और अपनी माँसे कहने लगा कि मुझे उसके दर्शन कराओ। ये तारे-सितारे, यह चन्द्र-सूर्य, ये झलकती हुई नदियाँ, यह सासारिक रूप-सौन्दर्य उस सचाईके गिरे-पडे मोती हैं। अरे। जिसके गिरे-पडे

मोतियोका यह हाल है तो उसका अपना क्या हाल होगा ?

लगाकर पेड फूलोंके किये तकसीम गुलशनमें।
जमाया चाँद-सूरजको सजाये क्या सितारे हैं॥

जिस समय कन्याओंका विवाह होता है उनके डोलेपरसे रुपये-पैसे, अशर्फियाँ न्योछावर करते हैं और ऐ महात्माओ ! तुम उन चीजोंको चुनो । रामकी आँख तो उस दुलहिनके साथ लडी। जिसका जी चाहे इन मोतियोंको भरे। रामके पास तो जामा भी नहीं है, फिर दामन कहाँसे लावे ।।।ॐ।ॐ।।ॐ।।।

★

श्रीअरविन्द

(संकलित)

जगत्मे जो कुछ है, सब भगवान्का प्रकाश है, क्योकि भगवान् ही एकमात्र सत् वस्तु हैं। उनकी मूर्ति या अशके अतिरिक्त और किसीका भी अस्तित्व नही है। सभी जीव नाम-रूपकी सीमाके अदर असीमका ही आत्मप्रकाश है। अवश्य ही भगवान्के प्रकाशका भी क्रम है। भगवान् नित्य शुद्ध, परब्रह्म है। साधारण जीवमे भगवान्का अश मायाके आवरणसे आबद्ध है, जीव ज्ञानके प्रकाशद्वारा अपने देवत्वकी क्रमश उपलब्धि कर सकता है। स्थान-स्थानपर भगवान्की विशेष शक्तियोका आविर्भाव होता है। उनको विभूतिके नामसे पुकारा जाता है, किंतु जब वही अज, अव्ययात्मा ईश्वर स्वय जगत्के कल्याणके लिये अपनी मायाको वशीभूत करके लौकिक देह ग्रहण करते हैं—मानव-शरीरमे जन्म ग्रहण करते हुए प्रतीत होते हैं—सर्वशक्तिमान् होकर भी मानवोचित शरीर-मन-बुद्धिके द्वारा कर्म करते हैं—तभी उनको अवतार कहा जाता है।

मनुष्यके अदर भी भगवान् हैं। मनुष्य जिस दिन इस बातकी सम्यक्-रूपसे उपलब्धि करता है, उसी दिनसे वह भगवान्में निवास करता है। वेदान्तवादियोंमें वैष्णवोने नर-नारायणके रूपकको अवलम्बन करके इस तत्त्वको खूब दिखलाया है। नर नारायणका सदैव साथी है। नर अर्थात् जीवात्मा जिस दिन यह समझ लेता है कि मैं नारायण अर्थात् परमात्माका सखा हूँ, उसी क्षण वह स्वरूपमें

स्थित हो जाता है—उसी समयरं ह भगवान्‌के निकट निवास करता है—'**निवसिष्यसि मय्येव।**' भगवान् सब समय ही सखारूपसे हमलोगोंके समीप रहते हैं—हमलोगोंके हृदय-रथमे वे सर्वदा ही सारथिरूपमे विराजित हुए हमलोगोको चलाते है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

वे हमलोगोके कितने अपने हैं, कितने निकटतम बन्धु हैं, हाथ पकड़कर वे किस प्रकार हमलोगोको चला रहे है—इस बातको हमलोग नहीं समझते। जिस दिन मायाका आवरण, अज्ञानका अन्धकार हट जायगा, मनुष्य हृदिस्थित हृषीकेशके सम्मुख आयेगा, उनकी वाणी सुनकर प्रमादको नष्ट करेगा, उनकी शक्तिसे कर्म करेगा—उसी दिन वह अपनी मन-बुद्धिको भगवान्‌मे सम्पूर्णभावसे समर्पण करनेमे एव भगवान्‌के अंदर निवास करनेमे समर्थ होगा, इसीको गीताने 'उत्तम रहस्य' बतलाया है।······

★

महात्मा गाँधीजी

(१)

विश्वास

इस जगत्मे कोई अवर्णनीय छिपी शक्ति घट-घटमे भरी हुई है। यह मुझे इन ऑखोसे तो नही दिखायी देती है, फिर भी मुझे यह प्रतीति जरूर होती है कि वह है। वह अदृष्ट शक्ति हमपर किसी-न-किसी तरह अवश्य प्रभाव डालती है। उसके वर्णनके लिये कोई विशेषण काफी नही हो सकता, क्योकि वह इन्द्रियातीत है, अपनी इन्द्रियोसे हम जो कुछ भी जान सकते है, उससे वह भिन्न है।

फिर भी थोडे अशमे ईश्वरकी हस्तीको सिद्ध करनेके लिये बुद्धि-तर्कका प्रयोग हो सकता है। सामान्यत प्राकृत जगत्मे भी हम जानते है कि कई लोग अपने राजाको न तो पहचानते ही है, न उसके विषयमे उन्हे कुछ ज्ञान ही होता है कि वह राजा कैसे और क्यो राज्य करता है। ऐसा होते हुए भी वे लोग इतना निश्चित जानते है कि कोई-न-कोई राजा अवश्य है। मैसोर-यात्रामे मैने ऐसे अबोध लोग पाये जिनको पता नही था कि मैसोरमे कौन राज्य करता है, जब मैने उनसे पूछा, तब उन्होने जवाब दिया—'कोई देव राज्य करता होगा।' इससे यह नतीजा निकलता है कि जब इन लोगोका ज्ञान अपने राजाके बारेमे इतना कम है, तब मेरा ज्ञान ईश्वरके बारेमे और भी कितना कम होना चाहिये, क्योकि जितना अन्तर उन लोगोके और उनके राजाके बीचमे है, उससे बहुत अधिक मेरे और ईश्वरके दर्म्यान है। ऐसी दशामें यदि मैं उस

राजेश्वर-परमात्माका साक्षात्कार नहीं कर पाता हूँ तो इसमें कौन-सा आश्चर्य हो सकता है ? परतु जिस प्रकार मैसोरके गरीब लोग अपने राजाको न जानते हुए भी यह जानते हैं कि हमारे देशमे कुछ-न-कुछ व्यवस्था जरूर है, ठीक उसी तरह मैं भी जानता हूँ कि इस जगत्मे एक बडी व्यवस्था कायम है। मैं अनुभव करता हूँ कि इस विश्वकी प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीवधारी एक अविचल नियन्त्रणके मातहत काम कर रहे हैं। वह नियन्त्रण जड नहीं हो सकता; क्योंकि कोई जड नियन्त्रण चैतन्यमय मनुष्यपर शासन नहीं कर सकता। अब तो श्रीजगदीशचन्द्र वसुने हमे सिद्ध कर दिखाया है कि इस जगत्में सब चीजे चैतन्यमय हैं। इसलिये हम यह क्यो न कहे कि जो शक्ति जीवमात्रको नियमबद्ध रखती है, वही ईश्वर है। इसमें शक्ति और उसका सचालक नियम और नियन्ता एक ही है। परंतु इसलिये कि मैं उस नियम और नियन्तासे अनजान हूँ, मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं उसकी हस्तीसे ही इनकार कर दूँ। जिस तरह प्राकृत राजाकी हस्तीसे इनकार करनेसे उसकी हस्ती मिट नहीं सकती, न कोई लाभ ही हासिल हो सकता है, ठीक इसी तरह ईश्वरकी हस्तीके इनकार या अज्ञानसे कुछ हासिल नहीं हो सकता। मै ईश्वरी कानूनकी पाबंदीसे किसी प्रकार छूट नही सकता। बल्कि जैसे प्राकृत राजाकी हस्ती और उसके नियमोको माननेसे उलटा उसके शासनमे रहना सरल होता है, उसी तरह ईश्वर और उसके नियमोके ज्ञान और स्वीकारसे इस ससारमे जीवन सरल बनता है।

मुझे यह निरन्तर अनुभव होता है कि मेरे इर्द-गिर्द सब वस्तुओमे परिवर्तन होता ही रहता है और इस परिवर्तनके अदर कोई अपरिवर्तनीय तत्त्व समाया हुआ है। वह अपरिवर्तनीय, अविचल

शक्ति सबको धारण कर रही है, सबको पैदा करती है, सबका नाश करती है और फिरसे रचना करती है, इसी शक्तिको ईश्वर कहिये, क्योंकि दृष्ट पदार्थमात्रका नाश होता रहता है, इससे मै इस नतीजेपर पहुँचता हूँ कि एक अदृष्ट ईश्वर ही कायम है।

अब प्रश्न यह है कि यह शक्ति पोषक है या नाशक ? देवी है या राक्षसी ? मै उसे पोषक और दैवी अनुभव करता हूँ, क्योंकि इस मृत्युमय ससारमे जीवन-प्रवाह अविच्छिन्न चल रहा है। असत्य नाशवान् है, एक सत्य ही स्थिर है। अँधेरेमे भी प्रकाश भरा ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर चेतन है, सत्य है, प्रकाश है। ईश्वर प्रेमकी मूर्ति है, वही शुभतम शुभ है।

परतु जो केवल बुद्धिको ही––तर्कको ही सतुष्ट करके रह जाय, वह ईश्वर कहाँसे हो सकता हे ? फिर बुद्धिको तो निश्चितरूपसे सतुष्ट करना असम्भव-सा है। इसलिये ईश्वर तो वही है, जो हृदयका स्वामी बन सकता है, जो उसको हिला सकता है। अपने भक्तके प्रत्येक कार्यमें उस प्रभुकी प्रतीति होनी चाहिये और यह प्रतीति तो साक्षात्कारसे ही हो सकती है। यह साक्षात्कार इन्द्रियोद्वारा होनेवाले अनुभवोंसे परे होता है। इन्द्रियोका अनुभव मिथ्या हो सकता है, परतु इन्द्रियोसे परे जो अनुभव होता है, उसमे भ्रम या गलती नहीं हो सकती। वह बाहरी प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता बल्कि मनुष्यके परिवर्तित जीवन––कायापलटसे होता है। यह प्रमाण हमे पैगम्बरों और ऋषि-मुनियोके जीवनसे, उनके अनुभवोंसे मिलता है। उनके वचनोंको न मानना अपनी हस्तीको न मानना है।

परतु इस साक्षात्कारके पहले अचल श्रद्धा होती है। जो मनुष्य ईश्वरका दर्शन करना चाहता है, वह ऐसी श्रद्धा रखकर ही कर सकता है।

क्योकि श्रद्धाका प्रमाण बाहरी चीजोंसे नही मिल सकता, इसलिये हमें चाहिये कि हम जगत्के न्याय शासनको स्वीकार करे और विश्वास करें कि जगत् सत्य और अहिंसापर निर्भर है। यह प्रतीति सत्य और अहिंसाके अभ्याससे आ सकती है।

मुझे स्वीकार करना होगा कि श्रद्धाका प्रमाण मैं बुद्धिके द्वारा नहीं दे सकता। श्रद्धा बुद्धिसे परे है। इसलिये कोई असम्भवको सम्भव बनानेकी चेष्टा न करे। पापवृत्तिके अस्तित्वके लिये तर्कद्वारा कोई कारण नही बताया जा सकता। ऐसा करनेकी इच्छा रखना ईश्वरके साथ मुकाबला करने-जैसा होगा। इसलिये मैं तो नम्रतापूर्वक उसके अस्तित्वको स्वीकार करके ही रह जाता हूँ। ईश्वरको मैं बहुत सहनशील और धैर्यवान् कहता हूँ, क्योकि वह जगत्मे पापवृत्तिको रहने देता है। में जानता हूँ कि ईश्वर सर्वथा निष्पाप है। मै यह भी जानता हूँ कि जिदगीका सौदा करके भी अगर मै पापवृत्तिसे मुकाबला न करूँ तो मैं कभी ईश्वरकी पहचान नहीं कर सकूँगा। मेरे नम्र और मर्यादित अनुभवसे मेरा यह मन्तव्य दृढ हुआ है, जितना में शुद्ध होनेकी कोशिश करता हूँ उतना ही मैं ईश्वरके नजदीक जा रहा हूँ——ऐसी प्रतीति होती है। आज तो मेरी श्रद्धा यत्किंचित् ही कही जा सकती है, लेकिन जब वह हिमालय-जैसी अचल और उसकी चोटीपर बसनेवाले हिमकी तरह शुद्ध और स्वर्णमय बन जायगी, तब मैं उसके कितना नजदीक पहुँच जाऊँगा ? तबतक तो स्वर्गीय 'न्यू मैन' के शब्दोमें हम गावे——

(१) हे दयामयी ज्योति ।

(२) इस अँधेरेमें तू ही मेरा अगुआ बन।

(३) रात अँधेरेसे छा गयी है।

(४) मै घरसे दूर-दूर भटक रहा हूँ।

(५) तू ही मेरा अगुआ बन।
(६) मेरे पैरोको साबित रख।
(७) मुझे दूरके दृश्यकी कोई दरकार नहीं हे।
(८) बस, मेरे लिये तो एक कदम ही काफी हे।

(२)

प्रार्थनाका महत्त्व

ईश्वर-प्रार्थनाने मेरी रक्षा की। प्रार्थनाके आश्रय बिना मैं कबका पागल हो गया होता। अन्य मनुष्योकी भॉति मुझे भी अपने सार्वजनिक एव व्यक्तिगत जीवनमें अनेक कटु अनुभव करने पडे। उनके कारण मेरे अदर कुछ समयके लिये एक प्रकारकी निराशा-सी छा गयी थी। उस निराशाको दूर करनेमे मुझे सफलता हुई तो वह प्रार्थनाके ही कारण हुई। सत्यकी भॉति प्रार्थना मेरे जीवनका अङ्ग बनकर नहीं रही है इसका आश्रय तो मुझे आवश्यकतावश लेना पडा। मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि मुझे प्रार्थनाके बिना चैन पडना कठिन हो गया। ईश्वरके अदर मेरा विश्वास ज्यों-ज्यो बढता गया, प्रार्थनाके लिये मेरी व्याकुलता भी उतनी ही दुर्दमनीय हो गयी। प्रार्थनाके बिना मुझे जीवन नीरस एव शून्य-सा प्रतीत होने लगा।

जब मैं दक्षिणी अफ्रीकामे था, उस समय मैं कई बार ईसाइयोकी सामुदायिक प्रार्थनामे सम्मिलित हुआ, किंतु उसका मुझपर प्रभाव नहीं पडा। मेरे ईसाई मित्र ईश्वरके सामने अनुनय-विनय करते थे, किंतु मुझसे वैसा नहीं बन पडा। मुझे इस कार्यमें बिलकुल असफलता रही। परिणाम यह हुआ कि ईश्वर एव उसकी प्रार्थनामें मेरा विश्वास हिल गया और जबतक मेरी अवस्था परिपक्व न हो गयी, मुझे उसका अभाव बिलकुल नहीं खला, परन्तु अवस्था ढल जानेपर एक समय ऐसा

आया, जब मेरी आत्माके लिये प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य हो गयी, जितना शरीरके लिये भोजन अनिवार्य है। सच पूछिये तो शरीरके लिये भोजन भी इतना आवश्यक नहीं है, जितनी आत्माके लिये प्रार्थनाकी आवश्यकता है, क्योंकि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये कभी-कभी उपवास (भोजनका त्याग) आवश्यक हो जाता है, किंतु प्रार्थनारूप भोजनका त्याग किसी प्रकार भी हितकर अथवा वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। प्रार्थनाका अजीर्ण तो कभी हो ही नहीं सकता।

जगद्गुरुओंकी साक्षी

जगत्‌के तीन महान् गुरु गौतम बुद्ध, ईसा एवं मुहम्मदके लेखोमे इस बातके अकाट्य प्रमाण मिलते हैं कि उन्हे प्रार्थनासे ही प्रकाश मिला और वे प्रार्थनाके बिना जीवित नहीं रह सकते थे। लाखो ईसाइयो, हिंदुओ तथा मुसलमानोको आज भी ईश्वर-प्रार्थनासे जितना आश्वासन मिलता है वैसा जीवनमे और किसी बातसे नहीं मिलता। आप अधिक-से-अधिक उन लोगोको झूठा अथवा आत्मवञ्चित कह सकते है। मै तो यह कहूँगा कि यह झूठ मुझ सत्यान्वेषीपर जादूका-सा काम करती है, यदि झूठ ही हो तथापि वस्तुत. मेरे जीवनका एकमात्र यही सहारा रहा है, क्योंकि इसके बिना मैं एक पलभर भी जीवित नही रह सकता। राजनैतिक आकाश निराशाके बादलोसे घिरा हुआ रहनेपर भी मेरी आन्तरिक शान्ति कभी भङ्ग नहीं हुई। अधिक क्या, लोग मेरी इस आन्तरिक शान्तिको देखकर मुझसे ईर्ष्या करने लगते हैं। यह शान्ति मुझे ईश्वर-प्रार्थनासे ही मिली और कहींसे नही।

मैं विद्वान् नही हूँ, मैंने शास्त्रोंका अध्ययन नही किया है, किंतु मैं विनयपूर्वक इस बातका दावा करता हूँ कि मेरा जीवन प्रार्थनामय है। प्रार्थनाका प्रकार कैसा होना चाहिये, इस विषयमे मैं उदासीन हूँ।

इसका निर्णय प्रत्येक मनुष्य अपने लिये स्वय कर सकता है, किंतु मुझे प्रार्थनाके कई ऐसे ढग मालूम हैं जिनका लोगोने अनुसरण किया है और प्राचीन महात्माओंके बताये हुए मार्गपर चलना ही श्रेयस्कर होता है।

किसीके अदर ईश्वरमे विश्वास उत्पन्न करा देना मेरी शक्तिके बाहर है। ससारमे कई बातें ऐसी है, जो स्वत सिद्ध है और कुछ बातें ऐसी भी है, जो बिलकुल सिद्ध ही नही हो सकतीं। रेखागणितके मूल सिद्धान्तो (Axioms) की भाँति ईश्वरकी सत्ता भी स्वयसिद्ध है। सम्भव, है कि हमारा हृदय उसे ग्रहण न कर सके। बुद्धिकी पहुँचके विषयमे तो मैं कुछ नही कहूँगा। बुद्धिका अवलम्बन बहुत करके भ्रमजनक होता है, क्योंकि तर्कपूर्ण युक्तियोसे चैतन्यरूप ईश्वरके अदर विश्वास उत्पन्न नहीं कराया जा सकता। ईश्वर बुद्धिगम्य वस्तु नहो है। वह बुद्धिसे परे है। हमारे पास बहुत-से ऐसे प्रमाण है, जिनसे हम ईश्वरकी सत्ताको युक्तिसे सिद्ध कर सकते हैं। परतु इस प्रकारका युक्तिपूर्ण समाधान पाठकोकी बुद्धिका अपमान करना होगा। मै आपलोगोसे अनुरोध करूँगा कि आपलोग तार्किक युक्तियोका आश्रय छोडकर एक नन्हे-से बच्चेकी भाँति ईश्वरमे निश्छल विश्वास करना प्रारम्भ कर दे। यदि मेरा अस्तित्व है तो ईश्वरका अस्तित्व अवश्य है। केवल मेरे ही जीवनका नहीं, किन्तु मेरे-जैसे अन्य लाखों मनुष्योंके जीवनका यह एक आवश्यक अङ्ग है। चाहे वे इसके विषयमे वाद-विवाद न कर सके, किन्तु उनके जीवनसे हम यह देख सकते हैं कि वह उनके जीवनका एक अङ्ग बन गया है।

श्रद्धा

मैं आपलोगोंसे केवल इतनी-सी प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग इस विश्वासरूपी खण्डहरका जीर्णोद्धार कीजिये। इसके लिये यह

आवश्यक है कि आप उस प्रचुर साहित्यको भूल जाइये, जिसने आपकी बुद्धिको चौंधिया दिया है और आपके पायेको कमजोर बना दिया है। श्रद्धाके मार्गमे दीक्षित हो जाइये, जो विनयका चिह्न है और इस बातको स्वीकार कीजिये कि हम कुछ नहीं जानते, हम इस विशाल ब्रह्माण्डके अदर अणुसे भी अणु हैं। अणुसे भी अणु इसलिये है कि अणु अपनी सत्ताके नियमोका पालन करता है, किंतु हम ऐसे ढीठ हो गये हें कि प्रकृतिके नियमोकी अवहेलना करते हैं। जिन लोगोमे श्रद्धाका अभाव है, उनको समझानेके लिये मेरे पास कोई युक्ति अथवा दलील नही है।

यदि एक बार आपने ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार कर लिया तो फिर आपसे प्रार्थना किये बिना रहा नहीं जायगा।

बहुत-से लोग यह धृष्टतापूर्ण दावा करते है कि हमारा समग्र जीवन ही प्रार्थनामय है, अत हमे किसी निर्दिष्ट समयपर एकान्तमे बैठकर प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नही है। हमे इस प्रकारकी मूर्खता नही करनी चाहिये।

हमलोग तो किस गिनतीमे हे, उन महापुरुषोने भी, जिनकी वृत्ति निरन्तर ब्रह्माकार रहती थी, इस प्रकारका दावा नही किया। उनके जीवन वास्तवमे प्रार्थनामय थे, किन्तु हमे यह कहना चाहिये कि हमारे लिये वे निश्चित समयपर प्रार्थना अवश्य करते थे और प्रतिदिन परमात्माके प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते थे। यह ठीक है कि ईश्वर यह नही चाहता कि हम प्रतिदिन अपनी शरणागतिका उसके सामने हवाला दे, किंतु हमारे लिये ऐसा करना आवश्यक है। म आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम ऐसा करेंगे तो फिर कोई भी दुख हमे नही सतायेगा।

★

महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय

जगत्मे सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है ?

ईश्वर

इस ससारमे सबसे पुराने ग्रन्थ वेद है। यूरोपके विद्वान् भी इस बातको मानते है कि ऋग्वेद कम-से-कम ४००० (चार सहस्र) वर्ष पुराना है और उससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं। ऋग्वेद पुकारकर कहता है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तमके बीचमे ओर उससे परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे ओर उन्होने उस अन्धकारमे अपनेको आप प्रकट किया और अपने तपसे अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्तिके सचालनसे सृष्टिको रचा लिखा है—

तम आसीत्तमसा गूलहमग्रेऽप्रकेत सलिल सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहित यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥

(ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ७ वर्ग १७ मन्त्र ३)

इसी वेदके अर्थको मनुभगवान्ने लिखा है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। सब प्रकारसे सोता हुआ-सा दिखायी पडता था। उस समय जिनका किसी दूसरी शक्तिके द्वारा जन्म नही हुआ, जो आप अपनी शक्तिसे अपनी महिमामे सदासे वर्तमान हे और रहेगे, उन ज्ञानमय, प्रकाशमय स्वयम्भूने अपनेको आप प्रकट किया और उनके प्रकट होते ही अन्धकार मिट गया।

मनुस्मृतिमे लिखा है—

आसीदिद तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेय प्रसुप्तमिव सर्वत ॥

तत स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजा प्रादुरासीत् तमोनुद ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातन ।
सर्वभूतमबोऽचिन्त्य स एव स्वयमुद्बभौ ॥
(१।५—७)

ऋग्वेद कहता है—

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मे देवाय हविषा विधेम ॥
(८।७।३।१)

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमान प्रथमच्छदवरॉ आविवेश ॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
स बाहुभ्या धमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ॥
(८।३।१६।१३)

यो न पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवाना नामधा एक एव त सप्रश्न भुवना यन्तयन्या ॥
(८।३।१७।३)

और भी श्रुति कहती है—

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' (ऐतरय० १।१।१)
'एकमेवाद्वितीयम्' (छान्दाग्य० ६।२।१)

श्रीमद्भागवतमे भगवान्का वचन ह—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादह यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
(२।९।३२)

सृष्टिके आदिमे कार्य (स्थूल) और कारण (सूक्ष्म) से अतीत

एकमात्र मै ही था, मेरे सिवा और कुछ भी न था। सृष्टिके पश्चात् भी मै ही रहता हूँ और यह जो जगत्प्रपञ्च दीख पड़ता है, वह भी मै ही हूँ तथा सृष्टिका संहार हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वह भी मै ही हूँ।

शिवपुराणमे भी लिखा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥

(७।१।६।१४—१६)

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥

(७।१।६।२३)

उस समय एक रुद्र ही थे, दूसरा कोई न था। उन जगत्-रक्षकने ही संसारकी रचना करके अन्तमे उसका संहार कर दिया। उनके चारो ओर नेत्र है, चारो ओर मुख है, चारो ओर भुजाएँ है तथा चारो ओर चरण है। पृथ्वी और आकाशको उत्पन्न करनेवाले एक महेश्वर देव ही है, वे ही सब देवताओके कारण और उत्पत्तिके स्थान है। जो बिना आँख-कानके ही देखते और सुनते है, जो सबको जानते है तथा उन्हे कोई नहीं जानता, वे परम पुरुष कहे जाते है।

श्रीमद्भागवतमे लिखा है—

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।

नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥

(१०।१४।२३)

वह एक ही आत्मा पुराण पुरुष, सत्य, स्वयप्रकाशस्वरूप, अनन्त, सबका आदिकारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, मायासे निर्लिप्त, अखण्ड, अद्वितीय, उपाधिसे रहित तथा अमर है।

सब वेद, स्मृति, पुराणके इसी तत्त्वको गोस्वामी तुलसीदासजीने थोडे अक्षरोंमे यो कह दिया है—

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

किंतु यह विश्वास कैसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है ?

जो वेद कहते हैं कि यह परमात्मा है, वही यह भी कहते हैं कि उसको हम आँखोसे नहीं देख सकते।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।

(श्वेताश्व० ४।२०)

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।

(मु० उ० ३।१।८)

'ईश्वरको कोई आँखोंसे नही देख सकता, किंतु हममेसे हर एक मनको पवित्र कर विमल बुद्धिसे ईश्वरको देख सकता है।' इसलिये जो लोग ईश्वरको मनकी आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मनको पवित्र कर और बुद्धिको विमल कर

ईश्वरकी खोज करे।

हम देखते क्या है ?

हमारे सामने जन्मसे लेकर शरीर छूटनेके समयतक बडे-बडे चित्र-विचित्र दृश्य दिखायी देते हैं, जो हमारे मनमे इस बातके जाननेकी बडी उत्कण्ठा उत्पन्न करते है कि वे कैसे उपजते है और कैसे विलीन होते हैं ? हम प्रतिदिन देखते है कि प्रात काल पौ-फट होते ही सहस्र किरणोसे विभूषित सूर्यमण्डल पूर्व दिशामे प्रकट होता है और आकाश-मार्गसे विचरता सारे जगत्को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता, सायकाल पश्चिम दिशामे पहुँचकर नेत्रपथसे परे हो जाता है। गणितशास्त्रके जाननेवालोने गणना कर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथिवीसे नौ करोड अट्ठाईस लाख तीस सहस्र मीलकी दूरीपर है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि यह इतनी दूरीसे इस पृथ्वीके सब प्राणियोको प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता है। ऋतु-ऋतुमे अपनी सहस्र किरणोसे पृथ्वीसे जलको खीचकर सूर्य आकाशमे ले जाता है और वहाँसे मेघका रूप बनाकर फिर जलको पृथ्वीपर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास, पत्ती, वृक्ष अनेक प्रकारके अन्न और धान तथा समस्त जीवधारियोको प्राण और जीवन देता है। गणितशास्त्र बतलाता है कि जैसा यह एक सूर्य है ऐसे असख्य और है और इससे बहुत बडे-बडे भी है, जो सूर्यसे भी अधिक दूर होनेके कारण हमको छोटे-छोटे तारोके समान दिखायी देते है। सूर्यके अस्त होनेपर प्रतिदिन हमको आकाशमे अनगिनत तारे-नक्षत्र-ग्रह चमकते दिखायी देते हैं। सारे जगत्को अपनी किरणोसे सुख देनेवाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनीसे रात्रिको ज्योतिष्मती करता हुआ आकाशमे सूर्यके समान पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाको जाता है। प्रतिदिन रात्रिके आते ही दसो

दिशाओंको प्रकाशित करती हुई नक्षत्र-तारा-ग्रहोंकी ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। ये सब तारा-ग्रह सूतमे बँधे हुए गोलकोके समान अलङ्घनीय नियमोके अनुसार दिन-से-दिन, महीने-से-महीने, वर्ष-से-वर्ष, बँधे हुए मार्गोमे चलते हुए आकाशमे घूमते दिखायी देते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मीकी ऋतुमे यदि सूर्य तीव्ररूपसे नहीं तपता तो वर्षाकालमे वर्षा अच्छी नहीं होती, यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो जगत्मे प्राणिमात्रके भोजनके लिये अन्न और फल न हो। इससे हमको स्पष्ट दिखायी देता है कि अनेक प्रकारके अन्न और फलद्वारा सारे जगत्के प्राणियोके भोजनका प्रबन्ध मरीचिमाली सूर्यके द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबन्ध किसी विवेकवती शक्तिका रचा हुआ है जिसको स्थावर-जगम सब प्राणियोको जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड पदार्थोके अचानक सयोगमात्रका परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलक-मण्डल अपने-आप जड पदार्थोके एक दूसरेके खीचनेके नियममात्रसे उत्पन्न हुआ है और अपने-आप आकाशमे वर्ष-से-वर्ष, सदी-से-सदी, युग-से-युग घूम रहा है अथवा इसके रचने और नियमसे चलानेमे किसी चैतन्य शक्तिका हाथ है? बुद्धि कहती है कि 'है' वेद भी कहते है कि 'है'। वे कहते है कि सूर्य और चन्द्रमाको, आकाश और पृथ्वीको परमात्माने रचा।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चाऽन्तरिक्षमथो स्व.॥

(ऋग्वेद ८।८।४८।३)

प्राणियोकी रचना

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत्की रचना इस

बातकी घोषणा करती है कि इस जगत्का रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ है। जरायुसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोडे, गौ आदि, अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी, पसीने और मैलसे पैदा होनेवाले कीडे, पृथिवीको फोडकर उगनेवाले वृक्ष, इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारीका समागम होता है। उस समागममें नरका एक अत्यन्त सूक्ष्म किंतु चैतन्य अंश गर्भमें प्रवेशकर नारीके एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंशसे मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते है कि—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेय स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेता॰ ५।९)

एक बालके आगेके भागके खडे-खडे सौ भाग कीजिये और उन सौमेंसे एकके फिर सौ खडे-खडे टुकडे कीजिये और इसमेंसे एक टुकडा लीजिये तो आपको ध्यानमें आयेगा कि उतना सूक्ष्म जीव है। यह जीव गर्भमें प्रवेश करनेके समयसे शरीररूपसे बढता है। विज्ञानके जाननेवाले विद्वानोने अणुवीक्षण-यन्त्रसे देखकर यह बताया है कि मनुष्यके वीर्यके एक बिन्दुमें लाखों जीवाणु होते हैं और उनमेंसे प्राय एक ही गर्भमें प्रवेश पाकर टिकता और वृद्धि पाता है। नारीके शरीरमें ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि यह जीव गर्भमें प्रवेश पानेके समयसे एक नलीके द्वारा आहार पावे इसकी वृद्धिके साथ-साथ नारीके गर्भमें एक जलसे भरा थैला बनता जाता है, जो गर्भको चोटसे बचाता है। इस सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, अणु-से-अणु बालके आगेके भागके दस हजारवें भागके समान सूक्ष्म वस्तुमें यह शक्ति कहाँसे आती है कि जिससे यह

धीर-धीरे अपने माता और पिताके समान रूप, रंग और सब अवयवोंको धारण कर लेता है ? कौन-सी शक्ति है, जो गर्भमे इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है ? वह क्या अद्भुत रचना है, जिससे बच्चेके उत्पन्न होनेके थोडे समय पूर्व ही माताके स्तनोमे दूध आ जाता है ? कौन-सी शक्ति है, जो सब असंख्य प्राणवन्तोंको, सब मनुष्योंको, सब पशु-पक्षियोको, सब कीट-पतंगोको, सब पेड़-पल्लवोको पालती है और उनको समयसे चारा और पानी पहुँचाती है ? कौन-सी शक्ति है, जिससे चीटियाँ दिनमें भी और रातमें भी सीधी भीतपर चढ़ती चली जाती हैं ? कौन-सी शक्ति है, जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाशमे दूर-से-दूरतक बिना किसी आधारके उड़ा करते हैं ?

नरो और नारियोकी, मनुष्योकी, गौओंकी, सिंहोकी, हाथियोकी, पक्षियोंकी, कीडोंकी सृष्टि कैसे होती है ? मनुष्योंसे मनुष्य, सिंहोंसे सिंह, घोडोसे घोडे, गौओसे गौ, मयूरोसे मयूर, हसोसे हंस, तोतोंसे तोते, कबूतरोसे कबूतर, अपने-अपने माता-पिताके रंग-रूप-अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते है ? छोटे-से-छोटे बीजोंसे किसी अचिन्त्य शक्तिसे बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षोतक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ीसे जीवधारियो-को सुख पहुँचाते, सैकडो-सहस्रो स्वादु, रसीले फलोसे उनको तृप्त और पुष्ट करते, बहुत वर्षोतक श्वास लेते, पानी पीते, पृथ्वीसे और आकाशसे आहार खीचते आकाशके नीचे झूमते लहराते रहते हैं ?

इस आश्चर्यमयी शक्तिकी खोजमे हमारा ध्यान मनुष्यके रचे हुए एक घरकी ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। इसमे भीतर जानेके लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानोमें पवन और प्रकाशके लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर

बडे-बडे खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकनेके लिये छतें और छज्जे बने हुए है। दालान-दालानमे, कोठरी-कोठरीमे भिन्न-भिन्न प्रकारसे मनुष्यको सुख पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है। घरके भीतरसे पानी बाहर निकालनेके लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचारसे घर बनाया गया है कि रहनेवालोंको सब ऋतुमें सुख देवे। इस घरको देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालोके सुखके लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने रचनेवालेको देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घरका रचनेवाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान् पुरुष है।

अब हम अपने शरीरकी ओर देखते हैं। हमारे शरीरमे भोजन करनेके लिये मुँह बना है। भोजन चबानेके लिये दाँत हैं। भोजनको पेटमें पहुँचानेके लिये गलेमे नाली बनी है। उसीके पास पवनके मार्गके लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजनको रखनेके लिये उदरमें स्थान बना है। भोजन पचकर रुधिरका रूप धारण करता है, वह हृदयमे जाकर इकट्ठा होता है और वहाँसे सिरसे पैरतक सब नसोमे पहुँचकर मनुष्यके सम्पूर्ण अङ्गको शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजनका जो अंश शरीरके लिये आवश्यक नहीं है, उसके मल होकर बाहर जानेके लिये मार्ग बना है। दूध, पानी या अन्य रसका जो अश शरीरको पोसनेके लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलनेके लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखनेके लिये हमारी दो आँखें, सुननेके लिये दो कान, सूँघनेको नासिकाके दो रन्ध्र और चलने-फिरनेके लिये हाथ-पैर बने हैं। संतानकी उत्पत्तिके लिये जनन-इन्द्रियाँ हैं। हम पूछते हैं— क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड पदार्थोके संयोगसे हुई है

या इसके जन्म देनेमें और वृद्धिमे, हमारे घरके रचयिताके समान किंतु उससे अनन्तगुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्माका प्रभाव है ?

मन और वाणीकी अद्‌भुत शक्तियाँ

इसी विचारमे डूबते और उतराते हुए हम अपने मनकी ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी हमारे मनकी विचारशक्ति, कल्पना-शक्ति, गणना-शक्ति, रचना-शक्ति, स्मृति, धी, मेधा सब हमको चकित करती हैं। इन शक्तियोसे मनुष्यने क्या-क्या ग्रन्थ लिखे हैं, कैसे-कैसे काव्य रचे हैं, क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या-क्या आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं। यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने और गानेकी शक्ति भी हमको आश्चर्यमें डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टिमे सर्वत्र दिखायी पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदिका पता नहीं चलता। इस रचनामे एक-एक जातिके शरीरियोके अवयव ऐसे नियमसे बैठाये गये है कि सारी सृष्टि शोभासे पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टिके आदिसे सारे जगत्मे एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है, जो सदासे चली आयी है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।

हमारी बुद्धि विवश होकर इस बातको स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचनाका कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनन्त-शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्तिको हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गॉड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्रों नामोसे पुकारते हैं।

वह परमात्मा एक ही है

वेद कहते है—

'एकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्य० ६।२।१)

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेद २।३।२२।४६)

'एक सन्त बहुधा कल्पयन्ति'

एक ही परमात्मा है, कोई उसका दूसरा नहीं। एकको ही विप्रलोग बहुत से नामोसे वर्णन करते हैं। है एक ही, किंतु उसको बहुत प्रकारसे कल्पना करते हैं।

विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम इस बातके प्रसिद्ध उदाहरण हैं। युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा कि 'बताइये लोकमें वह कौन एक देवता है ? कौन सब प्राणियोका सबसे बडा एक शरण है ? कौन वह है जिसकी स्तुति करते, जिसको पूजते मनुष्यका कल्याण होता है ?'

इसके उत्तरमें पितामहने कहा—

जगत्प्रभु देवदेवमनन्त पुरुपोत्तमम्।
स्तुयन्नामसहस्रेण पुरुष सततोत्थित ॥
अनादिनिधन विष्णु सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्ष स्तुवन्नित्य सर्वदु खातिगो भवेत्॥
परम यो महत्तेज परम यो महत्तप ।
परम यो महद्ब्रह्म परम य परायणम्॥
पवित्राणा पवित्र यो मङ्गलाना च मङ्गलम्।
दैवत देवताना च भूताना योऽव्यय॰ पिता॥

(महा॰ अनु॰ १४९।४—७)

अर्थात् 'मनुष्य प्रतिदिन उठकर सारे जगत्के स्वामी, देवताओंके देवता, अनन्त पुरुषोत्तमकी सहस्र नामोंसे स्तुति करे। सारे लोकके

महेश्वर, लोकके अध्यक्ष (अर्थात् शासन करनेवाले), सर्वलोकमें व्यापक विष्णुकी, जो न कभी जन्मे है, न जिनका कभी मरण होगा, नित्य स्तुति करता हुआ मनुष्य सब दु खोसे मुक्त हो जाता है। जो सबसे बडा तेज है, जो सबमें बडा तप है, जो सबसे बडे ब्रह्म है और जो सब प्राणियोके सबसे बडे शरण हैं। जो पवित्रोमे सबसे पवित्र, सब मङ्गल बातोंके मङ्गल, देवताओंके देवता और सब प्राणिमात्रके अविनाशी पिता हैं।'

इससे स्पष्ट है कि विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम तथा और ऐसे स्तोत्र सब एक ही परमात्माकी स्तुति करते हैं। मनुष्यमात्रको उचित है कि नित्य साय-प्रात उस परमात्माका ध्यान करे और उसकी स्तुति करे।

उसी एककी तीन संज्ञा है

ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये उसी एक परमात्माकी तीन सज्ञा अर्थात् नाम हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

(१।२।६६)

वे एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि, पालन और सहार करनेवाली, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामकी तीन सज्ञा प्राप्त करते हैं।

यही बात बृहन्नारदीयपुराणमें भी लिखी है—

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदुच्यते॥

(१।२।२, ५)

भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वत्र व्यापक तथा मायासे अलिप्त हैं, यह स्थावर-जङ्गमरूप सारा संसार उनसे व्याप्त है। उन जरारहित आदिदेवताको कोई शिव, कोई सदा सत्यस्वरूप विष्णु और कोई ब्रह्मा कहते हैं।

इसी प्रकार शिवपुराणमे स्वयं महेश्वरका वचन है—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥

(२।१।९।२८, ३८)

हे विष्णो ! सृष्टि, पालन तथा सहार—इन तीन गुणोके कारण मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन भेदसे युक्त हूँ। हे हरे ! वास्तवमें मेरा स्वरूप सदा भेदहीन है। मैं, आप, यह (ब्रह्मा) तथा रुद्र और आगे जो कोई भी होगे, इन सबका एक ही रूप है, उनमे कोई भेद नहीं है, भेद माननेसे बन्धन होता है।

श्रीमद्भागवतमे भी स्वय भगवान्‌का वचन है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥

(४।७।५०-५१)

हम, ब्रह्मा और शिव संसारके परम कारण हैं, हम सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और निर्विशेष हैं। हे ब्राह्मण ! वह मैं (विष्णु) अपनी त्रिगुणमयी मायामें प्रवेश करके संसारकी सृष्टि,

रक्षा तथा प्रलय करता हुआ भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार नाम धारण करता हूँ।

इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न-भिन्न मानना भूल है। ये एक ही परमात्माकी तीन संज्ञा हैं—

इसीलिये शिवपुराणमे भी लिखा है—

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः॥
नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम्।

(६।९।१-२)

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार-वैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये आठ नाम मुख्यरूपसे शिवके बोधक हैं।

इसलिये यह स्पष्ट है '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**', **ॐ नमो नारायणाय,' ॐ नमः शिवाय', श्रीरामाय नमः', श्रीकृष्णाय नमः'**—ये सब मन्त्र एक ही परमात्माकी वन्दना हैं।

उस परमात्माका क्या रूप है ?

वेद कहते हैं—

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तैत्ति० २।१।१)

वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है।

श्रीमद्भागवतमें भी लिखा है—

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम्।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम्॥
ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः।

(२।६।३९, ४०)

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान्।

दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥

(३।३२।२६)

ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं है, किंतु विनाशवान् शरीरमे पैठकर वह ससारकी लीला कर रहा है। वह केवल निर्मल ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण है। उसका आदि नहीं, अन्त नहीं। वह नित्य और अद्वितीय है। एक होनेपर भी अनेक रूपोमे दिखायी देता है।

दूसरे स्थानमे कहा है—

शरीरोके भीतर बैठा हुआ आत्मा पुराणपुरुष साक्षात् स्वयं-प्रकाश, अज, परमेश्वर, नारायण, भगवान् वासुदेव अपनी मायासे अपने रचित शरीरोमे रम रहा है।

ब्रह्मका पूर्ण और अत्यन्त हृदयग्राही निरूपण—वेद, उपनिषद् और पुराणोका सारांश—श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके तीसरे अध्यायमे दिया हुआ है।

राजा जनकने ऋषियोसे कहा—'हे ऋषिगण! आपलोग ब्रह्मज्ञानियोमें श्रेष्ठ हैं, अतएव आप मुझे यह बताइये कि जिनको नारायण कहते हैं, उन परब्रह्म परमात्माका ठीक स्वरूप क्या है?'

पिप्पलायन ऋषिने कहा—हे नृप! जो इस विश्वके सृजन, पालन और सहारका कारण है, परंतु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है; जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींदकी दशाओंमें भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है; देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे संजीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्त्वको नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परम-

तत्त्वका ज्ञान ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं और वहाँतक पहुँच न सकनेके कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

वह परमात्मा कभी जन्मा नहीं, न वह कभी मरेगा, न वह कभी बढ़ता है और न घटता है; जन्म-मरण आदिसे रहित वह सब बदलती हुई अवस्थाओंका साक्षी है एवं सर्वत्र व्याप्त है, सब कालमें रहा है और रहेगा, अविनाशी है और ज्ञानमात्र है। जैसे प्राण एक है तो भी इन्द्रियोके भिन्न होनेसे आँखे देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूँघती है इत्यादि भावोंके कारण एक-दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते है, ऐसे ही आत्मा एक होनेपर भी भिन्न-भिन्न देहोंमे अवस्थित होनेके कारण भिन्न प्रतीत होता है।

जितने जीव जरायुसे उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी, सिंह, कुत्ते, भेड़, बकरी आदि, जो पक्षीवर्ग अण्डोसे उत्पन्न होते हैं, जो कीटवर्ग पसीने, मैल आदिसे उत्पन्न होते हैं और जो वृक्षवर्ग (पेड़-विटप) पृथ्वीको फोड़कर उगते हैं, इन सबोमे—सम्पूर्ण सृष्टिमे—जहाॅ-जहाॅ जीवके साथ प्राण दौड़ता हुआ दिखायी देता है, वहाॅ-वहाॅ ब्रह्म है। जब सब इन्द्रियाॅ सो जाती हैं, जब 'मैं हूँ' यह अहंभाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षीरूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यानमें आता है और जिसका हमारे जागनेकी अवस्थामे 'हम अच्छे सोये' 'यह सपना देखा' इस प्रकारकी स्मृति होती है, वही ब्रह्म है इत्यादि।

यह ब्रह्म कहाँ है ?

वेद कहते हैं—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेता० ६ । ११)

एक ही परमात्मा सब प्राणियोके भीतर छिपा हुआ है, सबमें व्याप्त हो रहा है, सब जीवोके भीतरका अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टिमे हो रहा है, उसका वह नियन्ता है। सब प्राणियोके भीतर बस रहा है, सब ससारके कार्योंका साक्षीरूपमें देखनेवाला, चैतन्य केवल एक, जिसका कोई जोड नही और जो गुणोके दोषसे रहित है।

वेद, स्मृति, पुराण कहते हैं कि यह देवोका देव अग्निमे, जलमें, वायुमे, सारे भुवनमे, सब ओषधियोमे, सब वनस्पतियोमे, सब जीवधारियोमे व्याप रहा है। कहते हैं—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

(श्वेता० ४ । १७ २०)

—वह परमदेव विश्वका रचनेवाला सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। अपने-अपने हृदयमें स्थित इस महात्माको जो शुद्ध हृदयसे, विमल मनसे अपनेमें विराजमान देखते हैं, वे अमर होते हैं।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥

(श्वेता० ६ । ९)

लोकमें न उसका कोई स्वामी है, न उसके ऊपर आज्ञा चलानेवाला है, न उसका कोई चिह्न है। वही सबका कारण है, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं, न उसका कोई रक्षक है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वेता॰ ६।७)

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखनेवालोके सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओंके सबसे बड़े देवता, स्वामियोंके सबसे बड़े स्वामी, सारे त्रिभुवनके स्वामी, परम पूजनीय देवको हमलोगोने जाना है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥

सूरदासजीने कहा है—

जगत्पिता जगके आधार।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिनके अन्तर्जामी॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तुम्हे बारंबार।

सर्व सक्ति तुम सर्व अधार,
तुम्हें भजै सो उतरै पार ॥
घट-घट माँहि तुम्हारो वास,
सर्ब ठौर जिमि दीप-प्रकाश ।
एहि बिधि तुमको जानै जोई,
भक्त रु ज्ञानी कहिये सोई ॥
जगत-पिता तुम ही हौ ईस,
याते हम विनवत जगदीस ।
तुम सम द्वितिय और नहिं आहि,
पटतर देहि नाथ हम काहि ॥
नाथ कृपा अब हमपर कीजै,
भक्ति आपनी हमको दीजै ।
प्रेम भक्ति बिन कृपा न होइ,
सर्ब शास्त्रमें देखै जोइ ॥
तपसी तुमको तप करि पावै,
सुनि भागवत गृही गुन गावै ।
कर्मयोग करि सेवत कोई,
ज्यों सेवै त्यों ही गति होई ॥
तीन लोक हरि करि विस्तार,
ज्योति आपनी करि उँजियार ।
जैसा कोऊ गेह सँवार,
दीपक बारि करै उँजियार ॥
त्यो हरि-ज्योति आप प्रकटाई,
घट-घटमें सोई दरसाई ।

नाथ तुम्हारी ज्योति-अभास,
करत सकल जगको परकास ॥
थावर-जंगम जहलौ भये,
ज्योति तुम्हारी चेतन किये।
तुम सब ठौर सबनते न्यारे,
को लखि सकै चरित्र तुम्हारे ॥
सो प्रकास तुम साजे सदा,
जीव कर्म करि बंधन बँधा।
सर्वव्यापी तुम सब ठाहर,
तुमहिं दूर जानत नर नाहर ॥
तुम सबके प्रभु अन्तर्जामी,
जीव बिसर रह्यो तुमको स्वामी ॥

यह परमात्मा जीवरूपमे प्रत्येक जीवधारीके हृदयके बीचमे विराजमान है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

स्वय भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

(१८।६१)

हे अर्जुन! ईश्वर सब जीवोंके हृदयमे रहते हैं।

इस विषयमें याज्ञवल्क्य मुनिने सब वेदोंका तत्त्व यो वर्णन किया है—

एक सौ चौवालीस सहस्र हित और अहित नामकी नाड़ियाँ प्रत्येक मनुष्यके हृदयसे शरीरमे दौडी हुई हैं। उसके बीचमे चन्द्रमाके समान प्रकाशवाला एक मण्डल है, उसके बीचमे अचल दीपके समान आत्मा

विराजमान है, उसीको जानना चाहिये। उसीका ज्ञान होनेसे मनुष्य आवागमनसे मुक्त होता है।

यह आत्मा मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतग, वृक्ष-विटप समस्त छोटे-बडे जीवधारियोमे समानरूपसे विराजमान है।

वेदव्यासजी कहते हैं—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत् सर्वजन्तुषु।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥

ब्रह्मकी ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियोमे एकसम है, मनुष्य मनको अच्छी तरह शान्त और स्थिर कर उसीसे उसको देख सकता है।

गीतामें स्वय भगवान्का वचन है—

सम सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्त यः पश्यति स पश्यति॥

(१३। २७)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(१३। १७)

वही पण्डित है, जो विनाश होते हुए मनुष्योके बीचमें विनाश न होते हुए सब जीवधारियोमें बैठे हुए परमेश्वरको देखता है।

सब ज्योतियोकी वह ज्योति, समस्त अन्धकारके परे, चमकता हुआ, ज्ञानस्वरूप, जाननेके योग्य, जो ज्ञानसे पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद्, सब प्राणियोंके हृदयमे बैठा है।

ऐसे घट-घट व्यापक उस एक परमात्माकी मनुष्यमात्रको विमल भक्तिके साथ उपासना करनी चाहिये और यह ध्यानकर कि 'वह

प्राणिमात्रमे व्याप्त है', प्राणिमात्रसे प्रीति करनी चाहिये। सब जीवधारियोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जैसा कि भक्तशिरोमणि प्रह्लादजीने कहा है—

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे॥
दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥

(श्रीमद्भा० ७।७।५३—५५)

अतएव हे दानवो। सबको अपने ही समान सुख-दु ख होता है, ऐसी बुद्धि धारण करके सब प्राणियोके आत्मा और ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करो। दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी गोपाल, पशु-पक्षी और अन्य पातकी जीव भी भगवान् अच्युतकी भक्तिसे निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त हो गये हैं। गोविन्दभगवान्‌के प्रति एकान्त भक्ति करना और चराचर समस्त प्राणियोमे भगवान् है—ऐसी भावना करना ही इस लोकमे सबसे उत्तम स्वार्थ है।

सनातनधर्मका मूल

भगवान् वासुदेवो हि सर्वभूतेष्ववस्थितः।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम्॥

यह ज्ञान कि भगवान् वासुदेव सब प्राणियोके हृदयमे स्थित है, सम्पूर्ण सनातनधर्मका सदासे चला आता हुआ और सदा रहनेवाला मूल है। इसी ज्ञानको भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे गीतामें कहा है—

'समोऽहं सर्वभूतेषु' (९।२९)

मैं सब प्राणियोंमें एक हूँ। तथा यह कि—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५।१८)

विद्या और विनयसे युक्त ब्राह्मणमें, गौ-बैलमें, हाथीमें, कुत्तेमें और चाण्डालमें पण्डितलोग समदर्शी होते हैं, अर्थात् सुख-दुःखके विषयमें उनको समानभावसे देखते हैं। तथा यह भी कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६।३२)

जो पुरुष सबके सुख-दुःखके विषयमें अपनी उपमासे समान दृष्टिसे देखता है, उसीको सबसे बड़ा योगी समझना चाहिये।

इसीलिये महर्षि वेदव्यासजीने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३।२५३।४४)

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते॥

(महा० अनु० ११३।८)

सुनो धर्मका सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, जिस बातसे अपनेको पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरेके प्रति न करो।

दूसरेके प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिये, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेपमें

यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बातकी कामनासे किये जाते हैं।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत् परस्यापि चिन्तयेत्॥

(महा० शा० ५९।२२)

जो चाहता है कि मैं जीऊँ, वह कैसे दूसरेका प्राण हरनेका मन करे? जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है, उसको चाहिये कि वही-वही बात औरोंके लिये भी सोचे।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय धर्म—जिनका सब समयमें पालन करना सब प्राणियोके लिये विहित है और जिनके उल्लङ्घन करनेसे आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धान्तोंपर स्थित हैं। इन्हीं सिद्धान्तोपर वेदोमे गृहस्थोंके लिये पञ्चमहायज्ञका विधान किया गया है कि जो भूलसे भी किसी निर्दोष जीवकी हिंसा हो जाय तो हम उसका। प्रायश्चित करे। जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणीका प्राणघात करना चाहते हैं या उनका धन हरना या धर्म बिगाडना चाहते हैं, जो हमपर या हमारे देशपर, हमारे गाँवपर आक्रमण करते हैं या जो आग लगाते हैं या किसीको विष देते हैं—ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं। अपने या अपने किसी भाई या बहिनके प्राण, धन, धर्म, मानकी रक्षाके लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवोंका, आवश्यकताके अनुसार आत्मरक्षाके सिद्धान्तपर वध करना धर्म है। निरपराधी अहिंसक जीवोंकी हिंसा करना अधर्म है।

इसी सिद्धान्तपर वेदके समयसे हिंदू लोग सारी सृष्टिके निर्दोष जीवोंके साथ सहानुभूति करते आये हैं। गौको हिंदू लोकमाता कहते हैं, क्योंकि वह मनुष्य-जातिको दूध पिलाती है और सब प्रकारसे उनका

उपकार करती है। इसलिये उसकी रक्षा करना तो मनुष्यमात्रका विशेष कर्तव्य है। किंतु किसी भी निर्दोष या निरपराध प्राणीको मारना, किसीका धन या प्राण हरना, किसीके प्रति अत्याचार करना, किसीको झूठसे ठगना, ऊपर लिखे धर्मके परम सिद्धान्तके अनुसार अकार्य अर्थात् न करनेकी बाते हैं। और अपने समान सुख-दु:खका अनुभव करनेवाले जीवधारियोकी सेवा करना, उनका उपकार करना, यह त्रिकालमे सार्वलौकिक सत्य धर्म है।

इसी मूल सिद्धान्तके अनुसार वेदधर्मके माननेवालोको उपदेश दिया गया है कि न केवल मनुष्योको किंतु पशु-पक्षियो तथा समस्त जीवोंकी बलिवैश्वदेवके द्वारा नित्य कुछ आहार पहुँचाना अपना धर्म समझे। यह बात नीचे लिखे श्लोकोसे स्पष्ट है।

बलिवैश्वदेवके श्लोक

ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ पुनः।
दद्यादशेषभूतेभ्यः स्वेच्छया तत् समाहितः॥
देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगभूतसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-

मत्रं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितम् ।
भुवि भूतोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥

(विष्णुपु० ३ । ११ । ५०—५२ ५४—५६)

और-और यज्ञोको करनेके बाद मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा अन्न ले पृथ्वीके पवित्र भागमे रख फिर सावधानतापूर्वक समस्त जीवोके लिये बलि दे। और यो कहे—'देवता, मनुष्य, पशुपक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, नाग, अन्य भूत-समूह, प्रेत, पिशाच तथा सम्पूर्ण वृक्ष एव चींटी, कीडे और पतगे आदि जीव जो कर्मबन्धनमे बँधे हुए भूखे तडप रहे हो और मुझसे अन्न चाहते हो, उनके लिये यह अन्न मैंने रख छोडा है, इससे उनकी तृप्ति हो और वे सुखी हों। सब जीव, यह अन्न और मैं सब विष्णु ही है, उनसे अन्य कुछ भी नहीं है, इस कारण मै जीवोके शरीरभूत इस अन्नको उन प्राणियोकी रक्षाके लिये देता हूँ। यह जो चौदह प्रकारका भूतोका समुदाय है, इसमें जो सम्पूर्ण जीव-समूह स्थित है, उनकी तृप्तिके लिये मैने यह अन्न दिया है। वे प्रसन्न हो।' मनुष्य यो कहकर प्राणियोके उपकारार्थ पृथ्वीपर श्रद्धापूर्वक अन्न दे, क्योकि गृहस्थ सबका आधार होता है।

इसी धर्मके अनुसार सनातनधर्मी नित्य तर्पण करनेके समय न केवल अपने पितरोंका तर्पण करते हैं किंतु समस्त ब्रह्माण्डके जीवधारियोका। यह नीचे लिखे श्लोकोसे विदित है, यथा—

देवाः सुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु यश्चास्मत्तोयमिच्छति ॥

(विष्णुपु० ३ । ११ । ३३—३६)

देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्ष-वर्ग, पक्षीगण, जलमे रहनेवाले जीव, बिलमे रहनेवाले जीव, वायुके आधारपर रहनेवाले जन्तु ये सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हो। समस्त नरकोकी यातनामे जो प्राणी दु ख भोग रहे हैं, उनके दु ख शान्त करनेकी इच्छासे मै यह जल देता हूँ। जो मेरे बन्धु-बान्धव रहे हो और जो बान्धव न रहे हो और जो किसी और जन्ममे मेरे बान्धव रहे हो, उनकी तृप्तिके लिये और उनकी भी तृप्तिके लिये जो मुझसे जल पानेकी इच्छा रखते हो, मै यह जल अर्पण करता हूँ।

वैश्वदेवमे जो अन्न कुत्ते और कौओके लिये निकाला जाता है, उसको छोडकर शेष बलिकी मात्रा बहुत कम होती है, इसलिये वह **'सर्वभूतेभ्य.'** सब प्राणियोको पहुँच नही सकता। तथापि यह जानते हुए भी—बलिवैश्वदेवका करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य इसलिये माना गया है कि वह उस पवित्र, उदार भावको प्रकट करता है कि मनुष्य मानता है कि उसका सब जीवधारियोसे भाईपनका सम्बन्ध है और इस भावको ऑसुओके समान प्रेमके जलसे नित्य सीचकर जगत्के

आकाशमे जीवधारीमात्रमे परस्पर भाईपनका भाव स्थापित करनेका उत्कृष्ट और प्रशसनीय मार्ग है।

इस धर्मकी उदारताकी प्रशसा कौन कर सकता है? इसकी उदारता इस धर्मके बडे-से-बडे परम पूजित आचार्य महर्षि वेदव्यासकी, जो **'सर्वभूतहिते रतः'** सब प्राणियोंके हितमे निरत रहते थे, इस प्रार्थनासे भी प्रकट है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत ॥

सब प्राणी सुखी हो, सब नीरोग रहे, सब सुख-सौभाग्य देखें, कोई दु खी न हो।

उसी धर्मके प्राणाधार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सारे जगतके प्राणियोंको यह निमन्त्रण दे दिया है कि 'सब और धर्मोंको छोड़कर तुम मुझ एककी शरणमे आओ। मै तुमको सब पापोंसे छुडा लूँगा। सोच मत करो।'

उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गीता ९। २९—३२)

'मैं सब प्राणियोके लिये समान हूँ। न मैं किसीका द्वेष करता हूँ, न कोई मेरा प्यारा है। जो मुझको भक्तिसे भजते हैं, वे मुझमे हैं और म उनमे हूँ, पापी-से-पापी भी क्यो न हो यदि वह और सबको छोडकर मेरा ही भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। थोडे ही समयमे वह धर्मात्मा हो जायगा और उसको शाश्वती शान्ति मिल जायगी। हे अर्जुन ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जो कोई मेरा भक्त है, उसका बुरा नहीं होगा। हे कुन्तीके पुत्र ! मेरी शरणमे आकर जो पापयोनिसे उत्पन्न प्राणी भी हैं और स्त्री, वैश्य और शूद्र—ये भी निश्चय मबसे ऊँची गतिको पावेगे।'

धन्य हैं वे लोग जिनको इस पवित्र और लोक-प्रेमसे पूर्ण धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्मज्योतिकी महायतासे सब धर्मशील जन अपने ज्ञानको विशुद्ध और अविचल कर ओर अपने उत्साहको नूतन और प्रवल कर सारे ससारमे इस धर्मके सिद्धान्तोका प्रचार करे और समस्त जगत्‌को यह विश्वास करा दे कि मबका ईश्वर एक ही है और वह अशरूपसे न केवल सब मनुष्योमे किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज अर्थात् मनुष्य पशु, पक्षी, कीट, पतग, वृक्ष और विटप सबमे समानरूपसे अवस्थित है ओर उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणिमात्रमें ईश्वरका भाव देखे, सबसे मित्रताका भाव रखें और सबका हित चाहें। सार्वजनीन प्रेमसे इस सत्य ज्ञानके प्रचारसे ईश्वरीय शक्तिका सगठन और विस्तार करे। जगत्‌से अज्ञानको दूर करे, अन्याय और अत्याचारको रोकें और सत्य, न्याय और दयाका प्रचार कर मनुष्योमे परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढावें।

═ ★ ═

स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज

पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके फलस्वरूप जितनी विजातीय चीजे हमारे देशमें बाहरसे आयी हैं, उनमें एक 'नास्तिकता' भी है। आजकलके शिक्षित कहलानेवाले लोगोंमे हम इसका काफी प्रभाव देखते है। उसके चक्करमे आकर इन लोगोंने ईश्वर और धर्मपरसे अपनी आस्था खो दी है और इनकी दृष्टिमे ईश्वर, आत्मा, धर्म, कर्मवाद, पुनर्जन्म, देवी देवता, भूत-प्रेतादि योनियाँ, स्वर्ग, नरक आदि बातें केवल ढोग और भ्रमोत्पादक दिखायी पडती हैं। इन लोगोके मनपर नास्तिकताकी इतनी गहरी छाप पड गयी है कि प्राचीन धर्मग्रन्थोका पाठ करना, विद्वान् पुरुषोंकी बाते सुनना या उनसे इस विषयमे कुछ पूछना तो दूर, वे स्वय भी इन बातोपर विचार करना नही चाहते। वे अपनी स्थूल दृष्टिसे ससारका जो कुछ रूप देखते है, बस उसीको सत्य मानकर अपना दृढ सिद्धान्त बना लेते हे। इससे भी भयकर बात तो यह है कि वे येन केन प्रकारेण अपने धर्मविरुद्ध सिद्धान्तोका प्रचार भी करनेकी चेष्टा करते हैं। फलस्वरूप ऐसे अनेक लेख और पुस्तकें आज बाजारमे देखनेको मिलती हैं और इनके द्वारा समाजकी न केवल आर्थिक हानि हो रही है, बल्कि साधारण जनतामे इनके द्वारा काफी भ्रम फैल रहा हे और लोग अपना धार्मिक विश्वास भी खो रहे हैं, जो समाजके लिये अत्यन्त घातक बात है। आज हम इस बातको ध्यानमे रखकर उनके कुछ मूल सिद्धान्तोपर विचार करेगे और ईश्वरके अस्तित्वको साबित करनेकी चेष्टा करेगे। चूँकि ऐसे लोगोंको ऋषि-मुनियोके अनुभवों तथा शास्त्रवचनोपर विश्वास नहीं है, अतएव हम भी यहाँपर वैसे प्रमाण न देकर केवल पदार्थ-विज्ञान और मानस-विज्ञान-शास्त्र-सम्मत बुद्धिगम्य युक्तियो तथा साधारण मनुष्योके अनुभवके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेका प्रयत्न करेगे।

हम यहाँपर ऐसे विद्वानो तथा उनके विचारोंके प्रभावमे आकर भ्रममें पडे हुए लोगोसे इतनी प्रार्थना भी कर देना चाहते हैं कि वे पक्षपात तथा दुराग्रहको छोडकर सारासारका विचार करें और सत्यको ग्रहण करें।

ईश्वरके अस्तित्वके कुछ प्रमाण ये है—

(१) सूर्यादि सब मण्डल चल हैं। सबको नियमानुसार मर्यादित आकाशमे भ्रमण करानेके लिये सर्वज्ञ और स्थिर आधाररूप परमात्माकी आवश्यकता है।

(२) प्राणिमात्रमे प्रतीत होनेवाला ज्ञान अनादिसिद्ध चैतन्यरूप

(३) इस सृष्टिमें आनन्दकी प्रतीति होती है, वह भी अनादिसिद्ध चैतन्यस्वरूप है।

(४) मनुष्योके चेहरे और शब्दोचारणमें विभिन्नता उत्पन्न करनेके लिये ईश्वरकी आवश्यकता है।

(५) प्राणिमात्रके शरीरकी आन्तरिक रचना और आन्तरिक क्रियाका निरीक्षण करनेसे किसी सर्वज्ञकी सिद्धि होती है।

(६) मनुष्योके हाथकी रेखाओंमें भिन्नता देखनेसे ईश्वरकी महिमाका अनुभव होता है।

(७) संस्कृत-भाषाकी रचना देखनेसे संसाररक्षक परमात्माका बोध होता है।

(८) ऋतुओमे नियमित परिवर्तन होना, ऋतुओंके कारण उत्पन्न होनेवाले वात-पित्तादि दोष-प्रकोपसे रक्षा हो, वैसे साधनोंकी भी साथ-साथ उत्पत्ति देखकर ईश्वरकी दयालुता जानी जाती है।

(९) प्राणिमात्रके मनका विकास होनेके लिये सर्वव्यापक चैतन्यका आधार है।

(१०) देश तथा धर्मपर संकट उपस्थित होनेपर संसारकी रक्षाके हेतु

महान् पुरुषोकी उत्पत्ति ईश्वर-रचित नियमके अनुसार होती है। इतिहास इस बातका साक्षी है।

(११) देशोके वैभवकी उन्नति और अवनतिमे भी ईश्वरकी लीला प्रतीत होती है।

(१२) सब जीवात्माओको सत्यकी प्राप्ति करनेका सामर्थ्य ईश्वर प्रदान कर रहा है।

(१३) पृथ्वीपर सुवर्णादि धातुओ और नाना प्रकारकी वनौषधियोकी न्यूनाधिक आवश्यकताके अनुसार उत्पत्ति सर्वज्ञ ईश्वरका बोध कराती है।

(१४) मूल प्रकृतिके कार्यरूप परिणाममे और कार्यमेसे पुन कारण-भावकी प्राप्तिमे अपरिणामी स्थिर चैतन्यका आधार है।

विस्तार-भयसे अधिक प्रमाण न देकर अब हम इनमेमे प्रत्येकपर कुछ विस्तारके साथ विचार करेगे।

१—सूर्य, तारागण, नक्षत्र, धूमकेतु, ग्रह और चन्द्र आदि सव मण्डल नित्य अविश्रान्त आकाशमे भ्रमण करते हुए मालूम होते हैं। यदि ये सब मण्डल नियमरहित ऊटपटाग गतिसे भ्रमण करते होते तो रोज सैकडो मण्डल एक-दूसरेके साथ टकरा-टकराकर चूर हो जाते, किंतु ऐसा नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि सब मण्डल नियमपूर्वक अपने-अपने आकाशके मर्यादित विभागमे भ्रमण करते हैं। इन मण्डलोंकी प्रदक्षिणाके नियमका उत्पादक और रक्षक सर्वज्ञ ही हो सकता है। सम्भवत लोग कहेंगे कि यह तो प्रकृतिके स्वभावसे होता रहता है, नियमके लिये किसी सर्वज्ञकी क्या जरूरत ? किंतु यह कहना युक्तिसगत नहीं। कारण, प्रकृति जड और ज्ञानरहित है तथा नियमके लिये ज्ञानकी आवश्यकता होती है, बिना ज्ञानके नियम नहीं बन सकता।

साथ ही सूर्यादि सब मण्डलोके लिये अमर्यादित शक्तिसम्पन्न स्थिर आधार भी चाहिये। कारण, प्रत्येक मण्डल किसी बडे मण्डलके इर्द-गिर्द भ्रमण करता है और वह बडा मण्डल भी अपनेसे और किसी बडे मण्डलके चारो ओर प्रदक्षिणा करता है, जैसे चन्द्र पृथ्वीके चारो ओर और पृथ्वी मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रह सूर्यके इर्द-गिर्द घूमते हें। सूर्य भी स्थिर नही है, वह और किसी बडे मण्डलके आस-पास घूमता है—ऐसा पाश्चात्त्य भूगर्भशास्त्रियोका कथन है। अनेक वर्षोसे सूर्य अपने आस-पास प्रदक्षिणा करनेवाले ग्रह-समुदायके साथ रोज हजारों कोसकी गतिसे ऊपरकी ओर जा रहा है। कहाँ जा रहा है और किसके आस-पास घूम रहा है—यह निश्चित न होनेपर भी ऐसा निश्चित माना गया है कि वह किसी बडे मण्डलके इर्द-गिर्द प्रदक्षिणा कर रहा है। इस तरह ऐसा निश्चय हुआ है कि सूर्यादि सब मण्डल चल है। जैसे घडीके घूमनेवाले पुर्जेकि मूलमे एक स्थिर आधार रहता हे, वैसे ही इन सब चलायमान मण्डलोके मूलमे एक नित्य, अचल और पूर्ण सामर्थ्यवान् आधार होना चाहिये। ऐसा जो आधार है और जिसने इस ब्रह्माण्डकी रक्षाके लिये नियम बनाये है, वही सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मा है।

सूर्यके आस-पास प्रदक्षिणा करनेवाले ग्रहोके प्रदक्षिणा-मार्गके नियम जैसे बने है, वैसे ही हर एक ग्रहका रग, रूप, आकार, परिमाण, कृति, वातावरण, आबादी, दूरी, वेग और प्रदक्षिणा-कालके नियम इत्यादिमे किसी उद्देश्यको दृष्टिमे रखकर हेतुपूर्वक भिन्नता रखी गयी है। यह सब रचना सर्वज्ञकी है, प्रकृतिका उद्देश्यविहीन मनगढत परिणाम नहीं। यदि यह सब प्रकृतिका कार्य होता तो बिल्कुल नियमरहित होता। इस पृथ्वीकी दो प्रकारकी गति मानी गयी है।

एक गतिद्वारा अपनी कीलपर अधोर्ध्व गोल चक्कर लगा लेनेपर चौबीस घटेका रात-दिन होता है। दूसरी गतिसे सूर्यके चारो ओर घूमनेमे लगभग तीन सौ पैसठ दिन लगते है, जिससे वर्षकी गणना होती है। इस दूसरी गतिसे प्रदक्षिणा करनेमे नियमपूर्वक हर साल पचास विकलाका मार्ग छूटता जाता है और इस तरह प्राय. नौ सौ वर्षोमे एक नक्षत्र छूट जाता है। ऐसी प्रदक्षिणा करीब छब्बीस हजार बार हो जानेपर पृथ्वी पुन मूल नक्षत्रमे आ जाती है। जिस तरह पृथ्वीके लिये यह नियम रखा गया है, उसी तरह और ग्रहोके लिये भी कोई-न-कोई नियम है, ऐसा प्रतीत होता है। इसी तरह सब तारादि मण्डलोके लिये भी मर्यादा निश्चित की गयी है। अच्छे-बुरे वातावरणके लिये भी नियम है। अधिक सुख भोगनेके लिये जो ग्रह बनाये हैं, उनका वातावरण पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक अच्छा है। मंगल ग्रहके निवासी पृथ्वीके निवासियोकी अपेक्षा पदार्थ-विद्यामे विशेष आगे बढ़े हुए हैं, ऐसा पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोका अनुमान है। इस कारण हम मंगल ग्रहको पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक सुख-भूमि कह सकते हैं और वहाँका वातावरण भी अच्छा कह सकते है, परंतु शनि ग्रहका वातावरण पृथ्वीकी अपेक्षा खराब माना गया है, अत. उसको दु ख-भूमि कहेगे। इसी तरह सब मण्डलोकी उत्पत्ति, स्थिति और क्रिया मर्यादासहित होती है। किसी मण्डलमे मर्यादा न हो, ऐसा बोध अभीतक पाश्चात्त्य मनीषियोको नहीं हुआ है। इस नियमके कारण-भी-मर्यादा-रक्षक परमात्माकी सिद्धि होती है।

२—प्राणिमात्रमे ज्ञानकी प्रतीति होती है, यह ज्ञान अनादिसिद्ध चैतन्यरूप है। जड प्रकृतिमेंसे कदापि ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। शायद लोग कहें कि 'शरीरकी उत्पत्तिके साथ चेतनाशक्ति और ज्ञान भी उत्पन्न

होता है, अनादि ज्ञान माननेकी क्या आवश्यकता है ?' परतु सृष्टिका यह नियम है कि जो गुण मूल उपादान कारणमे होते है, वे ही गुण उनसे बननेवाले कार्यमे आते है। मूल कारणमें जो गुण नहीं होता, वह कदापि उसके कार्यमे नही उत्पन्न हो सकता। इस सृष्टिमे जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते है, वे सब प्रकृतिसे बने है। प्रकृतिमे चेतनाशक्ति और ज्ञान-गुण नही है, तब इस प्रकृतिके कार्यरूप ससारमे वे गुण नये कैसे उत्पन्न हो गये ? इसलिये कहना पडेगा कि ज्ञानरूप चैतन्य अनादि और सर्वव्यापक है। इस चैतन्यके आधारसे ही प्रकृतिका रूपान्तर होता रहता है। पाश्चात्त्य दार्शनिकोने भी इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। यदि यह सिद्धान्त विरोधियोको प्रतिकूल प्रतीत होता हो तो वे कोई ऐसा यन्त्र बनाकर दिखावे जो अन्य चैतन्यकी सहायताके बिना बुद्धिपूर्वक यथासमय आहारादि प्राप्त करे और अपने मालिकका कार्य भी करता रहे। जिस तरह चींटी स्वेच्छासे अनुकूल दिशामे आहारादिके लिये गमन करती है और पलटनके सिपाही अफसरकी आज्ञाके अनुसार समझकर नियमपूर्वक कवायद करते हैं, उसी तरह बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाला कोई जड यन्त्र तैयार करके दिखावे। यदि ऐसा यन्त्र तैयार न हो सकता हो तथा प्रकृतिके कार्यरूप पत्थर आदिमे ज्ञान प्रतीत न होता हो और जहाँ-जहाँ अभिमानी चैतन्य रहता हो वहाँ-वहाँ ही ज्ञानकी प्रतीति होती हो तो यह मानना ही पडेगा कि प्रकृतिसे ज्ञानगुणकी उत्पत्ति नहीं होती।

चैतन्य सर्वव्यापक होनेके कारण प्रकृतिके परमाणु-परमाणुमे ओतप्रोत है। जड प्रकृति चैतन्यसे अलग होकर कुछ भी कार्य नहीं कर सकती। आजतक किसी पदार्थ-विज्ञानवेत्ताको प्रकृतिका एक भी अणु ऐसा नहीं प्राप्त हुआ है, जो चैतन्यशक्तिसे अलग हो। वनस्पतिके

बीजोमे प्रकृतिके परमाणुओके साथ चैतन्यशक्ति रहती है, इसीलिये बीजको पृथ्वीमें बोनेपर पञ्चभूतके कार्यरूप मिट्टीका, बीजमें वर्तमान चेतनाशक्तिके अनुसार भिन्न-भिन्न गुणोमे रूपान्तर होता है। यदि बीजमे चैतन्यशक्ति न होती तो एक ही प्रकारकी मिट्टीका भिन्न-भिन्न रूपान्तर कैसे होता ? ऐसे ही प्राणिमात्रकी बुद्धिका विकास न्यूनाधिक परिमाणमें होता हुआ देखा जाता है। किसी मनुष्यके शरीरमे प्रकृतिके ज्ञानवर्धक परमाणु बाहरसे नही घुस आते तथा समान मानसिक श्रम और समान आहार करनेपर भी बुद्धिके विकासमें भिन्नता मालूम पड़ती हैं। इसका क्या कारण है। नास्तिकोके मनमें इसका कोई संतोषप्रद समाधान नहीं मिल सकता। हम आस्तिकोके मतानुसार पुनर्जन्म और अनेक कर्मोके सस्कारसहित अभिमानी चैतन्य जीवात्मा प्रत्येक जीवित शरीरमे रहता है। इसलिये उसके संस्कारके अनुसार भिन्न-भिन्न परिमाणमें बुद्धिका विकास होता है और बुद्धिके विकासके अनुसार सर्वव्यापक चैतन्यरूप ज्ञानके प्रकाशका लाभ न्यूनाधिक परिमाणमे जीवात्माको मिलता है।

बुद्धि-वृत्तिके आविर्भाव और तिरोभावके साथ ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश होता हुआ प्रतीत होता है; परंतु यह सोपाधिक भ्रम है। जैसे जवाकुसुमके पुष्पके ऊपर स्फटिक रखनेपर पुष्पकी लालीके कारण स्फटिक भी लाल दीखता है और मृगजलके स्थानपर सूर्यके तापके कारण भ्रम हो जानेसे बालूमें जलसे भरा हुआ तालाब प्रतीत होता है, वैसे ही बुद्धि-वृत्तिकी उत्पत्ति और लयके साथ ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश भासता है। वास्तवमें ज्ञान अनादि स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश है। यदि ज्ञान ऐसा न हो तो अन्य विषयोंकी कदापि सिद्धि नहीं हो सकती। ज्ञान घटादि पदार्थोके समान जड अप्रकाशरूप नहीं है। ज्ञानको यदि

अप्रकाश जडरूप माने तो उसे अन्यके अधीन और विषयरूपसे भासित होना चाहिये, परतु विषयरूपसे ज्ञानकी प्रतीति कदापि नहीं होती, ज्ञान विषयी (विषयको जाननेवाला)के रूपसे ही सर्वदा भासित होता है। अत विषयसे वैलक्षण्य होनेके कारण ज्ञान स्वप्रकाशरूप है। ज्ञानके प्रागभाव (प्राक्-कालीन अभाव) और ध्वसकी सिद्धि स्वत या दूसरोके द्वारा नहीं होनेसे ज्ञान अनादि-अनन्त है। जैसे घटादि पदार्थोकी उत्पत्ति और नाश ज्ञानद्वारा जाना जाता है, वैसे ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश उस ज्ञानसे अथवा अन्य किसी तरहसे अनुभवमें नही आता और ससारमे उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोकी उत्पत्ति-विनाशशीलता जाननेके लिये अविनाशी, अपरिणामी साक्षीस्वरूप ज्ञानके अस्तित्वकी आवश्यकता है। यदि सर्वविध विकारोसे रहित त्रिविध (देश-काल और पात्र) परिच्छेदशून्य तथा कालिक विकार-समूहका साक्षीरूप चैतन्य स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप न होता तो इस सृष्टिमें काल और तत्कृत विकारादिके ज्ञानकी प्रतीति ही न होती।

कदाचित् कोई ज्ञानको अनित्य माने तो इस दशामे भी सर्वज्ञानके अवधिभूत एक नित्य ज्ञानकी आवश्यकता रहती ही है। कारण, बुद्धि-वृत्तिकी उत्पत्ति और विनाशके साथ उत्पत्ति-विनाशशील अनित्य ज्ञान परस्पर व्यभिचारी अननुगत होगा। वह ज्ञान जिस आश्रयमे उत्पन्न होता है, उसका स्वरूपभूत होनेके कारण या उसके साथ तादात्म्य-प्राप्तिके कारण मूल आश्रय भी विकारको प्राप्त होगा। अतएव ज्ञानकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश, इनकी प्रतीति उस विकारावस्थासे या अवस्थावान्से (बुद्धि या प्राणतत्त्व मानें तो उससे भी) नहीं हो सकती, क्योंकि यह नियम है कि विषय और विषयी (विषयका जाननेवाला) सर्वदा भिन्न रहते हैं। अतएव अवस्थारहित परतु अवस्थामें

आध्यात्मिक तादात्म्य-सम्बन्धसे अनुगत अविनाशी सर्वव्यापक ज्ञानरूप एक चैतन्यकी आवश्यकता रहती है। इस चैतन्यसे ही ससारके सब विषयोकी सिद्धि होती है, यही हमारा ईश्वर है।

इस तरह सर्वत्र सर्वव्यापक चैतन्य और सब चर-अचर प्राणियोमें आत्मचैतन्यकी शक्ति स्पष्ट प्रतीत हो रही है, तो भी विरोधियोंको चैतन्यका प्रकाश कही भी नही दीखता और वे ठीक उसी तरह ईश्वर और धर्मसम्बन्धी बातोको गप्प कहकर उडा देना चाहते है, जिस तरह अबोध बालक पुस्तकोके अक्षरोमें ज्ञान-भाण्डार, मेहदीमे लाली, घी-तैलादिमे अग्नितत्त्व, जलमे विद्युत्, लकडी अथवा दियासलाईमें अग्नि आदि बातोंको कपोलकल्पित और गप्प समझता है।

३---इस सृष्टिमें प्रतीत होनेवाला आनन्द अनादिसिद्ध चैतन्यरूप है। यदि सर्वव्यापक चैतन्य आनन्दरूप न हो तो आत्मचैतन्य भी आनन्दरहित ही होना चाहिये। यदि आत्मचैतन्य आनन्दरहित हो तो इस संसारमे अनुकूल विषयके सम्बन्धसे जो स्वरूपानन्दका भान होता है, वह नही होना चाहिये। जब किसी इच्छित विषयकी प्राप्ति होती है, तब बहिर्मुख वृत्ति क्षणभरके लिये अन्त करण-देशमे अन्तर्मुख आत्माकार बनकर आनन्दका ग्रहण करती है। जबतक वृत्ति बहिर्मुखी रहती है, तबतक मनमे चञ्चलता रहनेके कारण स्वरूपानन्दका भान नहीं होता। केवल अन्तर्मुखी वृत्ति बननेपर ही आनन्दका अनुभव होता है, परतु रूपानन्दका ग्रहण और विषयका ज्ञान दोनोके अत्यन्त अव्यवहित हो जानेके कारण अविवेकीको भ्रान्ति हो जाती है और वह समझता है कि मुझे विषयसे ही आनन्द प्राप्त हुआ है। यदि विषयसे आनन्दकी उत्पत्ति होती तो किसी एक ही विषयसे जो एक व्यक्तिको आनन्द मिलता है और उसीसे दूसरेको दु ख होता है, ऐसा न होता। जैसे शराबीको तो शराब

मिलनेपर आनन्द होता है, परतु शराबको हानिकर और अपवित्र माननेवालेको शराबके स्पर्शमात्रसे ही अत्यन्त दु ख होता है। एक विषय एक समय जितना आनन्दप्रद प्रतीत होता है, वही विषय दूसरे समय उतना प्रिय नही मालूम होता। जैसे यदि किसी मनुष्यका आज्ञाकारी युवा पुत्र धन, विद्या और कीर्ति प्राप्त कर दीर्घकालके पश्चात् दूर देशसे आकर मिले तो उस समय उसे जितना आनन्द होता है, उतना आनन्द उसे फिर दूसरे दिन उसी पुत्रके मिलनेपर नहीं होता। ऐसे ही एक ही विषय एक समय आनन्ददायक प्रतीत होता है और दूसरे समय वही दु खदायी मालूम होता है, जैसे जाडेमे स्नान करनेके लिये गरम जल मिलनेपर तो आनन्द होता है, परतु वैसा ही गरम जल यदि ज्येष्ठकी गरमीमे स्नानके लिये मिले तो मनको क्लेश होता है। इन सब दृष्टान्तोसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि विषयोमे आनन्द नहीं है। विषयोसे यदि आनन्दकी उत्पत्ति होती तो उनसे सबको सब समय समान आनन्द मिलता, परतु ऐसा अनुभव नहीं होता। मनमें जिस विषयकी चाह होती है, उसी विषयकी प्राप्ति होनेपर आनन्द मिलता है, परतु जब उस विषयके प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति होती है, तब मनमें दु ख उत्पन्न होता है। इससे निश्चय होता है कि मनकी वृत्ति अन्तर्मुखी होनेपर ही आनन्द मिलता है। अन्तर्मुखी वृत्ति हुए बिना आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती और वृत्ति तृप्त होनेके कारण जितने कालतक अन्तर्मुखी रहती है, उतने ही कालतक आनन्दका भान होता है। थोडे समयतक वृत्ति अन्तर्मुखी रहे तो थोडे समयतक आनन्द रहेगा और अधिक कालतक वृत्ति अन्तर्मुखी रहे तो अधिक कालतक आनन्दका अनुभव होगा।

आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें प्रीति होती है और उनमें भी जो जितना ही अधिक सम्पर्कमें होता है उसमे उतना ही अधिक प्रेम

होता है। तात्पर्य कि दूरके पदार्थोकी अपेक्षा समीपके पदार्थोंमें अधिक प्रेम होता है। जैसे पुत्रके मित्रकी अपेक्षा पुत्रमें, पुत्रकी अपेक्षा अपने स्थूल शरीरमे और स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीर-रूप प्राण-तत्त्व—जीवनमे अधिक प्रेम होता है। यदि किसी मनुष्यके पैरके अंगूठेमे सर्पदंश हुआ हो और डाक्टर कहे कि इतना अंगूठा कटवा डालो अन्यथा प्राणभय है तो वह मनुष्य सूक्ष्म शरीरमे अधिक प्रेम होनेके कारण उतना अपना स्थूल शरीर तुरंत कटवा डालेगा। सूक्ष्म शरीरका आत्मासे साक्षात् सम्बन्ध होनेके कारण सूक्ष्म शरीरमें स्थूल शरीरादिकी अपेक्षा अधिक प्रीति होती है। जिस आत्माके सम्बन्धके कारण प्रीति होती है, उस आत्मामे सबकी अपेक्षा अधिक प्रीति है, ऐसा ही मानना पड़ेगा। वास्तवमें यह प्रीति आनन्द और दुःखके अभावमे है, और इस आनन्द और दुःखनाशके लिये ही सांसारिक पदार्थोंमे प्रीति प्रतीति होती है। अतः सबकी प्रीतिका मुख्य विषय आनन्दरूप चैतन्य ही है।

पशुओकी स्वाभाविक वृत्तिका निरीक्षण करनेपर मालूम पड़ता है कि वे भी अपने शिशुपर आरम्भमे अति प्रेम करते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े हो जाते हैं वैसे-वैसे माताका प्रेम भी कम होता जाता है और जहाँ बच्चेका दूध पीना बन्द हुआ कि प्रीति भी चली जाती है, केवल सामान्य सद्भावभर रहता है। आरम्भमें अत्यन्त प्रेम करके बच्चोको पालन करनेकी मनोवृत्ति क्यो उत्पन्न हुई ? थोड़ी देरके लिये ऐसा मान लें कि मनुष्य तो इस प्रलोभनके कारण संततिका प्रेमसे पालन करते हैं कि भविष्यमें बालक बड़े होकर हमारी—माता-पिताकी सेवा करेंगे। परंतु पशुओंको न तो भविष्यकी सेवाका लोभ है और न वर्तमान समयमें बच्चोंकी रक्षा करनेसे उन्हे कोई लाभ होता है। ऐसा भी नहीं है कि

पहली सततिमे प्रेम रहा और फिर बादमे होनेवाली सततिसे उनका प्रेम न हो। कितनी ही बार सतान हो, बराबर पशुकी प्रेमविषयक वृत्ति एक समान ही देखनेमे आती है, और हर बार वह उसी तरह एक निश्चित कालतक प्रेम करके फिर प्रेम छोड देता है। इस प्रेमवृत्तिको प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम कहेगे या प्रेमको हरिरूप कहेगे ? यदि प्रकृतिका परिणाम कहे तो फिर प्रसवके समय क्या विकृति हुई जिससे प्रेमकी इच्छा उत्पन्न हुई और पुन इसके विरुद्ध कौन-सी क्रिया हुई तथा क्यो हुई जिससे प्रेम विसर्जित हो गया ? प्रेम करने और छोडनेमें मनोवृत्तिकी ज्ञानपूर्वक ही विकृति होती है। वह ज्ञान और प्रेम दोनो चैतन्यरूप ही हे। यह ऊपर युक्तिपूर्वक समझाया गया है। आनन्द और ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश कदापि नही होता। आनन्द और ज्ञान चैतन्यस्वरूप होनेसे अनादि है। केवल वृत्तिकी उत्पत्ति और लयसे अविवेकीको भ्रान्ति होती रहती है। ज्ञान और आनन्द कदापि प्रकृतिके स्वभावसे उत्पन्न नहीं हो सकते।

विरोधियोका कहना है कि 'यह ससार स्वाभाविक है और इसका सचालन स्वयमेव होता है। प्रकृतिकी अव्यवस्था उसका सबसे बडा प्रमाण हे कि यह स्वाभाविक है, किसीके द्वारा सचालित नहीं।' किंतु यह कहना बडा कठिन है कि 'ससार' शब्दको वे किस अर्थमे लेते हैं। वास्तवमे इस स्थूल पृथ्वीके ऊपरी स्थानोंकी भिन्नताके कारण उन्हे जो कुछ दोप प्रतीत होता है, वे उसीके आधारपर अपना निर्णय कर डालते है। पृथ्वीको छोडकर आकाशमे दिखायी देनेवाले सूर्य, तारागण आदि मण्डलोकी रचना कोई दोप है या नहीं ? इस बातका उन्हें कुछ भी पता नहीं। इससे अनुमान होता है कि उनके 'ससार' का अर्थ है केवल पृथ्वीका स्थूल ऊपरी रूप। परतु यह पृथ्वी ब्रह्माण्डके भीतर बहुत छोटी

है, जैसे हिमालय पर्वतपर रखा हुआ राईका दाना हो; अथवा इस प्रमाणका लाखवाँ हिस्सा कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। यदि ससारका अर्थ सारा ब्रह्माण्ड मान ले और अन्य ग्रहोकी रचनाके दोष आदिका विचार इस कारण कि वे सब अप्रत्यक्ष हैं, छोड़ भी दे तो भी हम संसारको स्वाभाविक नहीं कह सकते; क्योंकि आकाशमे प्रतीत होनेवाले और प्रतीत न होनेवाले सब मण्डल विनाशी है, एक भी मण्डल अविनाशी नही है और सबकी रचना किसी-न-किसी अज्ञातकालमे हुई है। परतु सब मण्डलोका मूल उपादान कारण प्रकृति परिणामी होनेपर भी नित्य है; इसलिये प्रकृतिको यदि कोई अनादि और अनन्त कहे तो उस कथनको सृष्टिकालके भीतर मान लेगे। कार्यरूपसे तो किसी भी मण्डलको अविनाशी नही कह सकते। अपनी पृथ्वी जिस सूर्यके इर्द-गिर्द नियमपूर्वक प्रदक्षिणा कर रही है, वह सूर्य भी भविष्यमे शीतल होकर नष्ट हो जायगा, साथ-ही-साथ सूर्यके इर्द-गिर्द भ्रमण करनेवाले बृहस्पति, शनि, मंगल, पृथ्वी आदि ग्रह भी आधारके अभावमे नष्ट हो जायँगे—ऐसा पाश्चात्त्य भूगर्भशास्त्रियोका कथन है, और अपने देशके प्राचीन शास्त्रकारोने भी ब्रह्माण्डोको विनाशी कहा है। आकाशमे एक नही, अनन्त ब्रह्माण्ड बतलाये गये है। अपना सूर्य और उसके इर्द-गिर्द घूमनेवाले सब ग्रह मिलकर एक ब्रह्माण्ड हुआ, ऐसे अनन्त सूर्य आकाशमे है और सबके आसपास इर्द-गिर्दवाले ग्रह भी है। ये सब ब्रह्माण्ड नाशवान् है। जब एक अथवा अनेक ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते है, तब नष्ट हुए ब्रह्माण्डोके मूल उपादानकारणरूप प्रकृतिके परमाणुओमेसे पुनः ब्रह्माण्डोकी नवीन रचना प्रकृतिसे ही कराकर, उन्हे निश्चित स्थानोमे स्थिरकर पूर्ववत् सृष्टिका कार्य जारी करनेके लिये सर्वज्ञ ईश्वरकी आवश्यकता रहती है। प्रकृतिके

परमाणुओका सयोग भी अपने-आप नही हो सकता, और कदाचित् परमाणुओके सयोगको कोई स्वाभाविक मान भी ले तो स्थान-निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि जो नये मण्डल तैयार होंगे, उसके स्थान पहलेके अन्य मण्डलोसे भिन्न होने ही चाहिये, नहीं तो वे आपसमे बराबर टकराते रहेंगे और इस तरह सृष्टि-कार्य चलना असम्भव हो जायगा। इसलिये अन्तमे कहना पडेगा कि सृष्टि-कार्यका आरम्भ करानेका काम प्रकृतिसे नहीं हो सकता, सर्वज्ञ ईश्वरसे ही होता है।

अक्सर लोग यह शङ्का उपस्थित करते है कि घटका कर्ता कुम्भकार हे और कुम्भकार अपने माता-पितासे उत्पन्न हुआ है। इसी तरह जब जगत्‌का कर्ता ईश्वर हे तो ऐसा ईश्वर किससे उत्पन्न हुआ ? उसका कर्ता किसे मानेगे ? इस शङ्काका समाधान यह हे कि ईश्वर अनादिसिद्ध है। जो वस्तु अनादि होती है, वह कार्य नहीं कहलाती। जो कार्य होता हे, उसीकी उत्पत्ति होती ह और जिसकी उत्पत्ति होती ह उसीके लिये कर्ताकी आवश्यकता रहती हे। किंतु जो कार्य नहीं हे, उसे उत्पन्न होनेवाला नही कह सकते। अत उसका कोई कर्ता भी नही हो सकता चूँकि यह प्रतीत होनेवाला ससार कार्यरूप हे, इसलिये यह मानना ही पडेगा कि यह किसी अज्ञातकालमे उत्पन्न हुआ ह। यह ससार उत्पन्न होनेवाला है इसलिये उससे भिन्न इसका कोई दूसरा कर्ता भी होगा ही, जसे घट कार्य होनेसे उत्पन्न होनेवाला हे। अत उसका उपादानकारण मिट्टी तथा निमित्तकारण कर्ता कुम्हार हे, वेसे ही यह ससार भी कार्यरूप होनेके कारण उसका उपादानकारण प्रकृति और निमित्तकारण ईश्वर हे, परतु जैसे ससाररूप कार्यका उपादानकारण प्रकृति अनादि होनेके कारण उत्पन्न होनेवाली नहीं है और इसलिये उसका कोई उपादानकारण या निमित्तकारण भी नहीं हो सकता, वैसे

ही ईश्वर भी अनादि स्वयसिद्ध होनेसे उसका भी कोई उपादान या निमित्तकारण नही है।

ईश्वर सर्वव्यापक है, एक देशमे स्थित नही है। जो वस्तु एक देशमे होती है, अन्य देशमे नही होती, उसीकी उत्पत्ति और नाश होता है। जिसका देशके हिसाबसे अन्त होता है, उसका कालके हिसाबसे भी अन्त होता है। ईश्वर एक देशमे स्थित (परिच्छिन्न) नहीं है, परतु विभु—सर्वव्यापक हे। सर्वव्यापकका कर्ता कोई नही हो सकता। वैसे ही जो वस्तु अनित्य होती है, वही कर्तासे जन्य होती है, परतु ईश्वर अनित्य नही है। ईश्वर अपरिणामी, अनादि, अनन्त है। इस हेतुसे ईश्वरका कोई कर्ता नहीं हो सकता।

कदाचित् ईश्वरका कोई कर्ता माने तो उसमें यह दोष आता है कि कोई स्वय ही तो अपना कर्ता बन नही सकता, एक ईश्वरके कर्ता दूसरे ईश्वरको मानना पडेगा। पुन दूसरेका कर्ता तीसरा ईश्वर अङ्गीकार करना पडेगा। फिर तीसरेका चौथा, चौथेका पॉचवा और इस तरह अनन्त कर्ताओंको मानना पडेगा, धाराका कही विराम न होगा तथा इस रीतिसे अनवस्था-दोषकी प्राप्ति होगी।

वास्तवमे इस ससारमें जो अविचल नियम देखनेमे आते है, उनका रक्षक सर्वज्ञ ईश्वर है। परिणामी प्रकृतिमे रूपान्तर होनेके लिये यही अपरिणामी ईश्वर आधार-स्वरूप है।

उपर्युक्त हेतुओसे ईश्वर अनादिसिद्ध होनेके कारण कर्तासे जन्य नही है, ऐसा सिद्ध होता है।

४—मनुष्योकी मुखाकृति (चेहरे) और शब्दोच्चारण (आवाज) पर विचार करनेसे भी सहज ही ईश्वरकी सिद्धि हो सकती है। वर्तमान समयमे इस पृथ्वीपर लगभग ढाई अरब मनुष्योकी आबादी है। इनमें

अथवा भूतकालके मनुष्योंमे किन्हीं दो मनुष्योके चेहरे पूर्णरूपसे समान नहीं देखे गये है। एक ही माताके गर्भमेसे एक ही साथ जन्म लेनेवाले भाई-बहिनोके चेहरोंमें भी थोडा-बहुत अन्तर अवश्य ही रहता है, वैसा ही अन्तर आवाजमे भी रहता है। यदि पूर्णरूपसे समानता रहती तो रामको धनिक जानकर श्याम उसके घरमें घुस जाता और सच्चे रामको नकली कहकर घरसे निकाल देता, परतु ऐसा इस ससारमे कहीं देखा नहीं जाता। यदि प्रकृतिकी ही सब रचना होती तो इस नियमका सर्वाशमें पालन नहीं हो सकता था। इसीसे सर्वज्ञ ईश्वरकी इस सृष्टिको सर्वज्ञ ईश्वरद्वारा रचित ही मानना पडता है।

५—प्राणिमात्रके शरीरकी आन्तर रचना और आन्तरिक क्रियाका तनिक भी विचार करनेपर विश्वम्भरकी दयालुता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। प्राणियोमें, किसी भी जातिके प्राणीमें अथवा मनुष्यके शरीरमे ऐसा कोई भी अवयव अनुभवमें नहीं आता जो सर्वथा अनुपयोगी हो। शरीरका प्रत्येक अवयव जीवनके लिये उपयोगी है। आन्त्रपुच्छ (Appendix) जैसे एक-दो अवयवोंका कार्य अभीतक डाक्टर नहीं समझ सके हैं, परतु ये सब जीवनके लिये उपयोगी हैं। यदि शरीरका कोई अवयव निकाल दिया जाय तो आरोग्य और सुखमें त्रुटि प्रतीत होती है। मनुष्यशरीर और सिह-व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके शरीरके अवयवोकी रचनामें भी परमात्माने आवश्यकतानुसार अन्तर रखा है। मनुष्योके दाँत, नख, आमाशय, पित्ताशय, अँतडी, अस्थि और त्वचादि अवयव जैसे हैं, उनसे हिंसक प्राणियोंके भिन्न प्रकारके ही देखनेमें आते हैं। यदि मनुष्योंके दाँत और नाखूनके समान हिंसक पशुओंके भी दाँत और नाखून होते तो उन्हें भूखों मरना पडता। हिंसक प्राणियोंके आमाशय और पित्ताशय कमजोर होते तो थोडे ही समयमें

उनकी पाचनक्रिया दूषित हो जाती और वे कालके गालमें समा जाते। यदि उनकी अँतडी मनुष्यकी अँतड़ीके समान बहुत लम्बी रहती तो मलावरोध होकर आँतमें कीड़े पड़ जाते और चञ्चलता भी कम रहती, जिसके फलस्वरूप आहार कठिनाईके साथ मिलता। बाह्य-त्वचा कमजोर रहती तो बाह्य आघात सहन करनेकी शक्ति भी कम हो जाती। अस्थि कमजोर होती तो अधिक चलना, दौड़ना, कूदना इत्यादि क्रियाओमे त्रुटि आ जाती। इसी प्रकार यदि मनुष्योको हिंसक पशुओके समान अवयव मिलते तो उनमे अधिक क्रूरता और बुद्धिमन्दता रहती। इससे कहना पडेगा कि परमात्माने सोच-विचारकर ही प्राणियोंके अवयवोमें अन्तर रखा है। अरबके रेगिस्तानमे मुसाफिरी करनेवाले ऊँट यात्राके पूर्व पेटके भीतरकी एक थैलीमे इतना पानी भर लेते हैं जो दो महीनेतक चलता है। फिर आवश्यकतानुसार वे उस जलको उपयोगमे लाते रहते हैं। यह सब रचना ज्ञानपूर्वक ही की हुई मालूम होती है। जिनके लिये जो हितकर हो उनको वही देना—यह विवेक जड प्रकृतिमे कदापि नहीं हो सकता।

इसी प्रकार खाये हुए अन्नके साथ आमाशय-रस, थूक, पित्त, अग्निरसादि मिल जानेकी, फिर रसके शोषण होनेकी, मल-मूत्रादि निरुपयोगी भागके अलग होकर यथासमय बाहर निकल जानेकी और रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य इत्यादि बननेकी क्रिया नियमपूर्वक होती रहती है। यदि एक छोटा-सा काँटा (विजातीय द्रव्य) शरीरमे घुस जाय तो काँटेके आस-पास सूजन हो जाती है और उसमें पीब पैदा हो जाता है। अगर इतनेपर भी सँभाल न हो तो शरीरकी उष्णता बढ़कर ज्वर आ जायगा। फिर घावके आस-पासका मांस सड़ने लगेगा। प्रकृतिके कार्यकी दृष्टिसे तो शरीर और काँटा दोनों एक समान

प्रकृतिरूप ही हैं, केवल चैतन्ययुक्त दृष्टिसे काँटा विजातीय है। शर
जीवात्माके कारण जीवन्त है और कॉटा जड है। ऐसी ज्ञानपूर्वक रच
दृष्टिगोचर होनेपर कहना पडता है कि सृष्टिका उत्पादक और रक्षक ईश
हैं, यह प्रकृतिका मनगढत रूपान्तर नही है। आन्तर अवयवोंका र
देखा जाय तो उसमें भी विभिन्नता प्रतीत होती है। आमाशयका र
गुलाली, यकृतका लाल, पित्ताशयका हरा-पीला, क्लोमका नीला, ल
अन्त्रका हलका गुलाबी और बृहद् अन्त्रका रग मैला-पीला प्रतीत हो
है। ऐसे ही मस्तिष्ककी रचना और उसके विभागोके रग-रूपादि त
ज्ञानतन्तुओंकी क्रिया देखनेसे भी ऐसा सहज ही बोध होता है कि य
सब कृति किसी चेतन-शक्तिद्वारा ज्ञानपूर्वक की हुई है।

६-मनुष्योके हाथकी रेखाओकी ओर दृष्टि डालनेपर भी ऐ
प्रतीति होती है कि इनकी रचना बुद्धिपूर्वक ही की गयी है। किसी
दो मनुष्योंकी हस्तरेखाएँ पूर्णरूपसे एक समान नही प्रतीत होत
थोडा बहुत अन्तर जरूर रहता है। यह भिन्नता किसी हेतुको ध्यान
रखकर ही की गयी है। सामुद्रिक शास्त्र जाननेवाले रेखाओं
भिन्न भिन्न फल बताते हैं। समय-समयपर नयी-नयी रेखाएँ भी बन
हुई प्रतीत होती हैं और उनके अनुसार भावी सुख-दु खरूप फल
बहुतोंके जीवनमे देखा गया है। नास्तिक लोग तो ज्यौतिष अ
सामुद्रिक शास्त्रको गप्प ही समझते हैं, परतु उनके ऐसा समझनेसे
सत्य शास्त्र कदापि असत्य नहीं हो सकते। हाथके अँगूठेकी रेखाओं
भिन्नता होनेके कारण ही सरकार अपराधियोंके अँगूठेकी निशानी
लेती है और इस निशानीके सहारे ही यह पता लग जाता है कि य
आदमी कौन है और पहले कितनी बार इसने अपराध किये हैं। य
इन रेखाओंकी रचना केवल प्रकृतिका ही कार्य होता तो वह अवश

ही दोषयुक्त रहता। इस प्रकार इतनी दक्षतापूर्ण रचना कदापि न होती।

७—सस्कृत-भाषाकी रचनाका अवलोकन करनेपर भी सर्वज्ञ ईश्वरकी महिमा समझमे आती है। वर्तमान समयमे विद्वानोकी यह दृढ मान्यता है कि इस ससारमे सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। वेदोंकी रचना सस्कृत-भाषामे है। सस्कृत-भाषासे पहले और कोई भाषा थी, बादमें क्रमश विकास होते-होते सस्कृत हो गयी—ऐसा कोई भी प्रमाण आजतक नही मिला है, न किसी विद्वान्ने प्रमाणित तर्कद्वारा सस्कृतसे पहले किसी दूसरी भाषाकी सिद्धि की है। युगके आदिकालसे ही सर्वसाधारण जनताकी बोलचालकी भाषा सस्कृत थी, ऐसा ही माना गया है। सस्कृत-भाषामे अक्षर, स्वर, व्यञ्जन, शब्दरचना इत्यादि सब नियमित है। ससारकी किसी भी भाषामे ऐसे सुन्दर नियम नहीं देखे जाते। इधर करीब तीन हजार वर्षसे साधारण जनताकी व्यावहारिक भाषा सस्कृतके स्थानमे दूसरी हो गयी है। इससे पहले सस्कृत-भाषामें ही सब व्यवहार होते थे, ऐसा इतिहासज्ञ विद्वानोका कथन है। सस्कृत-साहित्य विशाल है। परतु सस्कृतमे यौगिक शब्द अधिक हैं और रूढ शब्द बहुत कम, जिनसे आज भी नियमपूर्वक चाहे जितने नये-नये यौगिक शब्द बनाये जा सकते हैं, फिर भी समझनेवालोंको कोई दिक्कत नहीं हो सकती। सस्कृत-शब्दकोष अनेक विद्वानोंको कण्ठस्थ है। यह सुविधा और किसी भी भाषामें नहीं है। पाश्चात्त्य अग्रेजी आदि भाषाओमे 'डिक्शनरी' (शब्दकोष) की प्रत्येक नयी आवृत्तिके समय सैकडो नये शब्द बढाने पडते हैं। ससारमें किसी एक मनुष्यको भी सारी डिक्शनरी कण्ठस्थ नहीं है। बॅगला, मराठी, हिंदी, गुजराती आदि भाषाओके बोलने और लिखनेकी पद्धति जो सौ वर्ष पूर्व थी, वह आज नही है। उसमें बहुत अन्तर हो गया है। किंतु सस्कृत-

भाषामे इतनी अधिक मर्यादा छिन्न-भिन्न नहीं हुई है। वेदकालके पश्चात् पाणिनि मुनिके समयतक कुछ अन्तर पडा था, परतु पाणिनिने व्याकरणकी नयी रचना करके स्थानभ्रष्ट शब्दोको मर्यादाके अदर ले लिया और नयी अशुद्धि न हो, इसके लिये नियम बना दिये। अब यह विचारणीय है कि सस्कृत-भाषाकी रचना किसने की। साधारण जनताने मिलकर की अथवा किसी विद्वान्ने अपनी बुद्धिसे की। साधारण जनता यदि भाषा तैयार करती तो वह अनियमित होती। नियमके लिये तो ज्ञानकी आवश्यकता होती है। यदि यह कहे कि किसी एक विद्वान्ने या अनेक विद्वानोने मिलकर इसे बनाया तो फिर यह प्रश्न उठता है कि बिना पढे-लिखे वे विद्वान् कैसे बन गये। इसलिये अन्तमें यह कहना पडेगा कि सस्कृत-भाषा ईश्वरप्रदत्त है। युगके आदिकालमें अन्य ग्रहोंमे रहनेवाले ऋषियोने सर्वज्ञ, ससाररक्षक परमात्माकी आन्तर-प्रेरणासे इस पृथ्वीपर जन्म लेकर सस्कृत-भाषा और अनादि-सिद्ध ज्ञानकी सम्पत्ति वेद जगत्को दिये।

अनेक विद्वानोंका ऐसा भी कहना है कि प्राचीनकालमे भी सस्कृत-भाषा साहित्य लिखनेके निमित्त केवल विद्वानोंकी भाषा थी, सब जनताकी साधारण बोलचालकी भाषा नहीं थी। इससे ऐसा कहना पडेगा कि सस्कृतकी रचना किसी विद्वान्ने की है, किन्तु यह बात ठीक नहीं है। तीन हजार वर्ष पूर्व हमारे इस आर्यावर्त देशमें व्यावहारिक सब कार्योंमें जनता सस्कृत-भाषाका ही उपयोग करती थी, सस्कृतके सिवा अन्य कोई भाषा नहीं थी। पाली और मागधी भाषाएँ पीछे सस्कृतसे ही अपभ्रश होकर निकली हैं। यदि देश-भाषा दूसरी होती तो पाली-मागधीपर उस भाषाका भी प्रभाव अवश्य पडता। किन्तु उनके साहित्यपर अन्य किसी भाषाकी छाया नहीं दिखायी पडती।

पाली और मागधीके अतिरिक्त अन्य देशोकी भाषाओपर भी संस्कृतका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यदि केवल विद्वानोंकी ही भाषा संस्कृत होती तो अन्य भाषाओंमे सस्कृतके अपभ्रंश शब्द नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त सस्कृत-साहित्यमे किसी प्राचीन भाषाका नाम अथवा शब्द नहीं मिलता है। इसलिये संसारकी आद्य भाषा संस्कृतको ही मानना पडेगा, और आद्य भाषा होनेके कारण उसे ईश्वरदत्त भी कहना ही पडेगा।

वेदोके विषयमें कोई-कोई यह भी कह बैठते हैं कि 'वेदोमे पहाड़, नदी, बादल, साँप, रोग आदिसे भयभीत होकर तथा भोलेपनके कारण उनके रहस्यको न समझ सकनेके कारण जो ऋचाएँ उन पूर्वपुरुषोंने बनायी हैं, उन्हे धर्मका अंश कैसे मान सकते हैं ? विभिन्न परिस्थितियो तथा तत्कालीन धार्मिक कृत्योके वर्णन वेदोमें भरे पड़े हैं। इन सबके संग्रह—वेदको ईश्वरका बनाया हुआ मानना या उसे धर्मशास्त्र कहना प्रत्यक्ष भूल है। धार्मिक दृष्टिसे वेदोका कोई मूल्य नही, वे तो इतिहास-ग्रन्थ हैं।'

इस प्रकारका विचार रखनेवाले लोग वास्तवमे वेदका कुछ भी ज्ञान नही रखते। यदि वे नासदीयादि पारमार्थिक सत्यका बोध करानेवाले सूक्त देखें तो उन्हें सहज ही अपनी गलती समझमे आ जाय। ईश्वर और सत्यका स्वरूप बतलानेवाले ज्ञानपूर्ण उपदेश हृदयके विक्षेप-दोषका शमन करनेवाले उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्डकी विधिको इतिहास कहना कितने आश्चर्यकी बात है। वेदके रचयिता पूर्वपुरुष भोले और कम बुद्धिवाले थे, यह न मालूम उन्होने कैसे जान लिया। चाहे जो समझ लेने और कह डालने की तो कोई दवा ही नहीं है !

८—ऋतु-कालकी दृष्टिसे देशकी स्थितिका निरीक्षण करनेपर भी ईश्वरकी लीलाका अनुभव होता है। सब ऋतुओका परिवर्तन नियमपूर्वक होता है। किसी भी ऋतुकी अनियमित प्रतीति नहीं होती। वर्षा ऋतुमे वृष्टि होनेके कारण अनेक छोटे-छोटे जन्तु उत्पन्न हो जाते है, जिनमेसे बहुत-से इतने छोटे होते हैं कि बिना यन्त्रकी सहायतासे दिखायी भी नही पडते। इनमेसे अनेक जातिके जन्तु मनुष्योंके आरोग्यके नाशक होते हैं। ऐसे जन्तुओका नाश करनेके हेतु साथ-ही-साथ मक्खियाँ भी बहुत परिमाणमे उत्पन्न होती हैं। जब ये जन्तु कम हो जाते है, तब मक्खियोको मारनेवाली मकडियाँ उत्पन्न होने लगती है। कदाचित् कोई शङ्का करे कि ऐसे जन्तु—मक्खी, मकडी, मेढक, चूहे, साँप, बिल्ली इत्यादि—सर्वज्ञ परमात्माने क्यो पैदा किये ? किन्तु यह शङ्का नासमझीकी है। परमात्माकी सृष्टिमे कुछ भी अनुपयोगी नहीं है, हम नही जानते, इससे क्या हुआ ? फिर पूर्वजन्मोके सस्कारके अनुसार शरीर मिलता है। प्राणिमात्रको पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करना पडेगा। जबतक दुष्ट सस्कार रहेगे, तबतक पारमार्थिक ज्ञान मिल नहीं सकेगा। दुष्ट संस्कारोको जलानेके लिये, वासनाओका नाश करनेके लिये, सहनशीलता बढानेके लिये ऐसे अनेक जन्मोकी आवश्यकता रहती है। दु ख भोगे बिना और प्रतिकूल परिस्थितिका सामना किये बिना वास्तविक सुख नहीं मिलता। जब बालक विद्याध्ययनमे प्रेमपूर्वक अधिक परिश्रम करेगा, खेलने-कूदनेमें विद्याध्ययनका उपयोगी समय नही लगायेगा, तभी वह पण्डित बन सकेगा। अब किसान सूर्यकी गरमी, वृष्टि, ठढी हवा इत्यादि सब बुद्धिपूर्वक सहन करते हुए खेतीमे परिश्रम करता हे, तब उसको फसल मिलती हे। बिना दु ख भोगे सुख नहीं मिलता—

यही नियम है। इस विषयका विशेष समाधान 'कर्मवाद' पर विचार करते समय किया जा सकता है, क्योंकि इस शङ्काका सम्बन्ध कर्मवादसे ही है।

शरद् ऋतुमे जो-जो अन्न उत्पन्न होते हैं, वे सब प्राय पित्त-प्रकोप करनेवाले होते है और इस पित्तप्रकोपको शमन करनेवाली पित्तपापडा आदि ओषधियाँ भी उसी शरद् ऋतुमे उत्पन्न हो जाती हैं। वसन्त ऋतुमे प्राय कफका प्रकोप होता है। ऐसे समयपर कफशमनकारक कटु ओषधियाँ परमात्मा तैयार कर देते हैं। इन सब नियमोंको क्या प्रकृतिका स्वाभाविक कार्य कहा जायगा ? नियममें ज्ञान चाहिये, प्रकृति तो जड है। इसलिये अन्तमे ईश्वर-शरणको स्वीकार किये बिना छुटकारा ही नहीं है।

९—मनुष्योके और प्राणिमात्रके शरीरमे विचार करनेवाला मन है, यह सब जानते हैं। इस मनके बलका विचार करनेसे सर्वव्यापक ईश्वरकी सिद्धि होती है। किसी व्यक्तिका मन कमजोर है और किसीका बलवान्। परतन्त्र पशुओके मनसे स्वतन्त्र पशुओका मन प्राय बलवान् होता है। मनुष्योमे भी परतन्त्रका मन प्राय कमजोर हो जाता है। इसी तरह अनैतिक मनुष्यका मन भी कमजोर हो जाता है। परतन्त्रता और अनीतिसे मनका बल घट जाता है। परतु स्वतन्त्र रहकर प्रतिकूलताका सामना करनेसे और नीतिका आग्रहपूर्वक पालन करनेसे मनोबल बढ जाता है। साथ-ही-साथ धैर्य, साहस, उत्साह आदि गुणोका भी विकास होता है। अनेक मनुष्य त्राटक, ध्यान, उपासनादि क्रियासे अधिक परिमाणमे मनोबल प्राप्त कर लेते हैं। अनेक व्यक्तियोंमे जन्मसिद्ध मनोबल प्रतीत होता है। मनोबलवालोका अन्य व्यक्तियोंपर प्रभाव पडता है। पाश्चात्त्य विद्वानोने मनोबल (Will-Power) विषयक अनेक ग्रन्थ

लिखे हैं। अपने देशमे प्राचीन योग और उपासनाके अनेक ग्रन्थ हैं और अर्वाचीन कालमें भी अनेक नये ग्रन्थ विद्वानोने लिखे है। पाश्चात्त्य विद्वानोंके ग्रन्थोमें मेस्मेरिज्म विद्याकी प्राप्तिके निमित्त अधिक प्रयत्न किया गया है। मेस्मेरिज्म सीखनेवालोंको पहले त्राटकका अभ्यास करना पडता है। त्राटक योगाभ्यासका एक छोटा-सा अङ्ग है। इस विद्याको जाननेवाले सब देशोंमे मनोबलके प्रयोग दिखाया करते हैं। ये लोग अनेक मनुष्योके असाध्य रोगोको भी सकल्पसे दूर कर देते हैं। ये मेस्मेराइज किये हुए व्यक्तिको चीनी कहकर अफीम खिला सकते हैं और खानेवालेको चीनीका ही स्वाद आता है और गुड भी चीनीका ही होता है। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके प्रयोग मेस्मेरिज्म जाननेवाले दिखाते हैं। एक महावतका छोटा-सा लडका हाथीको बदमाशी करते हुए देखकर जोरसे चिल्लाकर आवाज देता है, बस, तुरत मदोन्मत्त हाथी कम्पित होकर आज्ञानुसार आचरण करने लगता है। लडकेकी अपेक्षा हाथीमे शरीर-बल अनेक गुना अधिक होनेपर भी केवल मनोबलकी कमीके कारण वह भयभीत हो जाता है। यह मनोबल कहाँसे मिलता है ? प्रकृतिके परमाणुओंका रूपान्तर हो जानेसे सबके अदर मनोबल बढ जाता है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता। जब त्राटक और ध्यानद्वारा अथवा सदाचारका पालन करनेसे मनोबलकी वृद्धि होती है, तब यह नहीं माना जा सकता कि बाहरसे प्रकृतिके परमाणु शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। यदि कोई यह कहे कि शरीरके भीतरके परमाणुओंमें स्वाभाविक परिवर्तन हो जानेसे मनोबल बढ जाता है तो यह भी ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि मनुष्यके शरीरसे हाथीका शरीर बहुत बडा और बलशाली होता है, किन्तु उसमें मनोबल मनुष्यकी अपेक्षा बहुत कम होता है। इसलिये ऐसा कहना

पडेगा कि यह मनोबल सर्वव्यापक चैतन्यकी शक्तिसे ही मिला है। यदि सर्वव्यापक चैतन्यका अभाव होता तो जगत्मे ज्ञान, मनोबल, विभिन्न नियमित रचनाएँ आदि कोई भी चीज देखनेमे न आतीं। अफीम खिलाकर चीनीके स्वादका भान करा दिया जाय, शरीरमे चीनीका ही गुण हो, अफीमका असर न हो—इससे भी सर्वज्ञकी सकल्पमयी सृष्टि सिद्ध होती है। सकल्पसे यदि सृष्टि न बनी होती तो मेस्मेरिज्म विद्या जाननेवालो अथवा योगियोके सकल्पका प्रभाव अन्य व्यक्तियोपर कुछ भी नही पडता। इस सत्यको विशेषरूपसे जाननेके लिये मानसशास्त्र (Psychology) और अध्यात्मकशास्त्र (Philosophy) के अभ्यासकी आवश्यकता है।

अब अन्य रीतिसे मनका निरीक्षण करे। परस्पर व्यवहार करनेवाले मनुष्योमे जबतक एक-दूसरेके प्रति पवित्र भाव रहता है, तबतक वे व्यवहार सरलतासे करते रहते है, परतु जहाँ किसी व्यक्तिके हृदयमे किसी कारणसे परिवर्तन हुआ कि वही भाव तुरत दूसरेके मनेमे भी आने लगता है। फिर दोनो एक दूसरेकी भावना जान लेते है। परस्पर वार्तालापके समय भले ही शब्दोसे वे मनोभाव छिपा ले, परतु हृदयसे हृदयका भाव वे नही छिपा सकते। यदि आप बालकोकी तरफ प्रेमभरी दृष्टिसे देखे तो वे भी अपनी प्रसन्नता दिखावेंगे और क्रोधसहित देखे तो उनके कोमल मनपर भयका असर हो जायगा। आप अप्रसन्नता दिखायँगे तो वे भी उदास हो जायँगे। ऐसी ही बाते पशुओमे भी दिखायी देती है। जब वे किसीको मारनेके लिये आते हुए देखते है, तब कम्पित होकर भाग जाते हैं। जब कोई प्रेम करनेवाला आता है, तब वे भी अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इन दृष्टान्तोसे निश्चित होता है कि मनुष्य और प्राणिमात्रके भाव परस्पर समझमें आ जाते हैं।

इसलिये हम दृढतापूर्वक कह सकते है कि किसी सर्वज्ञके द्वारा ही परस्पर मनका सम्बन्ध ज्ञानपूर्वक जोडा गया है।

किसीने अपना अथवा दूसरेका मन नेत्रोंद्वारा देखा नहीं है। किसी डाक्टरने भी यन्त्रद्वारा नही देखा है। फिर भी यह सबका अनुभव है कि प्रेमीके मनके साथ अपने मनका समागम होता रहता है। यहाँतक कि दूर देशमें चले जानेपर भी अनेक बार एक ही समय एक-दूसरेका चिन्तन होता है और उसका असर शरीरपर भी पडता है, जिससे शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। किसी विरोधी विचारवाले व्यक्तिके मनके साथ अपना मन कभी नहीं मिलता। इस तरह जो स्वेच्छानुसार मनका सयोग-वियोग होता है, उसका आधार सर्वव्यापक पूर्ण सामर्थ्यवान् चैतन्य ही हो सकता है। यदि इसका हेतु प्रकृति होती तो यह सयोग-वियोग स्वाभाविक ही हुआ करता, स्वेच्छाका उसमें कोई स्थान न होता।

मन एक करण है। मनको प्रवृत्त करानेवाला कर्ता मनसे (करणसे) भिन्न होना चाहिये। मेरा मन दूसरी ओर था, इसलिये मैंने नहीं सुना, मेरा मन दूसरी ओर था, इसलिये मैंने नहीं देखा, ऐसा प्राय सब लोग अक्सर कहा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मन एक करण है और जो करण है वह कदापि कर्ता नहीं हो सकता। कर्तारूप जीवात्मा मनसे भिन्न ही होगा। कर्ता अपनी इच्छासे ही ज्ञानपूर्वक क्रिया करता-कराता है। करणको क्रिया करनेमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं कह सकता। यदि नास्तिक लोग विचार करके देखें तो वे भी स्पष्टरूपसे यह सत्य समझ सकेंगे कि केवल एक मनरूप करणका सम्यक्-रूपसे विचार करनेपर देहली-दीपक-न्यायवत् प्रवर्तक आत्माका और दूसरेके मनके साथ सम्बन्ध होनेके लिये सर्वव्यापक परमात्माका वोध एक ही

साथ हो जाता है।

१०—इतिहासका अध्ययन करनेसे भी रक्षक शक्तिका अनुभव होता है। जब यज्ञके बहाने भारतवर्षमें सर्वत्र भयंकर पशुसंहार होने लगा, तब गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए, जिन्होंने बौद्ध-धर्मका प्रचार करके हिंसामय यज्ञ-यागादि क्रिया बंद करा दी। कालान्तरमें जब बौद्ध-सम्प्रदायमें वाममार्गकी तान्त्रिक क्रियाओंके नामपर भयंकर अनीतिपूर्ण क्रियाएँ होने लगीं, तब शङ्कराचार्यने सनातनधर्मका प्रचार करके बौद्ध-धर्मको दबा दिया। सनातनधर्मावलम्बियोमे भी जब शुष्क ब्रह्मज्ञानकी वृद्धि हुई, तब रामानुजादि आचार्योंने समाजको भक्तिसुधाका पान कराया। ऐसे ही राजनीतिक इतिहासमें जब सत्रहवीं सदीमे औरंगजेब धर्मके नामपर भयंकर जुल्म करने लगा, तब छत्रपति शिवाजी महाराज, गुरु गोविन्दसिहजी, महाराणा राजसिंहजी और दुर्गादास राठौर—ये चार महारथी अलग-अलग प्रान्तोंमें पैदा हुए। यह नियम है कि आवश्यकता होनेपर अत्याचारका सामना करनेवाली शक्ति तैयार हो जाती है। ऐसा और भी अनेक समयोमें प्राचीन कालमें हुआ है, यह इतिहाससे सब कोई सहज ही समझ सकते हैं। इस समय भी ऐसा ही हो रहा है। कहनेका मतलब कि सब समयमें, सब देशोंमें, प्रतिकूलताका सामना करनेके लिये तथा समाज और देशका रक्षण करनेके लिये एक अथवा अधिक व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। इसे प्रकृतिका कार्य कहेगे या ईश्वरकी अद्भुत लीला ? यदि विपरीत भाव न रखकर थोडा भी विचार किया जाय तो सत्यकी झाँकी मिल सकती है।

११—संसारमें उन्नति और अवनति सब देशोंकी, सब सम्प्रदायोंकी और सब समाजोंकी होती रहती है। इसमें भी ईश्वरकृत नियमका अनुभव होता है। यह संसार चल है, किसीकी स्थिति सदा

एक-सी नहीं रहती। सूर्य, पृथ्वी आदि मण्डल चल हैं, वायु बहता ही रहता है, जल नीचेकी ओर बहता रहता है, ऋतुओंका क्रमश परिवर्तन होता रहता है और शरीरमे बाल्ययौवनादि अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। इसी तरह उन्नति और अवनति भी क्रमश होती रहती है। एक समय जो जाति राज्य कर रही थी, वही आज परतन्त्रता भोग रही है, जो जाति किसी समय परतन्त्र थी, वही आज दूसरोपर प्रभुत्व कर रही है। अपने ही देशको देखिये, एक समय यह कितनी उन्नति कर गया था। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियोंकी इसपर पूर्ण कृपा थी। उस समय ससारभरमें इसका गुणगान हो रहा था, किंतु आखिरकार इसका सौभाग्य-सूर्य भी अस्ताचलकी ओर चल ही पडा और अन्तमें इसकी जो अवस्था हुई, उसका पता हम सबको है ही। अब पुन हम अपनी अवस्थाको समझने लगे हैं और पतनके गर्तसे निकलकर ऊँचे चढनेका प्रयत्न करने लगे हैं। कौन कह सकता है कि हम इसी अवस्थामें पडे रहेंगे और हमारी उन्नति होगी ही नहीं ? क्या यह सब कार्य जड प्रकृतिका है ? थोडा विचार करनेपर ही इसके अन्दर भी ईश्वर-लीलाका दर्शन हो सकता है।

१२—ससारके सब जीवोंके कल्याणके लिये परमात्माने नियम बनाये हैं। प्राणिमात्रको परमात्मा सत्यके निकट पहुँचनेके लिये सामर्थ्य प्रदान करता है। यदि विपरीत बुद्धि छोडकर, ईश्वरीय नियमानुसार निरीक्षण किया जाय तो यह बात सहज ही समझमें आ सकती है।

आस्तिकवादी इस ससारको अनादि मानते हैं। अनादिका अर्थ है आदि यानी उत्पत्तिरहित। किसकी उत्पत्ति नहीं, इस पृथ्वीकी अथवा पृथ्वीवासी मनुष्यादि प्राणियोंकी ? इस पृथ्वीकी उत्पत्तिका निश्चितकाल मालूम न होनेपर भी यह मानना ही पडेगा कि इसकी उत्पत्ति किसी

अज्ञात भूतकालमें हुई थी। कारण, किसी भी कार्यको हम अनादि नहीं कह सकते और पृथ्वी भी एक कार्य ही है। वनस्पति, पशु, पक्षी और मनुष्यादि सब प्राणियोकी उत्पत्ति और नाशका अनुभव तो हमे बराबर हो ही रहा है। तो फिर संसार अनादि है, इसका क्या मतलब ? जीवात्मा—जो परब्रह्मका अंश है—अनादि है और कार्यरूप विनाशी पृथ्वी, सूर्यादि मण्डल और प्राणिमात्रके शरीरका उपादानकारणरूप प्रकृति भी अनादि है; परंतु दोनोंमे अन्तर यह है कि जीवात्मा अपरिणामी नित्य है और प्रकृति परिणामी नित्य है। परिणामी तत्त्वको अपरिणामी तत्त्वका आधार होना चाहिये। नित्य, अविचल, अपरिणामी आधारके बिना परिणामी प्रकृतिकी नित्यता सिद्ध नहीं हो सकती। प्रकृतिके जिस परमाणुसमुदायसे इस ब्रह्माण्ड (सूर्यादि मण्डल, पृथ्वी और प्राणिमात्र) की उत्पत्ति हुई है, उसी परमाणु-समुदायसे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिसे पहले अनन्त बार ब्रह्माण्डोकी उत्पत्ति और नाश हो चुका है। प्रकृतिमेसे कोई भी सृष्टि पहली बार नहीं हुई। ऐसे कार्यरूप जगत्‌के अनन्त बार उत्पन्न होने और नष्ट हो जानेपर भी चैतन्य (ईश्वर और आत्मा) तथा कारणरूपा मूल प्रकृति अनादि होनेके कारण सृष्टिको अनादि माना है। कार्यरूपा सृष्टिको अनादि नहीं माना है। प्रवाहरूपसे तो सृष्टिको अनादि कह सकते हैं, किंतु केवल उत्पत्तिका अभाव कहकर वर्तमान सृष्टिको किसी भी विद्वान्‌ने अनादि नहीं माना है। सृष्टिका जब-जब आरम्भ होता है, तब-तब नये-नये जीवात्माओकी उत्पत्ति नहीं होती। परंतु पूर्वसृष्टिके अनुशयी (प्रकृतिका आश्रय करके सुप्तावस्थामें पड़े हुए) जीवात्माओंमेंसे जिन-जिनकी विश्रान्तिका समय पूर्ण हो जाता है और उनके जन्म लेनेका समय प्राप्त होता है, उन-उनकी उत्पत्ति पुनः-पुन. होती रहती है। वास्तविक दृष्टिसे यह उत्पत्ति

नहीं वर पुनरागमनमात्र है और जीवोंके पूर्वजन्मार्जित सस्कारोंके अनुसार उन्हें मनुष्ययोनि या इतर योनि, सुख-दु ख और ज्ञानकी न्यूनाधिकता प्राप्त होती रहती है।

प्राणिमात्र कर्म करनेमें स्वतन्त्र है, परतु फल भोगनेमे परतन्त्र है। किये हुए कर्मोका फल भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता। इस कारण कर्मोके अनुसार न्यूनाधिक सुख-दु ख प्रतीत होते हैं। सुख-दु ख भोगते भोगते सबको दु खसे छूटनेकी इच्छा भी हो जाती है, परतु दु ख कैसे दूर हो, यह सब कोई नहीं जान सकते। केवल सदाचारी और पुण्यात्मा व्यक्तियोको ही ईश्वरकी शरणमें जानेकी इच्छा होती है, जिससे वे सर्वदा ध्यानादि क्रिया करते हुए ईश्वरीय नियमके अनुसार सत्यकी ओर अग्रसर होते रहते हैं और अन्तमे सासारिक दु खोंसे छूट जाते हैं। जिस तरह सेवन करनेवालोंकी सर्दी दूर करने और भोजन पका देनेके लिये तथा सेवन न करनेवालोंकी सर्दी दूर न करने और भोजन न पका देनेके लिये हम अग्निको अन्यायी या पक्षपाती नहीं कह सकते, उसी तरह भक्ति, ध्यानादिके द्वारा सत्यका विशेष साक्षात् हो जाने तथा दु खसे मुक्ति मिल जानेके कारण परमात्माको भी खुशामदपसद नहीं कह सकते। जब कोई अधिकारी मनुष्य ज्ञानपूर्वक ध्यानादि क्रिया करके सत्यके अधिक निकट पहुँचता है, तब उसके हृदयसे राग-द्वेष, भय, क्रोध, ईर्ष्या, असत्य, अनीति, दुराचार और हिंसादि वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और दया, उदारता, क्षमा, प्रेम, भक्ति, धैर्य, शान्ति, सत्यपरायणता इत्यादि धार्मिक वृत्तियाँ वढ जाती हैं। इस तरह धीरे-धीरे दुष्ट वासनाओंका नाश हो जाता है, मन विपयसेवनसे उपराम हो जाता है और सत्य अनुभवजन्य ज्ञान वढ जाता है। ससारमें इस तरहके अनेक व्यक्ति देखे जाते हैं, किन्तु कुवृत्तियोंका नाश, सद्वृत्तियोंका

विकास, विषयासक्तिसे उपरामता और ज्ञानकी वृद्धि—यह सब एक ही जन्ममें मातृ-पितृ-प्रदत्त संस्कारके अनुसार नहीं हो जाता। यदि माता-पिताके गुण अथवा उपदेश ही पूर्णत· संततिमे आते अथवा प्रकृतिके स्वभावसे सहज ही हृदयका विकास हो जाता तो कालिदास, शेक्सपियर, बालगगाधर तिलक, छत्रपति शिवाजी, नेपोलियन बोनापार्ट, अकबर, औरंगजेब, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि व्यक्तियोके समान ही उनकी संततिमे भी गुण देखे जाते अथवा अन्य समयोंमे भी ऐसे व्यक्ति संसारमे देखे जाते, किंतु ऐसा नहीं होता। क्या कारण है कि आजतक कालिदासके समान दूसरा कोई कवि नहीं हुआ; तिलक और गान्धीजीके सब पुत्रोंमे उनके समान ही गुण सर्वाशमे क्यो नहीं आये ? छत्रपति शिवाजीके समान बल-पौरुष और चतुराई उनके पुत्रोमे क्यो नही आयी ? इसका कारण केवल यही कहा जायगा कि यह अन्तर उनके पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण ही देखा जाता है। इन पूर्वजन्मके दुष्ट सस्कारोंका क्रमशः नाश और शुभ संस्कारोकी वृद्धि ईश्वरकी कृपा और भक्तिके बिना नहीं होती। जिनको हम महान् दुराचारी समझते है, वे भी किसी-न-किसी समय साधुवृत्तिवाले हो जाते हैं। वे इस जन्ममें अथवा भावी जन्ममें विपयोसे उपराम होकर ईश्वरके मार्गमें लग जायँगे और उन्हे भगवान् आगे बढ़नेका सामर्थ्य देगे—इसमें सन्देह नहीं। इन सब बातोसे भगवान्‌की लीला सहज ही समझमे आ जाती है।

१३—पृथ्वीपर मनुष्योके कल्याणके निमित्त सुवर्णादि धातु और नाना प्रकारकी वनौषधि आवश्यकतानुसार उत्पन्न की गयी हैं। इस सृष्टिमे अनेक प्रकारकी धातुओ और रत्नोकी खाने हैं। इन सबकी उत्पत्ति उपयोगके अनुसार न्यूनाधिक परिमाणमे होती है। जैसे लोहेका उपयोग अत्यधिक परिमाणमे होता है, इसलिये उसकी उत्पत्ति भी

अन्य सब धातुओंकी अपेक्षा अत्यधिक परिमाणमे होती है। यदि इतने अधिक परिमाणमे लोहेकी पैदाइश न होती, केवल सुवर्णके बराबर ही होती तो निर्धन मनुष्योको जीवन-निर्वाह करनेमे बहुत कष्ट होता और यदि लोहेकी उत्पत्ति बिलकुल न होती और सुवर्ण अधिक परिमाणमें निकलता तो भी सुवर्ण मृदु धातु होनेके कारण लोहेके अभावमें उसका उपयोग करनेमे असुविधा ही होती।

दूसरी दृष्टिसे, धनिकवर्गके निमित्त आरोग्य-शास्त्रके अनुसार सुवर्ण राजयक्ष्मा, ज्ञानतन्तुओंकी विकृति, उष्णता और सन्निपातादि अनेक रोगोका नाशक प्रथम श्रेणीका औषध माना गया है तथा मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे भी सुवर्ण दूषित विचारोंके असरसे रक्षा करता है। यदि शरीरपर विद्युत्पात होता हो तो वह शीघ्र सुवर्णमे आकर्षित हो जायगा और इस तरह शरीरकी रक्षा हो जायेगी। इस तरह गुणाधिक्यके कारण परमात्माने सुवर्णको न्यून परिमाणमे उत्पन्न किया है। ऐसे ही हीरा तथा मणि-माणिक्यादि रत्नोंमें रासायनिक गुण सुवर्णादि सब धातुओकी अपेक्षा विशेषपरिमाणमें है तथा मानसशास्त्रकी दृष्टिसे उन्हे धारण करनेमात्रसे ही शरीरके अनेक रोगोसे एवं प्रतिकूल ग्रहोकी विद्युत्के सम्बन्धसे प्राणतत्त्वमे आनेवाली विकृतिसे रक्षा हो जाती है। इस तरह सुख-भोगके पदार्थ केवल धनिकवर्गके लिये होनेके कारण कम परिमाणमें उत्पन्न किये गये हैं और सर्वसाधारण जनताकी जीवनरक्षाके लिये उपयोगी पदार्थ पृथ्वीके सब देशोमे अधिक परिमाणमें स्रष्टाने पैदा किये हैं। प्याज, लहसुन आदि आरोग्यशास्त्रकी दृष्टिसे अधिक शारीरिक श्रम करनेवालोंके लिये बडे महत्त्वकी ओषधियाँ हैं, इस हेतु ये बहुत अधिक उत्पन्न की गयी हैं, परंतु साथ-ही-साथ इनमें कामोत्तेजक और निद्रावर्द्धक गुण तथा उग्र दुर्गन्धकी योजना भी कर दी है, जिससे

सत्त्वगुणी वृत्तिवाले इनका उपयोग कम करें और साधारण वर्गको इनकी प्राप्तिमें अधिक सहूलियत रहे। इस रीतिसे सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर यह सहज ही बोध हो जाता है कि सृष्टिकी रचना ज्ञानपूर्वक की गयी है।

१४—नास्तिक लोग ईश्वरके विरुद्ध एक दलील यह देते हैं कि 'पृथ्वीकी बनावटपर जब हम दृष्टि डालते है, तब हमे बडी गडबडी दिखायी पडती है। कही तो हिमालय-जैसा ऊँचा और बर्फसे ढका हुआ पहाड है, कहीं जैसलमेरका-सा जलशून्य रेगिस्तान। कहीं वडी-वडी झीले भरी पडी हे और कही लोग पानीके अभावमे प्यासे मरते हें।' किंतु इन बातोंमे जो उन्हे दोष दिखायी पडता है, वह केवल इसलिये कि वे विपरीत दृष्टिसे ही देखते है। एक दृष्टिसे जो गुण मालूम होता हे, वही अन्य दृष्टिसे दोष भी प्रतीत होने लगता है। जेसे शवको शीघ्र जला देना धर्मशास्त्र, रुढि और आरोग्यशास्त्रकी दृष्टिसे अति हितकर माना जाता है, परतु आयुर्वेद पढनेवाले विद्यार्थियोके लिये शवको चीरकर प्रत्येक अवयवका ज्ञान सम्पादन करना हितकर है। इसलिये उनकी दृष्टिमे बिना चीर-फाड किये शवको शीघ्र जला देना दोषरूप प्रतीत होता है। खादी पहनना भारतकी दीन-दशा जाननेवाले देश-भक्तो और परोपकारी धर्मात्माओकी दृष्टिमे महान् पुण्य कर्म है, परतु इस रहस्यको न जाननेवाले, केवल विपरीत अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको यह हानिकर प्रतीत होता है। ऐसे ही ये लोग विपरीत दृष्टिसे निरीक्षण करते हैं ईश्वरीय नियमके अनुसार विचार नहीं करते। बिहारके भूकम्पके पश्चात् जगत्के बुद्धिमान् मनुष्योकी समझमें यह बात आ गयी है कि इस पृथ्वीका अनेक ग्रहोसे सम्बन्ध है, पृथ्वी और अन्य सब ग्रह विद्युत्के गोले हैं। वायरलेस, टेलीग्राम आदि

विद्याने विद्युत्की सर्वव्यापकता सिद्ध कर दी है। इस विद्युत्का प्रभाव विशेषत पर्वतोके बर्फसे ढँके हुए शिखरोपर ही पड़े, नीचेके भागमे विद्युत्का आघात कम लगे, इसके लिये पर्वतोके ऊँचे-ऊँचे शिखर उपयोगी हैं। अनेक रोगग्रस्त व्यक्तियोके लिये रेगिस्तानका शुष्क वातावरण लाभदायक है। ससारमे नाना प्रकारकी मनोवृत्तियाँ होनेसे बहुतोके लिये जगलका वास, बहुतोके लिये पर्वतपर निवास करना हितकर है। मनका सयम करते हुए पारमार्थिक सत्यका अभ्यास करनेवालोंके लिये तथा आयुर्वेदका अध्ययन करनेवालोंके लिये पर्वतपर वास करना विशेष लाभदायक है। ऐसे-ऐसे अनेक लाभ विचार करनेपर मालूम हो सकते है और ऐसा भी हो सकता है कि वर्तमान समयमे अनेक लाभ हमारी समझमे न भी दीखे और कालान्तरमे ससारको ज्ञात हो अथवा सम्भव है मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित होनेके कारण कभी भी समझमे न आवें। जब अनुकूल दृष्टिसे विचार किया जायगा, तब सब कार्योंमे ज्ञानमयी कृति प्रतीत होगी, प्रकृतिका मनगढत परिणाम नहीं दिखायी देगा। इस पृथ्वीपर समुद्र, पर्वत, रेगिस्तान आदि सब कुछ हेतु सामने रखकर बनाये गये हे, कुछ भी निरुपयोगी नहीं है। अतिवृष्टि अथवा दुष्कालसे जो ऐसे लोगोंको हानि प्रतीत होती है, वह भी एक भूल ही हे। मनुष्य आलसी ओर परावलम्बी न बने, सृष्टिनियमको विशेषरूपसे जाननेके लिये तथा अपनी जीवनरक्षाके लिये प्रयत्न करे, इस दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा जो ईश्वरकृत प्रतिकूलताएँ हैं, वे सभी अति हितकर हें। अतिवृष्टि और अनावृष्टिसे रक्षा पानेके निमित्त ससारमें ज्यौतिप ओर वायुशास्त्रका आविष्कार किया गया है। ऐसे ही अन्य अनेक प्रकारकी प्रतिकूल परिस्थितियोंके द्वारा अनेक सत्य-रहस्यका

बोध जगत्को हुआ है।

अनावृष्टि और अतिवृष्टिका सम्बन्ध व्यक्तिगत प्रारब्ध, देशकी उन्नति-अवनति और कालमहिमाके साथ है। व्यक्तिगत प्रारब्धके विषयमे फिर कभी विचार किया जा सकता है। देशकी उन्नति-अवनतिके विषयमे पहले विचार किया जा चुका है। देशकी उन्नतिके समय प्राय. अधिक अनुकूलता और अवनतिमे अधिक प्रतिकूलता होती है। कालमहिमाके विषयमे यहाँ संक्षेपमे विचार किया जा रहा है।

कालमहिमाका प्रभाव प्रायः सबसे पहले राजाके हृदयपर पड़ता है, पश्चात् प्रजापर होता है। इसलिये शास्त्रकारोने लिखा है कि—

सर्वे राजाश्रिता धर्मा राजा धर्मस्य धारकः।

'राजाके आश्रित सब धर्म रहते है। राजा ही धर्मको धारण करता है।' इस संसारमे जब अनुकूल काल आता है, तब राजा प्रायः नीतिज्ञ होते है और प्रतिकूल समय आनेपर भयंकर जुल्म करनेवाले पैदा होने लगते है। साथ-ही-साथ पृथ्वी भी मन्दफला हो जाती है। जब राजाकी नीतिपर दुष्ट कालका असर होता है, तब देशपर अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आ जाती है। जिस साल धूमकेतु दिखायी देता है, उस साल राजालोगोमे अधिक मरण, नाना प्रकारके रोग, लड़ाई या अन्य उपद्रव खड़े हो जाते है। १९१८ से पहले बराबरकी जमीनमे अन्नादिकी जैसी उत्पत्ति होती थी, वैसी उसके बाद बहुत वर्ष बीतनेपर अभीतक नहीं हुई है। यह आँखों देखी हुई बात है; भावकी न्यूनता और टैक्सकी अधिकताके कारण, आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो जमीन-आसमानका अन्तर हो गया है। इसी तरह भारतके अनेक प्रान्तोमे फसलकी पैदावार कम हो गयी है। कुछ समय पहले जगत्के सब देशोंके धनिकोपर बहुत-सा धनमद चढ़ गया था। अब उसी स्थितिने

पलटा खाया, प्राय सभी राज्योकी समाप्ति हो गयी और धनिकोंकी सम्पत्ति नष्ट हुई जा रही है। परस्पर लेन-देनमे अविश्वास बढ गया और जगत्मे व्यापार पहलेकी अपेक्षा बहुत ही कम हो गया। इस तरह मनुष्य-समाजकी मनोवृत्तिमे जो परिवर्तन हुआ, यह कालमहिमा ही कही जायगी, यह प्रकृतिका स्वभाव नहीं है।

कुछ शताब्दी पहले भारतमे स्थान-स्थानपर बारम्बार गृहकलहका दृश्य दिखायी पडता था। अब १९ वीं शताब्दीके आरम्भसे यह रोग यूरोपमे भी फैल गया है। जबतक शूद्रवर्गके रक्तशोषक साइसका मटियामेट नहीं हो जाता तथा पाप-वृत्तिसे प्राप्त की हुई लक्ष्मी विष्णु भगवान्के पास समुद्रमें नहीं चली जाती, तबतक यूरोपमें आन्तर-विग्रहका शमन नहीं होगा और न पुन शान्ति ही स्थापित होगी। यह नियम ससार-रक्षक ईश्वररचित है। प्रकृति जड होनेके कारण उसमें नियमकी उत्पत्ति और रक्षणका ज्ञान नहीं है।

जीवात्माओको सत्यकी ओर अग्रसर होनेके लिये सासारिक प्रतिकूलताओंको सहन करके मनोबल प्राप्त करना चाहिये। प्रतिकूलताके सहारेके बिना मनोबल नहीं प्राप्त हो सकता। यदि मनोबलकी प्राप्तिके लिये इतना कष्ट सहना भारी मालूम होगा तो फिर भावी सुखसे हम वञ्चित हो जायँगे। जिस तरह मुसाफिरी करनेके समय यदि कोई आवश्यक सामग्री इस खयालसे साथ न ले कि उनकी देख-रेख कौन करेगा तो उसे रास्तेमें अन्य प्रकारकी प्रतिकूलताएँ सहन करनी पडेंगी, उसी तरह यदि मनोबलकी प्राप्तिके लिये कष्ट नहीं उठाया जायगा तो आगे चलकर अधिक दु ख भोगना पडेगा। इस दृष्टिसे प्रतिकूलता जीवात्माके लिये लाभदायक प्रतीत होती है, प्रतिकूलता केवल दु खका हेतु नहीं है। सब देशोंमें जो प्रतिकूलता और

अनुकूलता मिली हुई दिखायी देती है, उससे भी जीवात्माओंका कल्याण होता है। केवल सांसारिक विचित्रताको देखकर ही उसके मूल कारणका कुछ भी विचार न कर यो ही अंट-संट धारणा बना लेना एक प्रकारकी मूर्खता ही है।

अकालके समय अनेक मनुष्य, पशु-पक्षी मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। जबतक इसका सत्य हेतु नहीं मालूम होगा, तबतक अविवेकी लोग इसके लिये ईश्वरको दोषी ठहरायेगे; किन्तु सत्यका बोध हो जानेपर उनकी धारणा बदल जायगी। यहॉपर एक उदाहरण लेकर विचार करे। दूर देशमे गये हुए एक धनिकको उसके घरसे आये हुए एक नौकरने यह समाचार कहा कि आपके पुत्रको विषम ज्वर आया था, वह बेचारा खानेके लिये बहुत ही रोता-चिल्लाता था; परंतु आपकी धर्मपत्नीने उसे तीन दिनोतक कुछ भी खानेको नहीं दिया, वह केवल जल देती रही। चौथे रोजसे थोड़ा-थोड़ा दूध देना आरम्भ किया है। इस समाचारके साथ ही नौकरने अपनी ओरसे टिप्पणी की कि 'बच्चा' विषम ज्वरसे तो दुःखी था ही, साथ ही अन्न नहीं मिलनेसे वह और भी थक गया है। माता नाराज होकर अपने ही बच्चेके प्रति अपना हृदय इतना कठोर बना ले, यह तो मैंने आपके ही घरमे देखा।' अब हम विचार करे कि नौकरके इस विचारमे दोष है या नहीं ? विषम ज्वरमे यदि माता बालकपर दया और प्रेम करके उसे खानेको दे देती तो विषम ज्वर सन्निपातका रूप धारण कर लेता और इस तरह उसके प्राण भी संकटमे पड जाते। अविवेकी नौकर अथवा अबोध बालक ऊपरी दया अथवा प्रेमका भयंकर परिणाम नही जाननेके कारण इसे माताका दोष मान सकता है; किंतु विवेकी सज्जन जो यह जानते हैं कि विषम ज्वरमे उपवास कराना लाभदायक है, कभी दोषारोपण नहीं करेगे। ऐसे ही

अकाल आदि आपत्तियोसे जीवात्माओकी नाना प्रकारकी दूषित वासनाएँ जल जाती है, मनोबल बढता हे और उनमे भक्ति करके पारमार्थिक मार्गमे अग्रसर होनेकी प्रवृत्ति पैदा होती हे। आस्तिकवादके अनुसार शरीरनाशके साथ जीवात्माका निधन नहीं होता, चेतन तो अनादि हे और अनुभव भी ऐसा ही होता है।

प्रकृति परिणामी है, उसमे सदा रूपान्तर होता रहता हे, परन्तु इस ससारमे कार्यमे भी पुन कारण-भावकी प्राप्ति देखी जाती है। ऐसे परिवर्तनके लिये अपरिणामी नित्य आधारकी आवश्यकता है। आधारके बिना स्वय प्रकृतिका परिणाम या परिवर्तन नहीं हो सकता। जेसे एक बीज पृथ्वीमे बोया गया, तब बीजके भीतर निगूढ अवस्थामें वर्तमान चेतना-शक्तिने पञ्चभूतके कार्यरूप मिट्टीमेसे रूपान्तर कर, पोषक रसको आकर्षित कर वृक्षरूप शरीरकी रचना की। अनन्तर वृक्षके फलोको मनुष्योने खाया, जिससे आन्तर शक्तिने सूक्ष्म भाग लेकर उसका उपयोग शरीर-वृद्धिमे किया और स्थूल भागको मल-मूत्रके रूपमे बाहर निकाल फेका। इस मल-मूत्रादि दूषित पदार्थको वायु, वर्षा और आतपादि व्यापक चैतन्यशक्तिके बलसे पुन पञ्चभूतका रूप दे दिया। यह परिवर्तन रूप क्रिया चैतन्यके आधारपर हुई। अपरिणामी आधारके बिना यह रूपान्तर नहीं हो सकता। पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओने पहले सृष्टिका मूल उपादानकारण सत्तर-बहत्तर एलीमेंट्सको माना था, परतु अब वे भी एक ही तत्त्वको मानते है। उस तत्त्वका नाम उन्होने 'प्रोटाइल' रखा है। हमारे प्राचीन शास्त्रकार ससारका मूल कारण प्रकृतिको मानते है। यह प्रकृति 'प्रोटाइल' का भी कारण है या प्रकृति और प्रोटाइल एक ही चीज हे, केवल नाममात्रका ही भेद है। इसका निश्चय भविष्यकालपर निर्भर करता है। अभी हम

प्रकृति और प्रोटाइलको एक ही चीज मान सकते हैं। पाश्चात्त्य विद्वानोका मत है कि वर्तमान सब ब्रह्माण्डोका किसी-न-किसी समय भविष्यमें नाश होगा और वे प्रोटाइल-अवस्थाको प्राप्त होगे। इस कारण-भावकी प्राप्तिके लिये उन्होने स्थिर आधाररूप चेतनको भी स्वीकार किया है। चेतनके आधारके बिना मूल कारण-भावकी प्राप्ति नहीं हो सकती और पुन प्रकृति-रूप कारणमे क्रिया होकर नियमपूर्वक सृष्टिरचना भी नही हो सकती।

नास्तिक लोग पाश्चात्त्य विद्वानोके लेखोपर मोहित होकर अक्सर भौतिक शास्त्रकी खूब बडाई गाते हैं; किन्तु उन्हे जानना चाहिये कि भौतिक शास्त्रकी शोध अभीतक अपूर्ण ही है और भविष्यमे पूर्णता प्राप्त कर लेगी यह भी कहना असम्भव है, क्योकि मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित है। मर्यादित बुद्धि अमर्यादित अनन्त तत्त्वको कदापि नही जान सकती। हॉ, केवल इतना कह सकते हैं कि जितनी नयी-नयी शोधे हो और उनका सदुपयोग किया जाय तो जगत्को लाभ पहुँच सकता है। भौतिक शास्त्रकी अपूर्णताका एक दृष्टान्त हम यहाँ देते है। सहस्रपुटी अभ्रक-भस्मकी परीक्षा भौतिक रसायनशास्त्र (Chemistry) के अनुसार करनेपर उसमे और गोबर या लकडीकी राखमे कोई अन्तर दिखायी नहीं पडता, परंतु जीवन-रसायनशास्त्रकी दृष्टिसे सहस्रपुटी अभ्रक-भस्म सैकडो रोग दूर करनेवाली एक दिव्य ओषधि है। सिगरफ, द्विगुणगन्धकजारित रससिन्दूर और षोडशगुणगन्धकजारित रससिन्दूर, इन सबको रसायनशास्त्र एक समान ही बतलाता है, परतु इनके गुणमे बहुत बडा अन्तर देखा जाता है। हिङ्गुलमेसे निकले हुए पारदका और बुभुक्षित पारदका पूर्ण चन्द्रोदयरस भौतिक शास्त्रकी दृष्टिसे एक होनेपर भी शरीरपर जो उनके परिणाम होते है, उनमे जमीन-आसमानका अन्तर हो जाता है। ऐसे अपूर्ण

शास्त्रपर विश्वास करके पारमार्थिक सत्य सिद्धान्तकी अवहेलना करना भूलके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ऐसे सज्जनोसे, जो केवल इसी शास्त्रपर विश्वास करते हैं, मेरी प्रार्थना है कि वे एक बार कडुई दवा सेवन करनेकी तरह अध्यात्म-विद्याका भी अभ्यास करे और फिर सत्यासत्यका निर्णय करे।

ईश्वरपर विश्वास न करनेवालोका एक तर्क यह है कि 'मृत्युके सम्बन्धमे जब कोई नियम नही है, तब यह मान लेना कि इसका नियन्त्रण किसी शक्तिके हाथमे है, पागलपनके अतिरिक्त और क्या है ? यदि किसी साधारण शासकको भी मृत्युका नियन्त्रण प्राप्त होता तो वह कोई-न-कोई नियम अवश्य बना लेता। नियमका अभाव तथा प्लेग, हैजा आदिका एक ही स्थानपर टूट पडना यह सिद्ध करता है कि ईश्वर नामकी कोई चीज नहीं है।'

प्लेग, हैजा अथवा अन्य रोगोसे एक साथ ही अनेक लोगोका मरना, भूकम्प, ज्वालामुखी पर्वतके उद्‌गार, अग्निकाण्ड और जलप्रवाहादिसे अनेक जीवोका एक साथ नाश हो जाना, ग्रह टूट जानेसे करोडो प्राणियोका विनाश हो जाना, सूर्यमण्डलका नाश हो जानेसे ग्रहोसहित असख्य प्राणियोका जीवन खो बैठना, कभी बालक, कभी युवा और कभी वृद्धका स्वर्गवास हो जाना—यह सब अनियमित या अनायास हो जाता है, यह कहना प्रलापमात्र है। हम केवल यही कह सकते हैं कि हमे उस नियमका पूर्णरूपसे बोध नही है। समुद्रमे ज्वार-भाटा बराबर नियमपूर्वक होता रहता है। यह क्यों होता है और कैसे होता है, इसका पता न्यूटनने लगाया, किंतु इसके पहले जब जगत्‌को यह सब मालूम नहीं था, उस समय भी ज्वार-भाटा तो नियमपूर्वक ही होता था। इसी तरह मरणके विषयमें आजतक हमें कोई

नियम नही मालूम हुआ, इसलिये हम इसे नियमरहित नहीं कह सकते।

मृत्यु दो प्रकारकी होती है—(१) कालमृत्यु और (२) अकालमृत्यु। पूर्ण आयु भोगनेपर जो मृत्यु होती है, उसे कालमृत्यु और आयु शेष रहनेपर भी एकाएक कोई दुर्घटना या विघ्न उपस्थित हो जानेपर जो मृत्यु होती है, उसे अकालमृत्यु कहते हैं। जिस तरह कोई लालटेन बारह घटेतक जलने लायक तेल भरा रहनेपर भी अचानक तीक्ष्ण वायुका झोंका लग जानेपर पाँच-दस मिनटमे ही बुझ जाती है, उसी तरह किसी विशेष कारणसे अकालमृत्यु होती है। अनेक प्रकारकी अकालमृत्युओसे बचनेके लिये ओषधि, मन्त्र, योगाभ्यास, भक्ति-दान, सदाचारादि अनेक साधन शास्त्रकारोने बताये हैं। प्रलय (ग्रहमण्डलका नाश) या महाप्रलय आदिसे बचनेके साधन नही बताये गये है, परतु इनसे भी जीवोका कल्याण ही होता है। अनेक भूत-जन्मोकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। अन्य दृष्टिसे विचार करे तो अकालमृत्युसे जीवित व्यक्तियोका कल्याण दिखायी देगा। इस तरह सब प्रकारकी मृत्युका कोई-न-कोई हेतु और नियम है, यदि पूर्णरूपसे नियमका बोध न भी हो तो हम इसे केवल प्रकृतिकी स्वच्छन्द वृत्ति नहीं कह सकते। सृष्टिकी समस्त क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक ही चल रही है।

सृष्टिकार्य नास्तिकोकी दृष्टिसे प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम है और आस्तिक इसे ईश्वररचित कहते है। वास्तवमे सृष्टि प्रकृतिकी ही रचना है, परतु चेतनके आधारपर बनी है। जैसे जीवित मनुष्यके मनमें इच्छा होनेपर उसके हाथ-पैरमें नियमित क्रिया होती है, किंतु मृत शरीरमें न इच्छा होती है, न कोई नियमित क्रिया, वैसे ही चैतन्यके सम्बन्धके हेतुसे इच्छा उत्पन्न होकर पीछे सृष्टिकी रचना होती है। सृष्टिमें सब क्रियाएँ नियमित देखी जाती हैं, इसका विस्तृत वर्णन ऊपर हो चुका

है। इसलिये हम इसे प्रकृतिका मनगढत परिणाम नही कह सकते।

नास्तिक लोग इस विषयपर कभी विचार नही करते कि जब ईश्वर कोई नहीं है, तब इस ससारमे अनेक प्रकारके वृक्ष-लतादि, अनेक जातिके प्राणी तथा मनुष्य कैसे उत्पन्न हुए। सम्भवत वे लोग डार्विन और हक्सले आदिके जडाद्वैतके अनुसार विकासवादको मानते है। वे इस बातपर विश्वास करते है कि पहले छोटे-छोटे जन्तु उत्पन्न हुए अनन्तर विकास होते-होते बन्दर और बन्दरसे मनुष्य बन गये। किंतु इसमे शङ्का यह होती है कि इधर इतिहासकालके प्राय तीन-चार हजार वर्षोमे उन बन्दरोमेसे कोई मनुष्य बना है या नहीं अथवा अन्य जन्तुओमेसे कोई बदर बना हे या नहीं, अन्य किसी तरहके पशुओमेसे कोई दूसरी जातिका पशु बन गया है या नहीं ? वैसे ही मनुष्योमेसे विकसित होकर अन्य कोई प्राणी बना है या नहीं ? यदि इतने दिनोके इतिहासकालमे ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो हम यह कैसे मान ले कि प्राचीन भूतकालमे ही ऐसा हुआ था ? यदि किसी समयमे ऐसा एकाध परिवर्तन हुआ भी हो तो इसी कारण हम उसको प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम नहीं कह सकते। यदि प्रकृतिका ऐसा स्वभाव हो तो जाति-परिवर्तन निरन्तर होते ही रहना चाहिये था। अतएव यदि किसी समयमे एकाध परिवर्तन हुआ हो तो उसका कोई दूसरा ही कारण कहना पडेगा।

माता-पितासे भिन्न विचार रखनेवाले बालक अनेक समय उत्पन्न होते है, कभी न्यून बुद्धिवाले, कभी अधिक बुद्धिवाले और कभी विरोधी विचारवाले भी देखनेमे आते हैं। किसी समय किसी एक स्थानमे एकाध व्यक्ति ऐसे अद्भुत बुद्धिवाले उत्पन्न हो जाते है, जिनके मुकाबलेके दूसरे आदमी सैकडो वर्षोतक नहीं देखे जाते। पुन इन

महापुरुषोकी संतति साधारण मनुष्योके ही समान होती है। इसे क्या प्रकृतिका स्वभाव कहेंगे ? प्रकृतिके स्वभावमे किसी एक समय अचानक परिवर्तन हो जाना, फिर नियमानुसार बन जाना, यह कैसे हो सकता है ? सत्य तो यह है कि कर्मफलके अनुसार परमात्माके बनाये हुए नियमसे जीवात्माओको शुभाशुभ योनि, ज्ञान, सुख, दु.ख, अनुकूलता आदि प्राप्त होते है। भगवान् आपत्तिके समय संसारमें असाधारण व्यक्तिको भेजकर संसारकी मर्यादाका रक्षण करते हैं तथा मनुष्य-समाजको उन्नत बनाते हैं।

बहुतेरे लोग यह कह बैठते हैं कि 'जब हम-जैसे नास्तिक लोग भगवान्‌के अस्तित्वपर ही हमला करते हैं तब वह किसी आसमानी विज्ञप्तिके द्वारा हमारे भ्रमोका निराकरण क्यो नही करता ? और यदि हम यह मान भी ले कि ईश्वर एक शासक है, जिसकी निगरानीमे ससारकी सारी व्यवस्था हो रही है तो विचार करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कोई ऐसा अदृश्य शासक है, तो अवश्य ही अव्वल दर्जेका मूर्ख है। हम तो यही कहेगे कि ईश्वरकी कल्पना अज्ञानके कारण हुई है और यह केवल धोखा देनेवाला ढोग है।'

किंतु ऐसे लोगोको यह समझना चाहिये कि इनके हमला करनेसे ही ईश्वरका अस्तित्व नष्ट नही हो जाता और भ्रम दूर करनेके लिये आसमानी विज्ञप्तिकी भी जरूरत नहीं, क्योकि विचार परिवर्तनशील है। पाश्चात्य भौतिक विद्याके ग्रन्थोको देखनेसे जैसे इन लोगोके पहलेके विचारोमे बहुत परिवर्तन हो गया है, उसी तरह पुन. जब सत्य तत्त्वका साक्षात्कार होगा, तब इनके ये नास्तिक विचार भी आप ही बदल जायँगे।

हाँ, जबतक सत्यका ग्रहण नहीं होगा और विपरीत भावना बनी

रहेगी, तबतक ये स्वय वैसे ही अपने-आपको नुकसान पहुँचाते रहेंगे, जैसे सूर्यपर धूल फेकनेवालोकी ऑखोको उन्हींकी फेंकी हुई धूल नुकसान पहुँचाती है।

अब हम इस विषयका विचार करें कि ईश्वर मूर्ख है या पूर्ण-ज्ञानी ? पापियोको तुरत दण्ड नहीं मिलता और न उनके विचारोंमें परिवर्तन ही होता हे, इसी बातको देखकर प्राय ऐसे लोगोंके मनमें भ्रम पैदा होता है। इस ससारको देखनेके लिये दृष्टि तीन प्रकारकी है—(१) आरोपित दृष्टि, (२) कार्यरूपा दृष्टि और (३) कारणरूपा दृष्टि। आरोपित दृष्टि ग्राह्य और त्याज्य अथवा विधि और निपेध-भेदसे दो प्रकारकी है। जैसे एक युवती स्त्री है, उसको पिता, बन्धु, पुत्र और पति क्रमसे पुत्री, भगिनी, माता और पत्नी दृष्टिसे देखते हैं। और विपरीत बुद्धिवाले दुराचारी मनुष्य कुदृष्टिसे देखते हैं। स्त्री तो एक ही है, किंतु देखनेवाले अपने-अपने हृदयके भाव और सम्बन्धके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंका आरोप कर लेते हैं। कुटुम्बियों और सम्बन्धियोंके भाव भी आरोपित हैं, परतु व्यवहारमे वे उपादेय माने गये हें ओर दुष्टका आरोपी भाव व्यवहारमे निषिद्ध होनेके कारण हेय माना गया हे। इसी तरह अन्य दृष्टिविषयक उदाहरणसे समझिये।

किसी एक धनी पुरुषने अपने पिताकी एक सोनेकी मूर्ति बनवायी। वह धनी अपनी आरोपित दृष्टिके कारण उस मूर्तिमें पिता-बुद्धि रखता है, स्वर्णकार उसे सुवर्णरूप (प्रकृतिकी कार्यरूपा) दृष्टिसे देखता है, और पदार्थ-तत्त्वज्ञानी तत्त्वदृष्टिसे उसे प्रकृतिरूप जानता है। आरोपित और कार्यरूपा दृष्टि व्यवहारोपयोगी हे, परतु तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे अनुपयोगी है और कारणरूपा तत्त्वदृष्टि तत्त्व-ज्ञानके लिये उपयोगी हे। सृष्टिके मूल तत्त्वका विचार करनेके समय व्यावहारिक

संकुचित दृष्टिका त्याग करके तत्त्वज्ञानोपयोगी कारणरूपा दृष्टि ग्रहण करनी चाहिये तथा भूत, वर्तमान और भविष्यकालके परस्पर सम्बन्ध, सृष्टिहेतु और नियमपर भी लक्ष्य रखना चाहिये। अब इस विषयपर उदाहरणो-द्वारा युक्तिसे विचार कीजिये। मान लीजिये कि किसी धनी मनुष्यके हाथमे फोड़ा हुआ है, जिससे उसे बड़ा कष्ट हो रहा है। वह फोड़ा चिरवानेके लिये एक अनुभवी सर्जनके पास जाता है। डॉक्टरको भी उसकी व्यथा देखकर दुःख होता है; किंतु उस समय वह ऑपरेशन नहीं करता और कहता है अभी फोड़ेके पकनेमे तीन दिन और लगेगे। जबतक फोड़ा पक नहीं जाता, तबतक ऑपरेशन नहीं हो सकता। अभी काट देनेसे जहर नाड़ियोमें रह जायगा और पीछे उससे बड़ी भारी हानि होगी। रोगी चिल्लाकर कहता है कि 'साहब ! रोग बढ़ रहा है; अभी ऑपरेशन नहीं होगा तो मेरा शरीर आधा हो जायगा ! और व्यापारकी ओर ध्यान न दे सकनेके कारण तबतक आर्थिक हानि भी बहुत हो जायगी।' परतु डॉक्टर अपनी रायपर कायम रहता है। अब हम विचार करें कि डॉक्टरकी दृष्टिसे कार्य करनेमे रोगीका विशेष हित है या रोगीकी दृष्टिसे कार्य करनेमे ? दोनोंमेसे किसकी दृष्टिको हम यथार्थ कहेगे ? बुद्धिमान् मनुष्य तुरंत उत्तर देगे कि डॉक्टरकी ही सलाह उचित है और रोगीका कथन अविवेकपूर्ण है। इसी तरह अपक्व दुष्टवृत्तिको दबाकर मनका विकास होनेमें प्रतिबन्ध खड़ा करना ठीक नहीं है।

फोड़े अनेक प्रकारके होते हैं। कुछ फोड़े-व्रण (Ulcers) साधारण पीड़ा देनेवाले होते हैं और शरीरमे थोड़े परिमाणमे विकृति उत्पन्न कर देते हैं। अर्बुदों (Tumours) मे रक्तार्बुद (sarcoma) और मांसार्बुद (Cancers) दीर्घकालपर्यन्त भयंकर दुःख देते हैं और

सारे शरीरमे अत्यधिक नुकसान पहुँचाते हैं। एक प्रकारका फोड़ा—चिप्प (whitlow) अँगुलीके नखके नीचे मांसमें कीलकी तरह उत्पन्न होता है। यह रोग साधारण माना जाता है और अधिक भागमे विकार भी नहीं पैदा करता; किंतु पकनेके समय यह असाधारण व्यथा पहुँचाता है। फोड़े शरीरके एक देशमे होनेपर भी अनेक भागोमे अथवा सारे शरीरमे विकार और वेदना उत्पन्न करते हैं। किन्तु सृष्टिके नियमानुसार ठीक फोडा निकलनेके समय ही शरीरके अन्य भागोंकी रक्षाके लिये स्वास्थ्यके लिये हितकारी रोग-निरोधक शक्ति (immunity) रक्तमे उत्पन्न हो जाती है। बाहरसे इस क्रियाका पता नहीं चलता, फिर भी आयुर्वेद या शरीरशास्त्र (Anatomy) जाननेवाले लोग इस रोग-निरोधक शक्तिकी क्रियाके परिणामको अच्छी तरह जानते है। साथ ही रोगी भी शरीरके अन्य भागोमे होनेवाली विक्रियाको दूर करनेवाली ओषधि सेवन करता और ऊपरसे फोड़ेपर भी दवा लगाता है। डॉक्टरके कथनमे विश्वास रखकर वह इस दृष्टिसे उपचार कराता रहता है कि थोड़े अधिक समयतक इसी सिलसिलेमे दर्द सहन करना पडे तो कोई हर्ज नहीं, परंतु भविष्यमे फिर कोई गड़बडी पैदा न हो। इसलिये वह रोगकी गति और अपनी शारीरिक शक्तिके अनुसार आवश्यक समयतक धीरे-धीरे दवा कराता रहता है। इसी तरह चोर, डाकू आदि अपने अधर्माचरणके कारण स्वयं शारीरिक और मानसिक दु:ख भोगते हैं और अपनी शक्तिके अनुसार संसारको भी त्रास पहुँचाते रहते हैं। जिस तरह फोड़ेके समय शरीरके अंदर रक्षिका-शक्ति उत्पन्न होती है, उसी तरह संसारकी जनता अनेक उपायोका आश्रय लेकर ऐसे लोगोंसे अपनी तथा समाजकी रक्षाका यथाशक्ति प्रयत्न करती है और साथ ही औषध-

सेवनके समान परमात्मा ससारके लोगोको रक्षाके निमित्त मनोबल और बुद्धिबल प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त परमात्मा रोगके बाह्योपचारके अनुसार यथासमय सृष्टिसरक्षणके लिये आवश्यक कर्तव्य भी करते है।

जिस तरह इस शरीरको हम अपना शरीर मानते है, उसी तरह यह ससार—ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर है। ईश्वर इस ब्रह्माण्डरूप शरीरका शरीरी है और इस तरह हम ब्रह्माण्ड या सृष्टिको ईश्वरका ही स्वरूप कहेगे। इस ब्रह्माण्डको हम समष्टि-शरीर भी कह सकते है, क्योकि यह अनेक व्यष्टि-जीवसमुदायका सग्रह है। इस तरह व्यष्टि-समष्टिका—भगवान्‌के शरीरका एक अश है। इसलिये जिस तरह हम रोग दूर करनेके लिये प्रयत्न करते हैं, उसी तरह ईश्वर भी बराबर प्रयत्न करते रहते है और शनै -शनै यथोचित उपचार करते हैं। आरम्भमे शरीरके परमाणु किसी निमित्तसे शल्यरूप बनकर अन्तमे फोडा हो जाता है, फिर अपनी स्वच्छन्द वृत्तिके अनुसार अपने स्थानमे दोष-सचय करता है और अन्तमे शरीरके अन्य भागोमे भी विकार उत्पन्न कर देना शुरू कर देता हे। इन सब बातोको जानते हुए भी रोगी फोडेकी निष्ठुर वृत्तिको सहन करता रहता है और उस स्थानकी शुद्धि और शरीररक्षाके निमित्त आन्तर-बाह्योपचार करता हुआ उस फोडेको परिपक्व स्थितिमे लाता है। उसके बाद सर्जनके द्वारा उसे कटवा डालता है। इस क्रमसे उसे फोडेके स्थानमें अधिक कष्ट पहुँचता है, परतु भावी कल्याणके निमित्त यह आवश्यक कर्म करना ही पडता है। इस तरह थोडा नुकसान होता हुआ दिखायी देनेपर भी उसे वास्तविक लाभ ही माना जाता है। इसी तरह एक क्षुद्र परमाणुके समान पामर प्राणी किसी निमित्तको लेकर स्वच्छन्द बन जाते हैं और ससारके सरक्षणके नियममे विघ्न उपस्थित करते हे किंतु भगवान् भी बराबर उनकी गतिविधिपर दृष्टि रखता हुआ शनै -शने उनकी दवा

करता है। अनीतिमान् पुरुषोको नीतिमान् बनाने और ससारकी मर्यादा कायम रखनेके लिये अनीतिमानोको शनै -शनै कष्ट पहुँचाता है। जैसे ऑपरेशनसे रोगीका वास्तविक लाभ होता है, इसी प्रकार अनीतिमान्का कल्याण भी ईश्वरीय नियमानुसार कष्ट उठानेमें है। इस क्रियामें ईश्वरकी क्रूरता देखना बुद्धिका ही दोष है। भगवत्-क्रियाको समझे बिना भगवान्को अन्यायी आदि कहना अज्ञानता ही है।

एक दूसरे उदाहरणके द्वारा पुन विचार करें। एक कुटुम्बमें चार भाई हैं और उनके सब मिलाकर छोटे-छोटे दस-बारह बालक हैं। उनमें एक दो वर्षका बालक अत्यन्त मधुरभाषी, प्रसन्नमुख और सुन्दर है, जिसपर सब लोगोका असाधारण प्रेम है। दिनभर सब लडके इस बालकके साथ प्रेमपूर्वक खेला करते हैं, परतु यह बालक कभी-कभी नाराज होकर किसी बडे लडकेको मार देता है। जब वह लडका रोने लगता है, तब माता आकर बडे लडकेको समझाकर शान्त कर देती है और उसे छोटेको न मारनेका उपदेश दे देती है। परतु उसका उपदेश व्यर्थ ही होता-सा दिखायी देता है, क्योंकि वह बार-बार किसी-न-किसीको ठोक देता है। माताको अन्य लडकोंका कष्ट देखकर दु ख होता है, किंतु वह छोटे बच्चेपर एकाएक कडा शासन करना भी नहीं चाहती, क्योंकि वह जानती है कि अबोध बालककी कोमल मनोवृत्तियोंको बलात् दबा देना हानिकर है। मनोवृत्तिका पूर्ण विकास निर्भयताकी स्थितिमें ही होता है। यदि बाल्यावस्थामें ही भय दिखलाकर मनको निर्बल बना दिया जाय तो वह फिर जन्मभर निर्बल ही रह जाता है। ससारके महापुरुषोंका जीवनचरित्र देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि उनके माता-पिताओंने शैशवावस्थामें उन्हें बिल्कुल निर्भय और स्वतन्त्र रखा था, इसीसे वे इतने महान् हो सके थे। ऐसा

सोचकर वह माता अपने छोटे बच्चेको दबानेकी चेष्टा नहीं करती; किंतु अनेक अज्ञानी मनुष्य उस मातापर इसके लिये दोषारोपण करते हैं तो इससे क्या बुद्धिमान् मनुष्य भी उसे दोषी कहेंगे ? इसी तरह चोर, डाकू आदि मनुष्योंको भी दयालु परमात्मा तुरंत दण्ड नहीं देते।

'यहाँपर सम्भवतः कोई यह शङ्का करे कि चोर, डाकू आदि तो आयुमे बड़े हैं, बालकके साथ उनकी समता कैसी ?' परंतु यह शङ्का, स्थूल दृष्टिसे ठीक होनेपर भी अविचारपूर्ण है। ईश्वर और आत्मा अनादि हैं। जबतक जीवकी बुद्धिका पूर्ण विकास नहीं हो जाता, जबतक वह उस परमवस्तु, परमज्योतिका अनुभव नहीं प्राप्त कर लेता, तबतक उम्र अधिक होनेपर भी उसका मन शैशवावस्थामे ही है। भगवान्‌के लिये वह निरा-नादान बालक ही है। उसके द्वारा होनेवाला अन्याय और अनीति दुष्ट मनोवृत्तियाँ हैं, वृत्तियोका परिपाक होनेपर इनका रूपान्तर हो जायगा और फिर वे ईश्वराभिमुखी हो जायेगी। हाँ, उसकी मनोवृत्तियोका परिपाक चाहे एक जन्ममें ही हो जाय या अनेक जन्मोमे हो। वे परिपक्व होकर रूपान्तरित अवश्य होगी, यह निश्चित है। वर्तमान समयमे जो दुराचारी प्रतीत होते है, उनमेंसे कोई इसी जन्ममे सदाचारी बन जायँगे, कोई आगामी एक या अनेक जन्मोमें बनेंगे। प्राणिमात्रको एक-न-एक दिन मनुष्य-योनिमे आकर, अनेक जन्म लेकर सदाचारी बनकर अन्तमें ईश्वराभिमुख होना होगा। जो जीव पशु-पक्षीकी योनिसे मनुष्य-योनिमें आते हैं, उन्हें आरम्भमें सदाचार और दुराचारके परिणामका उतना ज्ञान नहीं होता। धीरे-धीरे कई जन्मोंमें जब उनके मनका पूरा विकास हो जाता है, अनेक बार दुराचारका दुष्परिणाम भोग चुकते हैं, तब वे दुराचारसे दूर रहनेकी इच्छा करने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे दुर्वृत्तिको छोड़कर अन्तमें महान् ईश्वरभक्त बन जाते हैं।

हम आस्तिकलोग इस सत्यपर पूर्ण विश्वास करते हैं और इस कारण कभी हताश निराश नही होते ओर न ईश्वरको दोष ही देते हैं।

फिर नास्तिकलोग भी इतना तो मान ही लेगे कि जब अनाचारकी वृत्ति वढती जाती ह, तव साथ-ही-साथ अनेक मनुष्योंमे उसके प्रतीकारकी वृत्ति भी उतनी ही बलवान् होती जाती है और अन्तमें अत्याचारीका नाश भी हो जाता है। इसका प्रमाण इतिहासमें हमें हर युगमे देखनेको मिलता है।

यहॉपर कोई यह शङ्का कर सकता है कि 'दुष्ट मनोवृत्तिका रूपान्तर शुभवृत्तिमें कैसे हो सकता है ?' इसका समाधान हम एक उदाहरण देकर करेंगे। एक धनी आदमीके यहाँ एक सज्जन मेहमान आये। उस धनी व्यक्तिके बागके मालीने उस सज्जनसे कहा कि कुछ दिन बाद मै इस बागके बडे मीठे आम खिलाऊँगा। उन्होने कहा—मुझे तो कल-परसो चला जाना है, यदि खिलाना हो तो अभी खिलाओ। बागवानने कहा—अभी तो आम कच्चे होनेके कारण खट्टे हैं, पकनेपर स्वादिष्ट होगे। इसपर उन्होने पूछा—वाह ! जो आम आज खट्टे हैं, वे थोडे दिन बाद मीठे कैसे हो जायँगे ? अब आप सोचिये कि मालीका कहना ठीक है या मेहमानका ? आप सब अच्छी तरह जानते हैं कि अनेक फल कच्ची अवस्थामे खट्टे, कडुए या कसैले होते है, किंतु पक जानेपर उनमें मधुर रस पैदा हो जाता है। इसी तरह स्वतन्त्र या स्वच्छन्द वृत्ति परिपाक-कालमे कटु और खट्टे फलके मधुर रसके रूपमें रूपान्तर होनेकी तरह ईश्वरगामिनी हो जाती है।

इस ससारमें ईश्वरगामिनी वृत्ति स्वाभाविक है, अनादि है, वह मनुष्य-हृदयका विकार नहीं है। ससारके किसी भी देशको देखिये, प्राचीन-से-प्राचीन भूतकालका निरीक्षण कीजिये, सहज ही यह सत्य

आपकी समझमे आ जायगा। ब्राह्मणोने अपने स्वार्थके लिये भारतमें ईश्वरका अस्तित्व माना है, यह कहना अविचारपूर्ण हे। भारतके सिवा अन्य देशोमे और ऐसे देशोंमे भी जिनका सम्बन्ध भारत या अन्य सभ्य देशोसे नही था, ईश्वर और धर्मका अस्तित्व पाया गया है। वहॉपर हम किसे दोषी ठहरायेगे ? १४९३ ई० मे जब कोलम्बसने अमेरिका-खण्डका पता लगाया, तब वहॉपर भी ईश्वर और धर्म मौजूद थे। अफ्रिकामे जब यूरोपियन पहले-पहल गये, तब वहाँ भी ईश्वर देखनेमे आया। आस्ट्रेलियामे जब अग्रेज पहुँचे, उस समय उसका सम्बन्ध किसी देशसे नही था, किंतु वहाँ भी ईश्वरका साम्राज्य था। वास्तवमे यदि हम विचार करे तो पता चलेगा कि मनुष्योमे ईश्वरकी कल्पना पीछे अज्ञानवश नही घुस पडी है, वर वह मनुष्यमात्रमे जन्मसिद्ध है।

कोई मनुष्य यह कह सकता है कि 'वर्तमान समयमे चोर, डाकू इत्यादि जो हानि ससारको पहुँचा रहे है, वह उनकी वृत्तिके विकाससे होनेवाले भावी लाभकी अपेक्षा बहुत अधिक है। इसलिये उन्हे तुरत दण्ड दे देना चाहिये अथवा उनकी वृत्ति अभी बदल देनी चाहिये।' किंतु यह शङ्का भी दीर्घदृष्टि-सम्पन्न उच्च विचारवालोकी नहीं है। ससार अनादि, अनन्त हे। अनादि माननेका हेतु हम ऊपर समझा चुके है। इसी प्रकार इस ससारका अन्त भी नही है। कालान्तरमे अपनी इस पृथ्वीका नाश हो जायगा, परतु पुन उसी प्रकृतिके परमाणुओमेंसे नयी रचना होकर सृष्टिका आरम्भ हो जायगा। इस तरह बार-बार सृष्टि और लय-रूप रूपान्तर होता रहेगा। ऐसे अनादि-अनन्त ससारको देखनेकी दो प्रकारकी दृष्टि है—(१) व्यावहारिक वर्तमानकालीन व्यक्तिगत दृष्टि और (२) अनन्त युगोवाली समष्टि दृष्टि। पहली दृष्टिसे हमे ऐसा मालूम होता है कि चोरी, डकैती, खून तथा अन्यान्य दुष्कार्योंसे

ससारकी हानि हो रही है। और ऐसे अधर्मोसे अपनी, समाजकी और देशकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी करना चाहिये; परंतु यह व्यक्तिगत दृष्टि व्यवहारमे जीवात्माके लिये उपयोगी है। यदि अनन्तयुगवाली समदृष्टिसे हम तत्त्वत. विचार करे तो हमें मालूम होगा कि ईश्वरको इन दुष्ट मनोवृत्तियोको रोकनेके लिये प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। भले ही व्यावहारिक दृष्टिसे जीव यथासाध्य रोकनेका प्रयत्न करे।

इस संसारके स्थूल और सूक्ष्म दो स्वरूप हैं। ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ अनुभवमें आता है, वह स्थूल स्वरूप है। व्यावहारिक दृष्टि-वाले केवल इस स्थूल स्वरूपको ही सत्य मानते हैं। दूसरा मनोमय स्वरूप है, जो उन्नत मन (ज्ञान-नेत्र) द्वारा जाना जाता है। सूक्ष्म संसारमें अनेक विचारोंके संस्कार अनादि कालसे भरे पड़े हैं। सूक्ष्म संसार देखनेवाली दृष्टि अनन्त युगवाली समष्टिदृष्टिके अनुसार यह संसार केवल मनोवृत्तरूप है। अधिक मनोबल (Will Power) वाले मनुष्य अपने दृढ़ संकल्पानुसार ससारमें अन्य व्यक्तियोंको हानि-लाभ पहुँचा सकते हैं; यहाँतक कि प्राणियोंके अतिरिक्त जड जगत्पर भी ईश्वरीय नियमसे अविरुद्ध, अपने संकल्पका असर पहुँचा सकते हैं। योगविद्या और मेस्मेरिज्मके द्वारा संसारको यह सत्य मालूम हो गया है। अध्यात्मशास्त्र एक कदम आगे बढ़कर कहता है कि विचार अथवा संकल्पसे ही इस सृष्टिको स्थूल रूपकी प्राप्ति हुई है। सृष्टि संकल्परूप ही है और संकल्पके आधारपर ही ब्रह्माण्ड स्थित है। मनोविज्ञानके उपर्युक्त सत्य सिद्धान्तके आधारपर यह निश्चय होता है कि भूतकालके जो विचार परिणामको नहीं प्राप्त हुए हैं, उनका वर्तमान समयके व्यक्तियोंके विचारोंके साथ सम्बन्ध है और जबतक विचार

परिणामको नहीं प्राप्त हो जाते, तबतक उनका नाश नहीं होता। आकाशके वातावरणमें वे विचार संस्काररूपसे अदृश्यरूपमे वर्तमान रहते हैं। जब कोई अधिकारी मनुष्य उन विचारोमेसे किसी विचारके अनुकूल हृदयवाला बन जाता है, तब वह विचार उसके मस्तिष्कमें प्रवेश कर जाता है। यही कारण है कि किसी पवित्र स्थानमे जानेपर प्रायः पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और मन प्रसन्न हो जाता है तथा किसी अपवित्र स्थानमे जानेपर इसके विपरीत अकारण ही मन उदास हो जाता है अथवा कुविचार मनमें उत्पन्न होते हैं। बड़े-बड़े विद्वान् जो नयी शोध करते हैं, वह सृष्टिमें पहले-पहल आविष्कार होता है—ऐसी बात नहीं। वास्तवमे वह सत्य पहले कई बार संसारको मालूम हो चुका था। केवल हम उसे भूल गये थे। मान लीजिये कि अचानक भूकम्पके कारण यूरोप या अमेरिकाखण्ड पृथ्वीपरसे लोप हो जाय अथवा जल-प्रलयमें सारी पृथ्वी ही नष्ट हो जाय तो क्या साथ-साथ पृथ्वीपरकी सब विद्याएँ—सत्य-रहस्य सब नष्ट हो जायँगे ? कदापि नहीं। स्थूलरूपसे उन विद्याओंका प्रचार संसारमें नहीं दिखायी पड़ेगा; किंतु उनके संस्कार वातावरणमें वर्तमान रहेंगे और कालान्तरमे जब-जब उन सत्य सिद्धान्तो-को ग्रहण करने योग्य अधिकारी पुरुष पैदा होंगे, तब-तब उनके द्वारा पुनः उनका ज्ञान संसारको प्राप्त होता जायगा। इस अनन्तकालकी दृष्टिद्वारा सृष्टिका विचार करनेपर सर्वत्र प्राणिमात्रके प्रति परमात्माकी कृपाका अनुभव होगा; कहीं भी अंधाधुंधपना अनियमितता, हानि, नाशादि नहीं प्रतीत होंगे। व्यक्तिगत व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेपर दुष्कर्मोसे जितनी हानि होती हुई मालूम होती है, उससे अनेक गुना अधिक लाभ अनन्तकालकी दृष्टिद्वारा मनका विकास होकर प्राचीन सत्यके संस्कारोंको वातावरणमेंसे ग्रहण करके संसारको देनेमें होगा।

दुष्ट मनोवृत्तिका प्रवाह कालान्तरमे बदल जाता है और मन बलवान् होकर प्राचीन विद्याओका साक्षात्कार करता है। इसलिये अन्तमें कहना पडेगा कि यदि ईश्वर वर्तमानकालीन तुच्छ दृष्टिका आश्रय लेकर चोर, डाकू आदि अनीतिमान् व्यक्तियोंको दण्ड दे देते तो जगत्मे अधिक मात्रामे अपूर्णता रह जाती। माता आरम्भमे शिशुको गोदमें रखती है, किंतु बडा होनेपर भी यदि वह बच्चेको कभी चलने न दे, गिरनेके भयसे बराबर गोदमे ही रखे तो वह एकदम निर्बल हो जायगा और उसके अङ्गका विकास नहीं होगा। इसी तरह यदि ईश्वर सब समय क्षुद्र दृष्टिके अनुसार रक्षण करते रहे तो विरोधी वृत्तिका सामना करनेका बल ससारसे नष्ट हो जायगा और इस तरह एक प्रकारकी अपूर्णता ही रह जायगी।

कोई मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि 'जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, तब ससारमेंसे वह अज्ञान और दु खको शीघ्र क्यो नहीं दूर कर देते ?' किन्तु ऐसा प्रश्न कोई समझदार व्यक्ति नहीं कर सकता। एक उदाहरण लेकर इसपर भी विचार करें। एक बैरिस्टर साहबसे उनके पॉच-सात वर्षके लडकेने कहा—'पिताजी ! मुझे पढनेके लिये स्कूलमे भेजनेकी क्या जरूरत है ? दस-पद्रह वर्षोतक स्कूल-कालेज आदिमे जाने, धन खर्च करने और पढने-लिखनेमे सिरपच्ची करनेसे क्या लाभ ? आप दो-चार दिन प्रयत्न करके मुझे बैरिस्टरी पढा दीजिये, बस मैं भी कमाने लगूँगा।' इसपर बैरिस्टर साहबने हँसकर उत्तर दिया—'बेटा ! तुम अभी इसे नहीं समझ सकते, क्योकि तुम्हारी बुद्धिका विकास नहीं हुआ है। इसके लिये स्कूलमे जाकर क्रमसे विद्याध्ययन करना ही हितकर है। बुद्धि परिपक्व हुए बिना बैरिस्टरीका अभ्यास नहीं हो सकता। विद्याके जिन सस्कारोका सग्रह पद्रह वर्षमें होनेवाला है, वह दो-चार दिनोमें कदापि नहीं हो सकता। सृष्टिके नियमके विरुद्ध कुछ भी नहीं हो

सकता।' इसी तरह ईश्वर नियम-विरुद्ध अपरिपक्व मनोवृत्तिवाले अनधिकारी जीवोंको असमय पारमार्थिक सत्य नहीं दे सकते। सर्वशक्तिमान्‌का अर्थ नियमविरुद्ध कार्य करनेवाला नहीं है। ऐसी कल्पना कर लेना ही मूर्खता है।

इस रीतिसे अनुकूल युक्ति और तर्कद्वारा विचार करनेपर ईश्वरकी सिद्धि होती है। ईश्वर ढोंग नहीं है; वरं ऐसा विपरीत दर्शन होना बुद्धिका ही दोष है। हम विरुद्ध भावना रखनेवाले लोगोंसे अनुरोध करेंगे कि वे अपनी बुद्धिकी शुद्धि करें, जिससे उन्हें सत्यकी प्राप्ति हो।

=== ★ ===

स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज (२)

ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

(१)

यदि इसी प्रश्नको किसी आस्तिक सज्जनने अपने हितके लिये उठाया होता तो उनके समाधानमे इतना ही कथन पर्याप्त होता कि ईश्वरको माननेवालोंके अन्त करण शुद्ध बन जाते हैं और उनको ऐहिक तथा पारलौकिक सुखोकी प्राप्ति हो जाती है, परतु ये प्रश्न तो कुछ और ही महत्त्व रखते है।

जिस प्रकार, जिस समय कि धर्मक्षेत्रमे कौरव और पाण्डवोकी सेना रणके निमित्त सुसज्जित होकर डट गयी थी। दोनों पक्षोसे युद्धके प्रारम्भिक मङ्गलचिह्न शङ्खनादादि हो चुके थे। शस्त्रपातके लिये केवल सेनापतिकी आज्ञाकी राह देखी जा रही थी। उस समय परमात्माके सकल्पानुसार अर्जुन कर्तव्याकर्तव्यविमूढकी तरह बन गये और उन्होने भावी ससारके कल्याणार्थ भगवान् श्रीकृष्णसे धर्मविषयक प्रश्न किया, उसी प्रकार इस ससाररूपी कर्म-भूमिमे आस्तिकता और नास्तिकताके अदर घनघोर युद्ध छिडा हुआ है। यद्यपि भूतकालमे भी इन दोनोंके अदर समय-समयपर लडाई हो चुकी है तथा इस समय नास्तिकताने विशेषरूपसे अपनी शस्त्रास्त्र-सम्पन्न चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आस्तिकताके धर्मरूपी किलेपर धावा बोल दिया है और बडे वेगसे प्रहार करना भी आरम्भ कर दिया है। ऐसे विषम सकटके अवसरपर धर्मको आपद्ग्रस्त जानकर पुन परमात्माकी प्रेरणा हुई है और

आस्तिकताके सेनापतिने विह्वल होकर भावी संसारकी कल्याण-कामनासे लीलातनुधारी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनाभावमे जनता-जनार्दनसे ही सविनय प्रश्न किया है। ऐसी अवस्थामें जिस तरह अर्जुनके प्रश्नोके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोके सारस्वरूप भगवद्गीताको दिया था, उसी तरह उपर्युक्त प्रश्नोका उत्तर भी बिना शास्त्रप्रमाण, केवल शास्त्रानुकूल तर्कोंसे युक्त होना चाहिये, जिससे आस्तिक जनताका संतोष और नास्तिक जनताकी शङ्काओका समाधान हो जाय। यो तो अनेक संत-महात्मा और शास्त्रज्ञ विद्वानोने इन प्रश्नोका उत्तर दिया है और दे रहे है, तथापि जिस तरह गोवर्द्धन-धारणके समय भगवान् श्रीकृष्णके साथ अज्ञानी गोप-बालकोने भी अपना कर्तव्य समझकर अपनी-अपनी लाठियोका सहारा लगाया था, उसी तरह मै भी अपनी अल्पमतिके अनुसार सेवाभावसे इन प्रश्नोका यत्किञ्चित् उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा।

ससारके स्थूल-सूक्ष्म, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जितने पदार्थ है, वे सब भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनो कालोमे मूलतत्त्वके ही रूपान्तर थे, होगे और है। आन्तर अथवा बाह्य ऐसा एक भी पदार्थ या क्रिया नही, जो मूलतत्त्वसे पृथक् हो। यह मूलतत्त्व ही निश्चित नियमानुसार संसारका शासन करता है। अतएव आस्तिकोने इसी मूलतत्त्वको ईश्वर माना है।

किसी अज्ञातमूल-उपादान कारणसे इस संसारकी उत्पत्ति हुई है, उसीमें यह स्थित है और उसीमे इसका लय भी हो जायगा।* इस

* यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति।। (तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली १)

सर्वं खल्विद ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।' (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१)

'जन्माद्यस्य यत।' (ब्रह्मसूत्र १।१।२)

बातको आस्तिक-नास्तिक—सभी स्वीकार तो करते हैं, परंतु नास्तिक उसे 'नैसर्गिक शक्ति' और आस्तिक 'ईश्वर' मानते है। अत दोनोंकी भावनामें भेद होनेके कारण फलमें भी भेद हो जाता है, क्योंकि ससारमें यह निश्चित नियम है कि मनुष्य अपनी भावनाके अनुसार विचार, विचारके अनुसार निश्चय निश्चयके अनुसार कर्म और कर्मके अनुसार फल प्राप्त करता है। *

अब विचारणीय विषय यह है कि आस्तिक और नास्तिक इन दो पक्षोंमें ईश्वरको माननेवाले आस्तिकोंको क्या-क्या लाभ होते हैं और उनके हेतु क्या है ? परतु इसके पहले मनका कार्य, मनकी शक्ति और मूलतत्त्वमें रहनेवाली सर्वव्यापिनी शक्ति, जो संसारका शासन करती है—इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसपर विचार कर लेना अच्छा होगा।

मनुष्यमात्रके अन्दर मन निवास करता है, जिसको क्रियाभेदसे बुद्धि, चित्तवृत्ति और स्मृति आदि भी कहते है। उसीकी प्रेरणासे मनुष्य अपने जीवनमें जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थाकी सम्पूर्ण क्रियाएँ करते हैं यहाँतक कि मनकी ही प्रेरणासे शिशु हाथ-पैर हिलाते और रोते हैं, परन्तु निरीक्षण करनेपर यह विदित होता है कि मनकी प्रेरणाद्वारा जबतक हमारी इन्द्रियोंको बोध होता है, उसके पहले ही शरीरके अन्त प्रदेशमें विचार, सवेदना और इच्छा—ये तीन मानस व्यापार हो चुके रहते हैं।

जैसे एक मच्छर काट रहा है। उस समय पहले तो मनमें सकल्पका स्फुरण होकर विचारका उदय होता है। पश्चात् दशजनित

---

* 'अथो खल्वाहु काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते॥ (बृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।५)

प्रतिकूल संवेदना मस्तिष्क-प्रदेशमें पहुँचती है। फिर मनमें दुःखको दूर करनेकी इच्छा जाग्रत् होती है और इन तीन मानसिक क्रियाओंके हो जानेके बाद मच्छरको उड़ानेके लिये हस्तेन्द्रियको प्रेरणा होती है। तब वह बाह्य क्रियाओंको करता है। इस रीतिसे मनुष्यके सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्तव्य इन अवस्थात्रयीरूपी मानसवाटिकामेंसे बाहर आनेके बाद ही संस्कारानुरूप स्थूलरूपको धारण करते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि मानव-जीवनकी सब क्रियाओंका मूल कारण मन ही है।*

मनमें जितनी शक्तियाँ—जैसे विचार, संवेदना, कर्तृत्व अर्थात् इच्छा और प्रेरणा आदि हैं, वे सब सृष्टिके मूलतत्त्वसे ही प्राप्त हुई हैं; क्योंकि यह न्यायशास्त्रानुमोदित अविचल और अकाट्य नियम है कि **'कारणगुणाः कार्ये संक्रामन्ति'**—कारणमें रहनेवाले गुणधर्म कार्यमें परिणत होते हैं। अतः इस नियमानुसार यह भी सिद्ध हुआ कि ईश्वरमें रहनेवाले गुण, धर्म या शक्तिका अवतरण 'मन' में भी होता है।

सृष्टिके मूलतत्त्वमें सत् (त्रिकालमें अबाधितरूपसे स्थिर रहनेवाली बलशक्ति), चित् (ज्ञान या संवित्-शक्ति) और आनन्द (ह्लादिनी-शक्ति)—इन तीनोंका निवास स्वभावसिद्ध है और ये तीनों मनुष्यके मनमें उसके शुभाशुभ कर्मानुसार प्रवेश करते हैं। अतः मनकी विचारशक्ति और ईश्वरकी ज्ञानशक्ति—चिदंश ये दोनों प्रकाशक होनेके कारण एक ही हुई। इसी तरह संवेदनाशक्ति और ईश्वरमें रहनेवाले आनन्द-अंशमें एकता है तथा इच्छा और प्रेरणाशक्तिसे बलशक्ति—सदंशका सम्बन्ध जान पड़ता है।

मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाके अनुसार उसके

---

* 'अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिदं स्थितम्॥' (मुक्तिकोपनिषद् २। ३७)

मनमें भावना तथा सस्कारकी उपज होती है। भावना और सस्कारके अनुसार विचार, सवेदना और कर्तृत्व शक्तियोकी स्थिति होती है। इन शक्तियोके अनुरूप शुभाशुभ कर्ममे उसकी प्रवृत्ति होती है। अतएव मनुष्यमात्रको इन शक्तियोका विकास करना चाहिये, जिससे उसका जीवन सुखमय बने और उसके द्वारा ससारको किसी तरहकी हानि न पहुँचे।

इन शक्तियोंका विकास मूल उपादानकारणमे निवास करनेवाली शक्तिसे सम्बन्ध रखनेपर होता है। उनसे इनका जितना ही अधिक सम्बन्ध होगा, उतना ही अधिक लाभ होगा।

मनुष्य यदि अपनी आन्तर शक्तिका आत्यन्तिक विकास करना चाहे तो उसकी सविस्तर विधि धर्मशास्त्रकारोंने बतलायी है। उसके अनुसार आचरण करके प्राचीन तथा अर्वाचीन कालके अनेक ऋषि, मुनि और भक्तोने अपने मनका विकास किया है।

उपर्युक्त तीनो शक्तियोमें विचारशक्ति प्राणिमात्रके जीवनका दीपक है। जिस प्रकार चित्-शक्ति विश्वका प्रकाश करती है, उसी प्रकार इसके द्वारा मनुष्यका कर्तव्य-पथ प्रकाशित होता है। किसी भी प्रश्नके सत्यासत्यका निर्णय विचारशक्तिके ही द्वारा होता है। अतएव इस शक्तिका जितना ही अधिक विकास होगा, सत्यासत्यके ज्ञानकी उतनी ही वृद्धि होगी। चित्-शक्तिके साथ सम्बन्ध रखनेपर इसका विकास होता है।

जिस तरह आस्तिक प्राणी शास्त्रोकी आज्ञाके अनुसार आचरण करके अपनी विचारशक्तिका विकास करते हैं, उसी तरह नास्तिक प्राणी भी करते हैं, परतु नास्तिकताके विषपूर्ण सस्कारके कारण उनकी विचारशक्तिका सामञ्जस्य सवेदनाशक्तिके साथ नहीं हो पाता है।

अतएव वे अपने तथा संसार—दोनोके लिये हानिकर कल्पनाएँ करने लगते हैं; जैसे—मुझको इस पदार्थ अथवा स्त्रीकी प्राप्ति हो गयी, अब मैं अपना मनोरथ पूरा करूँगा। इतना धन मेरे पास है, इस (प्रपञ्चपूर्ण) कर्मके द्वारा इतना धन और भी मिल जायगा। आज मैंने इस शत्रुको मार डाला, धीरे-धीरे औरोको भी मार डालूँगा। मै समर्थ हूँ। मै सम्पूर्ण विषयोंका भोक्ता, सिद्ध, बलवान्, सुखी, धनवान् और कुटुम्बी हूँ। मेरे समान इस संसारमे दूसरा है ही कौन ?* इस रीतिसे उनकी विचार-शक्तिका विकास **'विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।'** के अनुसार संसारके सच्चे उपकारक धर्मशास्त्रोंको कपोलकल्पित बतलानेके लिये ही होता है। उनकी विद्या, बुद्धि, बल, पद, अधिकार, मर्यादा आदि सभी शक्तियाँ नास्तिकताके संस्कारके कारण दूसरोको दुःख पहुँचानेवाली और संसारका सत्यानाश करनेवाली होती हैं। आजके जगत्की वर्तमान स्थिति इस बातका साक्ष्य दे रही है।

इसके विपरीत जब आस्तिकोंकी विचारशक्तिका विकास होता है, तब वे अपनी संवेदना और कर्तृत्व-शक्तिका सामञ्जस्य रखते हुए अन्य मानस-शक्तियोंका भी विकास करने लगते है और एक दिन अपनी सम्पूर्ण शक्तियोका आत्यन्तिक विकास करके वे ससारके सारे प्राणियोमे अपनी आत्माका साक्षात्कार करते है। उस अवस्थामे किसीकी निन्दा

---

* इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हत शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।

(गीता १६।१३—१५)

उन्हे अच्छी नहीं लगती और वे किसीका द्वेष नहीं चाहते हैं। उनको ससारके सब जीवोमे एक आत्मा—परब्रह्मका ही अनुभव होता है। भला ऐसी अवस्थामे उन्हे मोह-शोकादि कैसे सता पावेगे ?*

विचारशक्तिका आत्यन्तिक विकास करके सब आस्तिक पूर्णावस्था-की प्राप्ति कर लेते हैं—ऐसा नहीं कहा जा सकता, परतु इसमे शास्त्रविधिका कोई दोष नही है, प्रत्युत उनके प्रयत्नोकी न्यूनता हे। अनेक आस्तिक जो स्वार्थवश नीति-मार्गका परित्याग करके अधर्म और अनीतिका आश्रय ले लेते है, इसमे भी शास्त्रका कोई अपराध नही हे, क्योकि वे अपने मनकी निर्बलताके कारण ही अपनी प्रगतिमे अन्तराय उत्पन्न कर लेते है, परतु इतना होनेपर भी इन आस्तिकोके मनमे इस बातका भय अवश्य बना रहता है कि उनको उनके किये हुए कर्मोका फल निस्सदेह भोगना पडेगा। वे नास्तिकोके समान बिलकुल निर्भय होकर पापकार्योमे रत नही होते। उनमे पापकर्मोसे पराङ्मुख करानेवाली वृत्ति स्वभावत ही रहती है। अतएव वे पापकर्मोसे कुछ-न-कुछ अशोमे अवश्य बच जाते है। इतना लाभ तो इस तरहके निम्न-से-निम्न कोटिके अर्थात् सामान्य आस्तिकोको हो जाता हे। विवेकी आस्तिकोको तो विचारशक्तिके विकासद्वारा ईश्वरका स्वरूपतक प्राप्त हो जाता है। अस्तु, इस दृष्टिसे भी ईश्वरको मानना मङ्गलदायक ह।

सवेदना शक्तिके द्वारा प्राणियोको अनुकूल और प्रतिकूल-

---

* यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत।
तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत॥
(ईशोपनिषद् ६ ७)

का ज्ञान होता है। इसका सम्बन्ध ईश्वरकी ह्लादिनीशक्तिके साथ जितना अधिक होता है, उतना ही विकास होता है और जितना ही अधिक इसका विकास होता है, उतना ही मनुष्य-जीवन आनन्दमय बनता है। अतएव इस शक्तिका विकास करना आस्तिक और नास्तिक दोनोके लिये हितकर है, परतु नास्तिक इसके यथार्थ लाभसे वञ्चित ही रह जाते हैं।

श्रद्धा, दया, प्रीति, भक्ति, क्षमा, शान्ति आदि दैवी वृत्तियाँ और इनकी विरोधिनी काम-क्रोधादि आसुर वृत्तियाँ—ये दोनो सवेदना-शक्तिके अन्तर्गत होती हैं। इनमेंसे निकृष्ट काम-क्रोधादि आसुरी वृत्तियोंका जब विकास होता है, तब सबमें अकर्मण्यता आ जाती है, परतु जब दैवी सम्पत्तिरूप श्रद्धा-दया आदि वृत्तियोंका विकास होता हे तब कदापि अकर्मण्यता नहीं आती। दिन-प्रतिदिन मानस-सामर्थ्य एव आनन्दकी वृद्धि होती जाती है।

विषय-सेवनसे ससारके समस्त विषयलोलुपोंको कदापि तृप्तिका अनुभव नहीं होता। उन्हे सर्वदा नये-नये पदार्थेकि उपभोगकी वासना बढती ही जाती है। आसुरी वृत्तियोका विकास हो जाता है ओर उनका मन सदैव चिन्तातुर तथा दु खी बना रहता है, किंतु दया आदि दैवी वृत्तियोका विकास चाहे अधिक-से-अधिक अशमें क्यो न हो जाय, वह जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त किसीको दु खदायी नही होता, बल्कि आनन्दप्रद होता है।

दया, भक्ति और प्रीतिका यथावत् विकास तभी होता हे, जब इन तीनो वृत्तियोंमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हो। जैसे जो व्यक्ति ईश्वरकी भक्ति करता है, वह प्राणिमात्रके अन्त करणमे एक ईश्वरका ही निवास मानकर सबसे प्रेमभाव रखता हे और वही ब्यक्ति दूसरोके दु खोसे दयान्वित होकर उनके दु खोको दूर करनेमें तत्पर होता हे। अतएव

ईश्वरभक्तिसे प्रीतिवृत्ति और दयावृत्तिकी पुष्टि होती है। इसी प्रकार प्रीतिवृत्ति उत्पन्न होनेपर मनुष्य भक्ति और दयाकी ओर प्रवृत्त होता है, एव दयाका सचार होनेपर भक्ति और प्रीतिकी वृत्तियाँ पुष्ट होती हैं। इन तीनोमे अविनाभाव-सम्बन्ध है। यदि इनमेसे एकका भी त्याग कर दिया जाय तो शेष दोका भी अभाव हो जायगा। अस्तु, इन तीनो वृत्तियोका समन्वय होनेपर ही सवेदनाशक्तिका यथोचित विकास होता है।

ईश्वरभक्तिका अभाव होनेपर सवेदनाशक्तिका विकास एकदेशी और सीमाबद्ध हो जाता है। नास्तिकोमे जो बन्धु-बान्धवो, स्नेही-सम्बन्धियो अथवा देशके प्रति प्रेम प्रतीत होता है, वह प्रेम नहीं, मोह है या स्वार्थभावनासे उत्पन्न हुआ नकली प्रेम है। दूसरा मेरे प्रति अच्छा बर्ताव करे या न करे, मुझे अपने धर्मका पालन करना है, अत मे अपने बन्धुपर प्रेम करूँगा ही—यह भावना हो, वही सच्चा प्रेम है, किंतु नास्तिकोमे ऐसी भावना कभी नही आ सकती, क्योकि वे ईश्वर ओर परलोकपर अश्रद्धा करके चित्त-शुद्धि करनेवाली नि स्वार्थ भावनाको निरुपयोगी बना देते है। उनके मनमे यही भावना रहती है कि उसने मेरा कार्य किया है, अत मुझको भी उसकी सहायता करनी चाहिये। यदि हमलोग परस्पर एक-दूसरेका कार्य ओर सहायता करते रहेगे तो हमलोगोमे मेल रहेगा, हमारी व्यावहारिक स्थिति सुखमयी रहेगी और ससारमे भी हमारी कीर्ति फेल जायगी' आदि। किंतु ऐसा सम्बन्ध स्वार्थमय होनेसे, थोडा-सा विरोध या प्रतिकूल बर्ताव होनेपर भी शीघ्र टूट जाता है, नकली प्रेमका रूपान्तर द्वेषमें हो जाता है। अतएव इस परिवर्तनशील प्रेमको शास्त्रकारोने मोहकी सज्ञा दी है।

इसी प्रकार नास्तिक, जो स्वदेशके प्रति प्रेमवृत्ति रखते हैं, वह भी किसी परम्पराप्राप्त स्वार्थके कारण ही होती है, क्योंकि उनकी यह

मान्यता है कि स्वदेशके सुखसे हमे सुख मिलेगा। देशके दु खी तथा परतन्त्र होनेपर हमको कदापि सुख नही मिल सकता। इसलिये हमारा कर्तव्य हे कि देशके लिये हम सप्रेम कष्ट सहन करे—आदि। यद्यपि यह स्वदेश प्रेम बिलकुल निरर्थक नही, बल्कि आस्तिक और नास्तिक सबके लिये हितावह है, तथापि दूषितभावनापूर्ण होनेके कारण यह निन्दनीय ही माना गया है, क्योकि इसके कारण नास्तिक विश्व-वात्सल्यके पथपर नहीं पहुँच पाते और इस दुराग्रही प्रेमके फलस्वरूप उन्हे समीचीन सुखसे वञ्चित ही रह जाना पडता है। इसके सिवा इस तरहका एकदेशी प्रेम रखनेवाले अन्य देशोके लिये महाघातक सिद्ध होते है। अत जबतक **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**—सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणी अपने कुटुम्ब हैं, इस विश्ववात्सल्यके भावसे रहित स्वदेश-प्रेम ऐसा ही सीमाबद्ध रहेगा, तबतक विश्वमे शान्तिके साम्राज्यकी कदापि स्थापना नही हो सकेगी। इसी बातको समझकर सर्वज्ञ शास्त्रकारोने समस्त समाजको प्राणिमात्रमे सुदृढ श्रद्धापूर्वक प्रीति एव दया रखने और इससे स्वभावत सबमे निवास करनेवाले ईश्वरकी भक्ति करनेके लिये उपदेश दिया है। अत इससे यह निश्चय हुआ कि ससारकी व्यवस्था सुस्थिर रखनेके लिये भी ईश्वरको मानना चाहिये।

पवित्रभावनापूर्वक ईश्वरकी भक्ति होनेसे सवेदना-शक्तिका आत्यन्तिक विकास होता है और इसका जब निस्सीम विकास हो जाता है, तभी ईश्वरके साथ ऐक्यका अनुभव होता है, बुद्धिकी सकीर्णता और स्वार्थान्धताका विनाश होता है एव प्राणिमात्रमे एक ही आत्माका परिचय प्राप्त होता है। अत इस शक्तिका आत्यन्तिक विकास करना प्राणिमात्रके लिये हितावह है, किंतु यह लाभ ईश्वरको माननेवाले आस्तिक प्राणियोको ही मिलता है। अतएव इस हेतुसे भी ईश्वरको

माननां परमावश्यक ठहरता है।

विचारशक्ति ओर सवेदना-शक्तिके समान इच्छा और प्रेरणा-शक्तिके विकासकी भी आवश्यकता हे। इन दोनोका कर्तृत्वशक्तिमे समावेश किया गया है। कर्तृत्वशक्तिका सम्बन्ध ईश्वरकी बल-शक्तिके साथ है। अत इसको मनोबल भी कहते है, मनोबलके बिना मनुष्यमे इच्छा, प्रेरणा या क्रिया—किसी भी शक्तिका सचार नहीं होता। अतएव उनकी सबको आवश्यकता रहती है, परतु वह ससारके मूल उपादान कारण ईश्वरसे ही मिलता है।

आस्तिक और नास्तिक—सभी प्रतिकूल सवेदनीय विषयके त्याग तथा अनुकूल सवेदनीय विषयकी प्राप्तिकी इच्छा करते ह, क्योंकि सुख सबको प्यारा हे, दु ख कोई नहीं चाहता। परतु बहुतोमे विचार-शक्तिका समुचित विकास न होनेसे सम्यक् आकारवाले सुखके लिये अनुकूल विचारोका उद्भव ही नहीं हो पाता, अत वे अपने हिताहितका यथार्थ निश्चय नहीं कर पाते। उनमे इसी कारणसे कर्तृत्वशक्तिका विकास भी नहीं हो पाता ओर वे अपने भावी जीवनको वेसे ही दु खमय बना डालते हैं, जैसे कृपण मनुष्य अर्थव्यय करनेसे दु ख भोगते हैं।

कितने विलासी, शराबी और व्यभिचारी मनुष्य अपनी इच्छा-वृत्तिको स्वच्छन्द बनाकर अपना अध पतन कर लेते हें और कितने ही अपनी प्रेरणाशक्तिका यथोचित विकास न करके आजीवन दु खी बने रहते हैं। वे नहीं जानते कि प्रेरणाशक्तिका उपयोग अपने शरीर और इन्द्रियोंके अलावा अन्य मनुष्यों और पशु-पक्षी आदिपर भी किया जा सकता है। यों कभी-कभी प्रत्यक्षरूपसे मनुष्य या पशु-पक्षीको प्रेरणा नहीं भी होती, परतु उनकी आन्तरिक शक्तियोंतक प्रेरणाका प्रभाव

अवश्य पड जाता है। यहाँतक कि कभी-कभी सृष्टिके शासनकर्ता परमेश्वरसे भी प्रार्थनाद्वारा प्रेरणा की जाती है।

शरीर-इन्द्रिय-स्नेही-सम्बन्धी एव अश्वादि स्वामिभक्त पशुओंको प्रेरणा करनेका अवसर प्राय सबको मिलता है। इनसे यथावसर प्रेरणाशक्तिके विकासद्वारा ही आज्ञापालन कराया जाता है।

जिन्होंने इस शक्तिका विधिवत् विकास करके उसका अभ्यास कर लिया है, ऐसे 'मेस्मेरिज्म' और 'हिपनाटिज्म' विद्यावाले जिस तरह आये दिन अनेक मनुष्योंको अचेत बनाकर उनकी आन्तरिक शक्तियोंको सूचना देते है, यहाँतक कि वे अपनी इन विद्याओंद्वारा पशु-पक्षी और वृक्षोंकी भी आन्तरिक शक्तिको प्रेरित करते हैं, उसी तरह भक्तजन भी अपने कार्यकी सिद्धिके लिये प्रार्थनाद्वारा परमात्मामे प्रेरणा करते है। प्राचीन और अर्वाचीन कालमे अनेक भक्त और योगियोने 'ईश्वरभक्ति'के बलसे परमात्मामे निवास करनेवाली 'बलशक्ति'से ऐक्य करके अपने कार्योंकी सिद्धि की है, किंबहुना ससारको नेसर्गिक दिव्यबलकी प्राप्तिका परिचय भी कराया है।

मनुष्यकी मानस कर्तृत्वशक्तिका जितना ही अधिक विकास होता है वह उतना ही अधिक अपने व्यावहारिक अथवा पारमार्थिक कार्योंमे सफलता प्राप्त करता है। जैसे प्रतिभाशाली न्यायाधीशको देखकर तो अपराधी कम्पित होकर शीघ्र ही अपने अपराधको स्वीकार कर लेता है, परतु कर्तृत्वशक्तिके विकाससे रहित न्यायाधीशके सामने वही झूठी आरोपित बाते कहकर अपना बचाव कर लेता है अथवा धारा (न्याय) शास्त्रकी पुस्तकोंको पढकर बहुत-से लोग प्लीडर, एडवोकेट, सोलीसीटर या बैरिस्टरकी उपाधियोंसे विभूषित तो हो जाते है, परन्तु इनमेसे बहुतोंको कर्तृत्व-शक्तिका विकास न होनेके कारण

यथेच्छ धन, कीर्ति, सुख और शान्ति नही मिलती। वे अपने सदाचरण और सत्यको भी खो देते है। इससे यह सिद्ध है कि कर्तृत्वशक्तिके विकासके अनुरूप ही कार्य-सिद्धि होती है।

कर्तृत्वशक्तिका विकास आस्तिक और नास्तिक—दोनो ही कर सकते हे, परतु नास्तिकोको परलोकका भय नहीं होता। वे नीति-अनीति और समस्त ससारकी लाभ-हानिके विचारको तिलाञ्जलि देकर अपने क्षुद्र या दीर्घदर्शी स्वार्थमात्रके निमित्त प्रयत्न करते रहते है और आस्तिक ईश्वर और कर्म-फलमे श्रद्धा रखकर बार-बार नीति-अनीति ओर सम्पूर्ण ससारके हिताहितकी बात सोचते रहते है। अत दोनोके भावोमे भेद होनेके कारण परिणाममे महान् भेद हो जाता है। यद्यपि अनेक निम्नकोटिके आस्तिकोने भी स्वार्थवश अधर्माश्रित होकर कर्तृत्वशक्तिका दुरुपयोग किया है और अब भी करते होगे, तथापि उनकी जो कर्म-फलके भोगमे निष्ठा होती है, उससे वे, जैसा कि पहले भी बतलाया गया है, बिलकुल निर्भय होकर पापकर्म नही करते। नास्तिकोकी अपेक्षा उनकी पापप्रवृत्ति न्यून ही होती है। यहाँ भी ईश्वर और धर्मका दोष नहीं कहा जा सकता, उनके मनकी निर्बलता ही कही जायगी।

कर्तृत्वशक्तिका उपयोग क्रूरता, शौर्य, प्रीति, दया आदि अनेक प्रकारकी परस्परविरोधी या समान वृत्तियोद्वारा किया जाता है। पाशवी प्रकृतिवाले क्रूर नराधम, जिनमे अधिकाश क्या सर्वांश नास्तिक ही होते हे, अपनी क्रूरताकी वृत्तिद्वारा दूसरोको दु ख देनेके लिये ही अपनी कर्तृत्वशक्तिका उपयोग करते हे, परतु आस्तिक नहीं। जेसे पितामह भीष्म ओर अर्जुन आदि प्राचीन युगके आस्तिक महारथी और महाराणा प्रतापसिह, गुरु गोविन्दसिह और शिवाजी महाराज आदि अर्वाचीन युगके आस्तिक वीरवरोने अपनी कर्तृत्वशक्तिका उपयोग धर्मकी

रक्षाके निमित्त शौर्य दिखानेमे ही किया था। इसके अलावा प्रह्लाद, अम्बरीषादि नृपतिगण, जो आदर्श भक्त हो चुके है, उन्होने प्रीति-वृत्तिको बढाने अर्थात् सवेदना-शक्तिकी उन्नतिके लिये ही अपनी कर्तृत्व-शक्तिका उपयोग किया था। भगवान् रामचन्द्र, भगवान् श्रीकृष्ण, महर्षि व्यासदेव और श्रीशकराचार्यादिने, जिन्होने अपने जीवनको नि स्वार्थ भावसे सृष्टिके हितचिन्तनमें ही समर्पण किया था, अपनी विचार-शक्ति, सवेदना-शक्ति और कर्तृत्व-शक्तिका सामञ्जस्य रखकर उनका आत्यन्तिक विकास किया था। उनकी कर्तृत्व-शक्तिका साक्षात्कार विश्वप्रेम, परोपकार और शौर्यादि वृत्तियोमे होता है। उनकी सम्पूर्ण मानस वृत्तियोका निस्सीम विकास होनेके कारण ही आज समाजमे उनका पूजन होता है। इसी तरह वर्तमान कालमे भी जो अपनी मानस शक्तियोका पूर्ण विकास करके निष्कामभावसे धर्मरक्षा और विश्वसेवामे अपना जीवन लगा देगे, उनका भी ससारमे अवश्य सम्मान होगा और इस विचारसे ईश्वरको मानना अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्यकी मानस कर्तृत्व-शक्तिका विकास कहाँतक हो सकता है, इसकी कोई मर्यादा नही है, क्योकि ब्रह्ममे अमर्यादित शक्तिका निवास है और उसकी शक्तिसे कर्तृत्व-शक्तिकी जितनी ही एकता होगी, उतने ही अशमे इसकी प्रगति होगी। हम आश्चर्य और कौतूहल पैदा करनेवाले जिन कार्योको बिना विचारे झूठा या गप्प कहकर हँसीमे ही उडा देते हैं, उनको यदि कर्तृत्व-शक्तिके उत्कर्षका विचार करके देखे तो निश्चय ही वे पूर्ण सत्य जान पडेगे। अनेक भक्तो और योगियोके जीवनकी जो आश्चर्यजनक घटनाएँ सुननेमें आती हैं, वे सब उनकी कर्तृत्व-शक्तिके उत्थानके प्रभाव हैं। इसी तरह भगवान् रामचन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णादिमे जिस विविध मानस-शक्तिका दर्शन होता है, वह

मानव मानस-शक्तिके विकासक्रमका परम प्राप्तव्य है।

मनुष्य जन्मत श्रद्धामय है। वह अपने अन्तरमे रहनेवाली विचार, सवेदना और कर्तृत्व—इन तीन मानस-शक्तियोको जैसे-जैसे स्वरूपकी प्राप्ति कराता है, उसके अनुसार वह ईश्वरमे श्रद्धावान् (आस्तिक) या प्रकृतिमे श्रद्धावान् (नास्तिक) बन जाता है।* फिर उसी भावनाके अनुसार शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ करता है और इन तीन मानस-शक्तियोके विकासानुसार ही अपने कार्यमे सफलता, निष्फलता एव सुख-दु ख पाता है। अतएव मनुष्यको ऐसे पथका अनुसरण करना चाहिये, जिसमे उसका और ससारका कल्याण हो। ऐसा पथ केवल ईश्वरकी ही शरणमें हो जाना है। नैसर्गिक-शक्ति माननेसे मानस-वृत्तियोका यथोचित विकास नही होता है और ससारमे स्वार्थ एव वैमनस्यादि आसुरी वृत्तियोका प्राबल्य होनेके कारण सुख नहीं मिलता। उसके कारण समस्त समाज भी सतत चिन्ताग्निसे जलता रहता है। अस्तु।

उपर्युक्त विवेचनोसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यके मनमे निवास करनेवाली शक्ति और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोका शासन करनेवाली सर्वव्यापिका शक्ति—दोनो एक ही है। इनमें तत्त्वत कोई भेद नहीं। अत हम सबको अपनी मानस-शक्तिका निरवधि विकास करनेके लिये जन्मसिद्ध अधिकार है, किंतु जबतक हम सृष्टिके शासक महेश्वरको कर्मफलदाता न मानेगे, उनकी उपासना करके उनको प्रसन्न नहीं करेंगे, तबतक हमारी चित्तशुद्धि असम्भव है। चित्तशुद्धिके अभावमें हमारी विचार-शक्ति, सवेदना-शक्ति और कर्तृत्व-शक्तिका न समन्वय होगा

---

* सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव स ॥

(गीता १७।३)

और न समुचित विकास ही, और इन मानस-शक्तियोंके विकासके बिना हमारा जीवन चिन्तामग्न रहेगा। पापकृत्योंमे हमारी रति होगी। संसारको हम त्रास पहुँचायेगे। हमारा पारलौकिक जीवन भी दुःखमय बन जायगा। निष्कर्ष यह कि हम इहलोक और परलोक दोनोंको नष्ट कर देगे, परतु यदि हम ईश्वरपर श्रद्धा रखेगे, शास्त्रानुकूल विधियोंसे उपासना करके उनको प्रसन्न करेगे तो उससे हमारी चित्तशुद्धि होगी और फिर मानस-शक्तियोके विकासद्वारा हमारा यह जीवन और परलोकका जीवन भी सुखमय बन जायगा। साथ ही हम संसारको भी यथार्थ उन्नतिका पाठ सिखला सकेगे।

असत् (विषय-वासनाके जाल)से मुक्त होकर सत् (आत्म-स्वरूप) और तम (अज्ञानान्धकार)से निकलकर ज्योति (अविचल ज्ञानस्वरूप ईश्वर) की प्राप्ति करने तथा मृत्यु (जन्म-मरणरूप भवचक्र) से छूटकर अमृतत्व (निरतिशय आनन्दरूप परब्रह्म) में मिल जानेके लिये अथवा जीवनके शोक-मोह-सतापादि सम्पूर्ण आधि-व्याधियोंका मूलोच्छेद करके निरतिशय शान्ति और आनन्दको पानेके लिये उपर्युक्त मानस-शक्तियोका विकास ही एकमात्र सच्चा साधन है, इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं, जिन्होंने इन मानस-शक्तियोंका निस्सीम विकास करके अविचल सत्यके प्रकाश और अमृतत्वके प्रकाशका सम्पादन किया है। जबतक हमारी ऑखोंसे सत्यका प्रकाश ओझल रहेगा, तबतक हमारे अन्त.करणमें अनेकविध क्लेशोंकी आग निरन्तर प्रज्वलित रहेगी। अत· इस क्लेशाग्निको बुझानेका एकमात्र उपाय ईश्वर-शरण है। ईश्वर-शरणके बिना न तो क्लेशाग्निका शमन होगा और न शान्ति ही मिल सकेगी। अतएव असत्-अन्धकार और मृत्युसे रक्षा पानेके लिये हमें ईश्वरको अवश्य मानना चाहिये। समस्त मानव-समाजके कल्याणार्थ

ही निम्नलिखित यजुर्मन्त्रमे स्पष्ट कहा गया है—

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय। (बृहदारण्यकोपनिषद् १।३।२८)

(२) ईश्वरको न माननेमे कौन-कौन-सी हानियाँ है ?

इसका भी सीधा-सादा समाधान यह हो सकता था कि ईश्वरको मानकर उसपर श्रद्धा करनेसे जो-जो लाभ मिलते हैं, वे ईश्वरको न माननेवाले नास्तिकोको नहीं मिलते तथा उनको निरन्तर जन्म-मरणरूपी भवचक्रमे आना-जाना पडता है, परतु यह प्रश्न भी पूर्वप्रश्नके अनुसार ही गम्भीर है। अतएव अपनी अल्पशक्तिसे तदनुरूप विचार किया जाता है।

जिस प्रकार भारतवर्षके द्वारा समस्त ससारको सब तरहकी भौतिक विद्याएँ मिली, उसी प्रकार ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान और नास्तिकता भी यहींसे प्राप्त हुई। पहले जगत्के अन्य देशोमें जन्मत श्रद्धाके कारण ईश्वरका अस्तित्व मानकर साधारणरूपसे उपासना होती थी। ईश्वरके अस्तित्व-नास्तित्वके सम्बन्धमे किसी अन्य देशने दार्शनिक अथवा आन्तर-दृष्टिसे विशेष शोध नहीं किया था। परमेश्वरके अनुग्रहसे सबसे पहले इस देशने ही इस पारमार्थिक सत्यके तत्त्वको समझा। यौगिक और दार्शनिक दृष्टियोसे उसका निर्णय किया और फिर अनेक शास्त्रोकी रचना करके उनके विचारोंको अपने जीवनमे ओत-प्रोत कर लिया।

साथ ही ससारके इस अविचल नियमानुसार कि विघ्न अथवा प्रतिबन्धक परिस्थिति उत्पन्न हुए बिना प्रगति पैदा करनेवाले विचारोंका उद्भव नहीं होता—प्रतिकूलता आनेपर ही विशेषरूपसे सावधानी रखी जाती है। ईश्वरके अस्तित्वको सुदृढ़ करनेके लिये इस अपने देशमें बार-बार नास्तिकोंका आविर्भाव-तिरोभाव होता रहा, परतु जैसे चोरी

और डाके आदि निषिद्ध कर्म होते रहनेसे व्यक्ति और समाज सर्वदा सतर्क रहते है और अपने अनुयायियोंको भी सावधानताका पाठ पढ़ाते है, वैसे ही नास्तिकोके बार-बार आघात पहुँचानेपर भी—थोड़े समयके लिये समाजमे विच्छेप उत्पन्न हो जानेपर भी हमारे पूर्व-पुरुषोका ईश्वर-प्रेम अविचल बना रहा और उनकी ईश्वर-सम्बन्धी भावना अधिकाधिक सुदृढ़ होती गयी। धार्मिक साहित्य और इतिहासको पढनेसे यह भलीभाँति विदित हो जाता है। अतः वर्तमानकालमें भी नास्तिकोके आक्रमणसे जो थोड़ा-सा विक्षेप दिखायी देता है, उससे हानिकी सम्भावना नहीं, वरं लाभ-ही-लाभ है।

भारतमे पहले ईश्वर और जीवोके अस्तित्वको न माननेवाला चार्वाकवाद था। उसका वचन मिलता है—**'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?'** उस वादके अनुयायी धर्मशास्त्रोपर श्रद्धा नहीं रखते थे। भोग-विलास ही उनके जीवनका ध्येय था। उसीकी प्राप्तिसे वे अपने जीवनको कृतकृत्य समझते थे।

पश्चिमीय देशोमे भी पहले इसीसे मिलती-जुलती नास्तिकता थी। उनका कथन था कि 'दूसरोंको अनुकूलता दिये बिना सुखकी प्राप्ति अशक्य है। अपने सुखके लिये दूसरोंके सुखकी ओर भी देखना चाहिये। दान, दया, मैत्री, प्रीति, क्षमा, नम्रता, कृतज्ञता और अहिंसा आदि जो सद्वृत्तियाँ हममे प्रतीत होती हैं, उनके मूल कारणका निरीक्षण करनेपर विदित होता है कि वे सब अपने सुखके लिये अथवा संकट-निवारणार्थ हैं; क्योकि जब हम दूसरोकी सहायता करते हैं, प्रेम करते हैं, तब दूसरे भी हमारी सहायता और हमसे प्रेम करते हैं और जब हम दूसरोंको मारते हैं तब दूसरे भी हमको मारते हैं। अतः स्पष्ट शब्दोमे

समस्त ससारके सारे प्रयत्न स्वार्थके लिये ही होते हैं। 'परोपकार' शब्द नितान्त भ्रममूलक है। यहाँतक कि माता भी अपने शिशुको जो स्तन-पान कराती है, वह शिशु-प्रेमके लिये नहीं, अपितु स्तनके भारसे होनेवाली प्रतिकूल सवेदनाके शमनके लिये।'

इस मतका खण्डन करनेवाले आधुनिक नास्तिक कहते हैं कि 'जब व्याघ्री-जैसी क्रूर मादा भी विपत्ति आनेपर अपने बच्चोंकी रक्षाके निमित्त अपने प्राणोंको समर्पण कर देती है, तब क्या मनुष्य उस हिंसक पशुसे भी अधिक स्वार्थवृत्ति रखता है ? स्वार्थके समान परार्थवृत्ति भी प्राणिमात्रमे नैसर्गिक ही है। दोनों जन्मजात हैं।' इस उक्तिसे पहलेकी नास्तिकताका विनाश और आपातरमणीय आधुनिक नास्तिकताका जन्म हुआ है, परतु यह भी तो आखिर नास्तिकता ही है।

इन नास्तिकोंका और भी कहना है कि 'सामाजिक नीति-नियमके अनुसार स्वार्थके समान परार्थपर भी दृष्टि रखना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। अन्यथा नीतिके नियमोंका पालन न करनेसे सामाजिक व्यवस्थाका लोप हो जायगा और ससारमें अधाधुध मच जायगा।' यह कथन अवश्य कुछ समीचीन भासता है, परतु इस भावके अनुसार ईश्वर और परलोकका अभाव होनेसे जब स्वार्थ और परार्थ-वृत्तियोंमें परस्पर विग्रह उत्पन्न होगा, तब क्या परार्थवृत्तिका सत्कार नास्तिक लोग कर सकेंगे ? जैसे सत्यपालन, शरणागतरक्षण, परोपकार और शील-सरक्षणके निमित्त अनेक आस्तिक स्त्री-पुरुषोंने प्रसङ्ग आनेपर अपने प्राणोंका भी बलिदान दे दिया है और अब भी दे रहे हैं। ऐसी कसौटीके समय सामाजिक नीति और परार्थवृत्ति दोनोंको बराबर सम्मान देनेवाले नास्तिक क्या विश्व-कल्याणके लिये अपने प्राणोंका समर्पण कर सकेंगे ? इन प्रश्नोंका सतोपजनक समाधान नहीं होता।

नास्तिक लोग प्रायः कहा करते हैं कि 'स्वार्थ और परार्थमें समयानुरूप तारतम्य है। अतएव हम स्वबुद्धि-बलसे हितकी तुलना करके अपने मार्गको निश्चित कर लेते है,' परंतु इस कथनमात्रसे दुष्कर प्रसङ्गोमे निर्वाह होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। ईश्वर और धर्मरूपी लगाम न होनेसे मनरूपी घोड़ा शरीररूपी रथको स्वार्थकी ओर बलात् खींच ले जायगा और 'सामाजिक व्यवस्थाको सुदृढ़ रखनेके लिये परार्थवृत्तिको भी समुचित सम्मान देना चाहिये।' यह कथन उनकी वाणीमे ही स्थित रह जायगा। यदि कहीं सौभाग्यवश वाणीका असर मनपर हो गया तो मनमें विचारोंका उद्भव होगा, विचारोके अनुसार स्वार्थका सकोच न करनेवाली मनोवृत्ति होगी। तब कही इन तीन सोपानोंसे गुजरकर वे परार्थवृत्तिके चौथे सोपानतक पहुँच सकेगे। अत. इस तरहकी सभी कल्पनाएँ नास्तिकोके लिये व्यर्थ है। अस्तु।

शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक—इनमेसे किसी भी विषयमे उत्कर्षकी वाञ्छा रखनेवाले प्रत्येक मनुष्यको अपनी दृष्टिके सामने सदैव उत्कृष्ट लक्ष्य रखना चाहिये। मनुष्य अपने आदर्शके समान ही बनता है। इसी दृष्टिसे आस्तिक प्राणी दयासिन्धु, भक्तवत्सल, आनन्दघन, नीतिसागर, सत्य-धर्म-परायण आदि अखिल शुभगुण-निधान परमेश्वरको लक्ष्यमे रखकर उन्हींके समान बननेका प्रयत्न करते हैं और ऐसा करनेसे अनायास ही उनमें सत्य, सदाचार, नीति, मनोनिग्रह, इन्द्रियदमन आदि हितावह गुण आ जाते हैं; परंतु नास्तिकोका लक्ष्य कुछ और ही होनेके कारण उनको उपर्युक्त गुणोसे वञ्चित रहना पडता है। उनका लक्ष्य 'ऐश्वर्यकी प्राप्ति' अथवा 'मौज उड़ाना' होता है। अतएव वे वासना-जालमें बेतरह फँस जाते हैं। मनके वशीभूत होकर नीति-अनीतिके विचारोको भी छोड़ देते हैं। यहाँतक

कि अन्तमे मानव-शरीरधारी राक्षस बनकर समस्त ससारको कष्ट पहुँचाते है।

यह दृश्य ससार दु खमय है, क्योकि सुख-प्राप्तिके लिये परिश्रम उठानेपर भी बार-बार असफलता मिलती है। प्रकृतिको जो ससारमे सर्वत्र व्याप्त है, यहाँतक कि प्रत्येक जीव-शरीरके अन्तर्गत ओत-प्रोत है, मनुष्यके सुखोसे प्रतिस्पर्धा रहती है। मानव जीवनभर उसके साथ युद्ध करता है, परतु मनुष्यबलकी अपेक्षा प्रकृतिबल अनन्तगुना अधिक है, इसलिये उसे प्रकृतिसे बार-बार पराजित होना पडता है। यदि कही प्रकृतिके किसी क्षुद्र अशपर विजय हो जाती है तो उसीसे मनुष्यको थोडे-से सुखकी प्राप्ति हो जाती है, परतु मनुष्य जितने सुखकी कामना करता है उसका शताश भी नहीं पाता। इसलिये मनुष्य-जीवनको भी क्लेशमय कहा गया है।*

क्लेशमय जीवनको रूपान्तरित करके सुखमय बनानेकी प्रत्येक मनुष्य इच्छा रखता है, परतु उसका उपाय उसे नही सूझता। इसका उपाय हमारे शास्त्रकारोने मानवसमाजके कल्याणार्थ पूर्ण अनुभवके पश्चात् निष्काम भावनापूर्वक बतलाया है। उस उपायका नाम 'चित्त-शोधन' है।

चित्तमे दैवी और आसुरी—दो तरहकी वृत्तियाँ है।† अभय, दया, दान, अहिसा, क्षमा, सत्य, सरलता, शान्ति, धैर्य, पवित्रता इत्यादि वृत्तियाँ दैवी सम्पत्ति कहलाती है। काम, क्रोध, क्रूरता, दम्भ,

---

* सुखाद् बहुतर दु ख जीवित नास्ति सशय ॥

(म० भा० शा० प० २०५। ६)

† दैवी और आसुरी सम्पत्तिका विशद वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १६ में देखें।

अभिमान, असत्य, अज्ञान, अहंता-ममता, राग-द्वेष आदि वृत्तियाँ आसुरी सम्पत्ति कहलाती हैं। इस तरह चित्तकी गति पुण्य और पाप—दोनो पथोपर होती है।*

आसुरी वृत्तियोका दुरुपयोग करके किसीको कष्ट न पहुँचाना, अपनी हानि न करना और उनपर अङ्कुश लगाकर उनकी गतिको विपरीत दिशामे मोड़ देना अर्थात् बाह्य जगत्से हटाकर अन्तरात्माकी ओर कर देना ही 'चित्तशोधन' है। इससे आसुरी वृत्तियाँ स्वयमेव रूपान्तरित होकर दैवी बन जाती हैं और दैवी वृत्तियोंका योग्य विकास होने लगता है। फिर यह दुःखपूर्ण संसार सुखका केन्द्र बन जाता है, किंतु नास्तिक ईश्वर और आत्माकी नित्यताके विषयमें अश्रद्धालु होनेसे चित्तशोधनकी इस क्रियाको निरर्थक समझकर उससे दूर रहते हैं। परिणामत उनको हानियाँ उठानी पडती है। उनकी वृत्ति स्वच्छन्द हो जाती है, जिससे उनकी विषयभोगमे अति आसक्ति हो जाती है। मनका अधःपतन हो जाता है और लगातार कटु क्लेशोका अनुभव करना पडता है।

मनुष्य अपनी कामनाके अनुसार विचार करता है, विचारके अनुसार निश्चय करता है, निश्चयके अनुसार व्यवहार करता है और व्यवहारके अनुसार फलकी प्राप्ति करता है।† इस तरह विचार, निश्चय, कर्म और कर्मफल—सबका मूल कामना होनेके कारण उसकी शुद्धि करना आस्तिक-नास्तिक—दोनोहीको अत्यावश्यक और हितावह है।

---

* चित्तनदी उभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च। (योगभाष्य)

† अथो खल्वाहु काममय एवाऽयं पुरुष इति। स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म, कुरुते तदभिसम्पद्यते। (बृह० उ० ४।४।५)

क्योंकि ससारके किसी भी विपयकी आलोचना करनेपर उसका स्वरूप मनमें रहनेवाली कामनाके अनुसार ही होता है। भक्ति, प्रीति, मोह, द्वेष या अभिमानद्वारा जिन-जिन विषयोका मनमे गुप्तरूपसे स्मरण किया जाता है, उसीके वशीभूत होकर मन बर्ताव करने लगता है। यही कारण है कि स्वप्नावस्थामे भी प्राय जाग्रदवस्थाके अनुरूप ही चेष्टाएँ होती हैं। मद्य या गाँजा आदिके नशेमें सस्कारानुरूप ही क्रियाएँ होती हैं। त्रिदोष (सन्निपात) के रोगीकी चेष्टाएँ भी स्वाभाविक सस्कारानुरूप होती हे, यहाँतक कि त्रिदोप या बेहोशीके समय अनेक गुप्त कर्तव्योका परिस्फोट हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हे कि शुभाशुभ सस्कारानुरूप क्रियाएँ होती है और तदनुसार मनकी उन्नति या अवनति होती है।

जिस प्रकार सफेद वस्त्रपर रग, मैल अथवा तैल आदिका दाग पड जाता हे, उसी प्रकार मनपर शुभाशुभ कर्तव्योके सस्कार जम जाते है। यद्यपि इन सस्कारोको बाहरसे कोई नहीं देख पाता हे, परतु इनके कारण मानसिक उन्नति या अवनति अवश्य हो जाती हे। मलिन वस्त्र पहननेके अभ्यासियोको मैले वस्त्रकी दुर्गन्धसे घृणा नहीं होती— दुर्गन्धयुक्त गदे स्थानमे भी रहनेसे उनको दु ख नहीं होता, परतु अन्तमें उनकी परीक्षाशक्तिका लोप हो जाता है। इसी तरह मलिन मनवालोको पापकार्यसे, पापी पुरुषोके सहवाससे या पापपूर्ण विचारोसे पहले तो घृणा नही होती है, किंतु जब अन्तमे उनकी विचार-शक्तिका अध पतन हो जाता है, तब पछताना पडता है।

उदाहरणमे एक ब्राह्मणको लीजिये। वह अपने समाज और कुटुम्बसे छिपाकर शराब पीता है। पहले तो उसके उत्साहकी वृद्धि होती हे ओर नास्तिकोंके सम्पर्कसे उसके मनमें पाप-पुण्यका विचार भी

नहीं आता, परंतु जब बार-बारके मद्यपान और दुष्टोंके कुसङ्गके कारण वह युगपत्,मांसाहार, व्यभिचार, चोरी, छल, प्रपञ्चादि निषिद्ध कर्म करने लगता है, तब धन-हानि, लोक-निन्दा, बुद्धिकी मलिनता, विचारोंकी अशुद्धि, मानसिक निर्बलता, पुन.-पुनः शराब पीनेकी वासना एवं शरीरके फुफुस, हृदय, मस्तिष्क और आँतमे रोगोंकी उत्पत्तिका अनुभव होता है। अत. प्रारम्भमे समीचीनता-असमीचीनता-विषयक विचारोंको न लानेसे कितने अशुभ संस्कारोकी उत्पत्ति होती है और मनुष्यजीवन कितना पतित होता है, इसको विचारशील सज्जन अच्छी तरह समझ सकते हैं।

जिस प्रकार इत्र अथवा कस्तूरीका सम्पर्क होनेसे सुगन्धकी उत्पत्ति होती है और उससे मन प्रसन्न होता है, वैसे ही पुण्यकर्मोंसे मनमे शुभ सस्कार उपजते हैं और पुन.-पुन. परोपकारादि कर्म करनेकी प्रेरणा होती है। मन भी आनन्दमग्न रहता है और जैसे साफ-सुथरे व्यक्तिको मैले-कुचैले पुरुषके सहवासमें रहना असह्य होता है, वैसे ही पुण्यात्मा अर्थात् ईश्वरको माननेवाले आस्तिकको पापी विचार या पापात्मासे सम्बन्ध होना दुःखदायी प्रतीत होता है। अत. जो ईश्वरको मानकर, कर्मफलके भयसे नीति-अनीतिका विचारकर, संसारमें अपना व्यवसाय करता रहता है, वह अध पतनसे बच जाता है तथा अपना उत्थान भी कर लेता है।

विषयासक्त प्राणी अपने संस्कारानुरूप भावी फलाफलका विचार किये बिना अनुकूल विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं, जिससे उनकी दुष्ट कामनाएँ, उनकी इच्छा न रहते हुए भी बलवती हो जाती हैं। फिर कामनाओंसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृति-विभ्रम, स्मृति-विभ्रमसे

बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे सर्वस्वका नाश हो जाता है।*

यह सब तो हुआ, अब नास्तिकोंके अध पतनके सम्बन्धमे दूसरी युक्तियोसे विचार कीजिये।

ससारमे प्रतीत होनेवाले सभी पदार्थ अनित्य है और इनसे प्राप्त होनेवाला आनन्द भी अस्थिर, अपूर्ण और अनित्य है। फिर भी सभी प्राणी उन क्षणिक सुखोकी टोहमे भगीरथ-प्रयत्न करते रहते हैं। उनकी सारी इन्द्रियाँ अनुकूल सवेदनावाले विषयोपर स्वभावसे ही मुग्ध रहती हैं। यही मोहजाल है, किंतु विवेकी सज्जन भावी कल्याणका खयाल करके इस मोहजालमे नहीं फँसते। केवल अविवेकी ही स्वेच्छापूर्वक उसमे घुसकर अपना विनाश करते ह।

मान लीजिये कि स्वादिष्ट भोजनकी इच्छावाला एक मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार व्यञ्जन बनाकर भोजन कर रहा ह। मनोहर पकवानोके आहारसे उसकी उदर तृप्ति तो हो चुकी हे, किंतु तृष्णाकी प्रबलताके कारण उसका मन अभी नहीं भरा हे। वह चाहता हे कि थोडी-सी और मिठाई खा ले। उस समय उसके शरीरके आन्तर प्रदेशमे मन और बुद्धिका सग्राम होने लगता है। बुद्धि कहती है कि पेट भर गया, अब यदि अधिक आहार करोगे तो उसका पाचन नहीं हो सकेगा, आलस्यका सचार होगा, पाचन-क्रिया विकृत हो जायगी और अजीर्ण, प्रतिश्याय (जुकाम), ज्वर, अतिसार, उदर

---

* ध्यायतो विषयान् पुस सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सजायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात् स्मृतिविभ्रम।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
(गीता २।६२ ६३)

आदि अनेक दुर्घट रोग उत्पन्न हो जायँगे। मानसिक निर्बलता हो जायगी और उससे बुरे सस्कारोका प्राबल्य हो जायगा, परतु बुद्धिके इस यथार्थ विचारको मूढ मनुष्यका स्वच्छन्द मन कदापि ग्रहण नहीं करता। वह मनमानी ही करता है। इसी तरह वह शब्द, स्पर्श, रूप और गन्ध आदि अन्य विषयोके लिये भी शठता करता हे। फलत सम्पूर्ण विषयोका अनुचिन्तन करते रहनेसे लम्पटता आ जाती ह ओर उससे मनुष्य पतित बन जाता हे। सारा शरीर व्याधि-मन्दिर हो जाता ह।* इसी कारण आस्तिक ईश्वरमे श्रद्धा रखकर इन्द्रिय-दमन करनेका प्रयत्न करते ह।

प्राय प्रत्येक शरीरधारीको किसी-न किसी व्याधिसे परिचय होता ही हे। शरीरमे रोगोत्पत्ति कब हो जाय—इसका कोई निश्चय नही। असयमी मनुष्योको बहुत शीघ्र रोगोका शिकार होना पडता है। वृद्धावस्थामे भी अनेक प्रकारके सकटोके उत्पन्न होनेका भय होता हे। अत व्याधि ओर जरावस्थामें शरीरके अन्य सभी अवयव तो शिथिल हो जाते ह, परतु तृष्णा दिन-प्रति-दिन तरुण ही होती जाती ह। नीतिकारोने कहा हे कि **'जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत। चक्षु श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते॥'** अस्तु, नैसर्गिक नियमानुसार व्याधियोके शिकार नास्तिक आस्तिक—दोनो ही बनत ह, परतु वैद्य या डाक्टरद्वारा बतलाया गया आहार-विहारसम्बन्धी सयम नास्तिकोसे नही हो पाता, क्योकि उनका मन पहलेसे ही स्वच्छन्द

---

* इन्द्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि॥

(गीता २।६७)

रहता हे। वह परवशता कैसे स्वीकार करे ? यदि लाचारीसे उनको इन्द्रिय-दमनके लिये कहा जाता है तो उनका मन विपत्तिके सागरमे डूब जाता हे। उन्हे क्रोध हो जाता है और परिणामत उनको व्याधियोसे मुक्ति नही मिलती।

इन्द्रिय दमन न करनेवालोका मिजाज बडा तेज होता है। उनसे कोई भ्रमवश दो शब्द भी कह देता है अथवा किसी बातका उलाहना दे देता हे तो उनका खून १२० डिगरीतक गरम हो जाता है। मिजाज सातवे आसमानपर चढ जाता है, शरीर प्रकम्पित हो उठता है, रोगटे खडे हो जाते है। यहाँतक कि वे अपनेको सम्हालनेमे भी असमर्थ हो जाते ह। फलत यदि बात कहनेवाले या उलाहना देनेवाले पूज्य या सम्मान्य भी क्यो न हो उनका वे अपमान किये बिना नहीं रहते। यदि समान स्थितिवाले हुए तब तो गाली-गलौज और मार-पीट हो जानेके बाद ही शान्ति मिलती हे। इससे भी आगे बढते हे तो हत्यातककी नौबत आ जाती हे। यद्यपि इस तरहके क्षणिक क्रोधावेशमे आकर अनेक क्षुद्र हृदयवाले आस्तिक भी दूसरोको नुकसान पहुँचाते हे, परतु वे अपने अनौचित्यको अन्त करणसे स्वीकार कर लेते ह। वे समझते हें कि उनके पापका फल उन्हे मिलेगा। इसी कारण बहुधा वे गुप्त पापोसे भी बच जाते हे।

यों तो ससारमें सम्पत्ति और ऐश्वर्यविषयक मोह न्यूनाधिक परिमाणमे आस्तिक नास्तिक सबको होता ह, परतु आस्तिक ईश्वरके भयसे किसी समुचित रीतिसे उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं और नास्तिक अनुकूल मोका पानेकी ही राह देखते रहते हैं। यदि जरा भी मौका मिल जाता है तो वे नीति-अनीतिको ताकपर रखकर बुरे-से-बुरे उद्यमसे

भी बाज नहीं आते। उस समय उनकी सांसारिक व्यवस्थाको ठीक रखनेके लिये सामाजिक नीति-नियमोका पालन करना भूल जाता है और अपनी तृष्णाकी पूर्तिके लिये वे छल-प्रपञ्च, धूर्तता, चालबाजी आदिमे प्रवृत्त हो जाते है।

कहाँतक कहा जाय, नास्तिकोको ईश्वर और मरणके पश्चात् आत्माके अस्तित्वपर विश्वास न होनेके कारण असत्य, विश्वासघात, व्यभिचारादि दुराचारोसे कोई भय नही होता। उनकी संख्या जिस देशमे बढ़ जाती है, वह सारा-का-सारा देश अव्यवस्थित और आतङ्कपूर्ण हो जाता है। उस समय समाजकी तो बात ही क्या, यदि उस देशकी सबसे बडी शक्ति 'गवर्नमेण्ट' भी उन्हे दबाना चाहे तो नही दबा सकती। आजकल जो कई देशोमे विश्वासघात, धूर्तता, द्वेप-बुद्धि, व्यभिचारादि पाप प्रचुर परिमाणमे फैले हुए है, वे नास्तिकताके कारण ही है। इसको वहाँकी आन्तर स्थितिको सत्य-सदाचारादि नैतिक दृष्टियोसे निरीक्षण करनेवाले प्राय. सभी लोग जानते है। अत आध्यात्मिक दृष्टिसे नास्तिकोकी मानस स्थितिका अवलोकन करनेपर उन्हे नर-राक्षस ही कहना पडेगा। भर्तृहरिजीने कहा है—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥

'जो अपने स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर परहित अथवा विश्वहितके लिये प्रयत्न करते हैं, वे सत्पुरुप कहलाते है। जो अपने स्वार्थका विरोध न आनेतक परहित करते हैं, वे सामान्य पुरुष कहलाते है और जो स्वार्थके लिये परहितका विनाश करते है, वे नर-राक्षस कहे जाते हैं,

किंतु इसके सिवा जो व्यर्थ ही दूसरोंके हितोंपर आघात पहुँचाते हैं, वे कौन हैं ? उनको हम नहीं जानते।'

अस्तु, यहाँतक तो बहिरङ्ग-दृष्टिसे विचार हुआ, अब अन्तरङ्ग-दृष्टिसे विचार कीजिये।

प्रीतिकर भोजन करने, पुष्प-गन्ध लेने, खेल-तमाशा देखने, सगीत सुनने आदिसे जो आनन्द मिलता है, वह कुछ मिनटोंतक ही रहता है। शरणागतोंकी रक्षा दीनोंपर दया, पीडितोंकी शुश्रूषा, स्वदेशकी सेवा, भगवान्‌का भजन आदि करनेसे जो आनन्द मिलता है, वह घंटोंतक रहता है और परमार्थमें मन लगानेवाले शास्त्रोंके मनन एव विश्व-वात्सल्यादिसे जो आनन्द मिलता है, वह दिनभर रहता है। शरणागतोंकी रक्षासे लेकर विश्व-वात्सल्यादितकके कार्य सकाम और निष्काम दो भावोंसे किये जाते हैं। सकाम भावसे पैदा होनेवाले सुखको 'मानस-सुख' और निष्काम भावसे पैदा होनेवाले सुखको 'बुद्धिग्राह्य' माना जाता है। बुद्धिग्राह्य सुख ही सच्चा सुख है।* प्रेटो नामक ग्रीक तत्त्वज्ञानीने भी सुखकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'शारीरिक सुखकी अपेक्षा मानसिक सुख अच्छा है और मानसिक सुखकी अपेक्षा बुद्धिग्राह्य सुख श्रेष्ठ है।' भगवान् मनु भी कहते हैं कि ससारके अचेतन प्राणियोंमें चेतन, चेतनमें बुद्धिमान्, बुद्धिमानोंमें मनुष्य, मनुष्योंमें विद्वान्, विद्वानोंमें चरित्रवान्, चरित्रवानोंमें सम्पूर्ण मानस-शक्तियों—विचार सवेदना और कर्तृत्व आदिका विकास करनेवाले

---

* 'सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

(गीता ६।२१)

'तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।

(गीता १८।३७)

श्रेष्ठ तथा सुखी हैं।'*

अत विवेकीजन तुच्छ विषयोके क्षणिक आनन्दका त्याग करके अधिकाधिक श्रेष्ठ कोटिके आनन्दकी जिज्ञासा करते हे, किंतु नास्तिकोकी दृष्टिमे तो ससार कामनापूर्ण रहता है। अतएव उनकी बुद्धिमे निष्काम अथवा नि स्वार्थ भावसे कर्म करनेका विचार आता ही नही और वे सच्चे आनन्दसे बिलकुल वञ्चित ही रह जाते हैं।

नास्तिक लोग सत्यासत्यका निर्णय भी स्वार्थदृष्टिसे ही करते हे, इससे ससारको बहुत वडी हानि पहुँचती है। जेसे अफ्रीकन डाकू जब किसी धनीके घरमे घुसते है, तब पहले उस घरमे रहनेवालोको कत्ल कर देते हे, पीछे घरको लूटते है। यदि उनसे कोई घरवाला कहता हे कि 'इच्छानुसार धन ले लो, किंतु प्राण न लो' तो उत्तर मिलता हे कि 'क्या हम नमकहराम हे जो बिना परिश्रम धन ले ले। पहले हम हलाल करेगे, तब धन लेगे।' मतलब यह हे कि उनको मनुष्य-वधमे ही न्याय और धर्म प्रतीत होता है। इसी प्रकार यूरोपके अनेको देशोके व्यापारियोने अफ्रीकाके न जाने कितने मनुष्योको बन्दूकके बल पकडकर गुलामीके लिये अमेरिकामे बेचा है। इस कार्यमे उन्होने बहुतोकी हत्याएँ भी की हैं, परतु यह अन्याय उनकी बुद्धिमे अन्याय नही प्रतीत होता। गत महायुद्धको ही लीजिये, उससे ससारके समस्त राष्ट्रोको भयकर हानियाँ उठानी पडी। अगणित मनुष्योका सहार हुआ,

---

* भूताना प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना बुद्धिजीविन ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरपु ब्राह्मणा स्मृता ॥
ब्राह्मणपु च विद्वासा विद्वत्सु कृतबुद्धय ।
कृतबुद्धिपु कर्तार कर्तृपु ब्रह्मवदिन ॥
(मनुस्मृति १। ९६ ९७)

परतु इसका कोई परिणाम धर्मकी दृष्टिसे उनके विचारमे नही हुआ। नही तो, वे ही राष्ट्र आज फिर सघर्षके लिये क्यो तैयार होते ? अस्तु यह निश्चय है कि जितने अशोमे ईश्वर और धर्मसे दूर हटकर स्वार्थ और नास्तिकतासे सत्यासत्यका निर्णय किया जायगा, उतनी ही हानियाँ उठानी पडेगी। उतना ही पतित होना पडेगा।

ईश्वर और धर्मको न माननेसे जैसे व्यक्तिगत अध पतन होता है, वैसे ही समाज तथा राष्ट्रकी भी अवनति होती है। एक समाज अथवा राष्ट्र दूसरेको निर्बल समझकर और कोई झूठमूठ बहाना निकालकर हडप लेनेका प्रयत्न करता है। यदि कमजोर हुआ तो अपनी रक्षाके ही लिये भयकर युद्ध-सामग्रियोंको तैयार करता रहता है। फलत उसकी प्रजा करोसे लद जाती है। अत नास्तिकताकी प्रभुतासे क्या निर्बल और क्या सबल—सब राष्ट्रोको सशङ्क होकर कमर कसे ही रहना पडता है। शान्ति कभी नही मिलती।

तात्पर्य यह कि ईश्वरमे अश्रद्धा रखनेवाले नास्तिक अपने मन और इन्द्रियोको स्वच्छन्दी बनाकर निरन्तर चिन्तातुर रहते है। इस लोकका सच्चा सुख और पारलौकिक कल्याण दोनो ही उन्हे अप्राप्त हो जाते है, उनके द्वारा सारा समाज विपत्तिमे पडकर पीडित बन जाता है और अपने कर्तव्यका कटु फल तो उन्हे निस्सदेह भोगना ही पडता है। ऐसे ही कटु फल भोगनेवाले नास्तिकोपर दया करके महाभारतके अन्तमे महर्षि व्यासदेवने उनसे जोरदार शब्दोमे कहा है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म. किं न सेव्यते ॥

'ओ मानव। मै अपनी दोनो भुजाओको उठाकर पुकार रहा हूँ फिर भी कोई मेरी बात नही सुनता। अरे। धर्मसे ही सच्ची शान्ति

देनेवाले अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी प्राप्ति होती है। अतः तुम ऐसे मङ्गलमय धर्मका सेवन क्यों नहीं करते ?'

नास्तिकोंकी एक दलील यह भी है कि 'क्या ईश्वरको न माननेसे जीवन नहीं रह सकता ?' इसका उत्तर यह है कि 'हाँ, रह सकता है; परंतु मानव-जीवन नहीं, पशु-जीवन।' उस समय वन्य पशुओंके समान जो बलवान् या बदमाश होगा, वही बादशाह बनेगा। फिर उससे भी कोई सबल होगा तो उसे पदच्युत कर देगा। इस प्रकार समस्त राष्ट्र या ससारमे अधर्म और निरङ्कुशता फैल जायगी। अतएव उचित तो यह है कि यदि नास्तिकोकी तत्त्वदृष्टिमे ईश्वर-दर्शन न होता हो तो भी वे कम-से-कम सामाजिक प्रगति और सामाजिक व्यवस्थाको ठीक रखनेके लिये ही ईश्वरको माने, क्योकि इसके लिये भी ईश्वरकी बड़ी आवश्यकता है। जिन-जिन देशोने नास्तिकताके कारण ईश्वरका बहिष्कार किया है, उनकी वर्तमान अवस्थामे दस वर्ष पहलेकी अवस्थाका मिलान कीजिये। उनकी सामाजिक शिथिलताका स्पष्ट-रूपसे पता चल जायगा।

भारतवर्षमे ३५ करोड मनुष्योकी आबादी है, जो सम्पूर्ण सृष्टिकी आबादीका छठा हिस्सा है। फिर भी आज हम दीन-हीन हो रहे हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम भी नास्तिकोकी तरह आत्म-विद्रोही, अकर्मण्य और अधर्मी बन गये हैं। अत इस दुःखद परिस्थितिको सुधारनेके लिये हम सबको तीव्र जिज्ञासा होनी चाहिये। हमें अपने नत मस्तकोको ऊपर उठानेमे अनेक तरहकी भयंकर प्रतिकूलताओंका सामना करना पड़ेगा; परंतु इससे क्या आज तीन हजार वर्षोसे ही हमपर आपत्तिके बादल छा रहे हैं। हमारे पूर्वपुरुषोने बड़े साहस और धैर्यके साथ उनका मुकाबला किया है। हम भी उन्हींके

आशीर्वाद और बलसे सामना कर सकेंगे। यदि ऐसी परीक्षाके अवसरपर हम हतोत्साह, कर्तव्यविमुख, निराश या मूढ होकर बैठ जायँगे तो हमारी प्राचीन संस्कृतिका दिव्य प्रासाद नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। इतिहासवेत्ता हमपरी अपकीर्तिका अक्षय गान प्रलयकालतक गाते रहेंगे, परंतु यदि हमने नास्तिकतारूपी भीषण आपत्तिसे अपना, अपने देश या समस्त संसारका उद्धार कर लिया तो पहलेकी ही तरह आज भी हम संसारके लिये पथप्रदर्शक और गौरवशील बने रहेंगे। इसलिये समस्त हिंदू-समाजको संघटित होकर, ईश्वरमें दृढ श्रद्धा रखकर खूब प्रयत्न करना चाहिये। यदि हममेसे प्रत्येकने अपनी शक्ति, स्थिति और मतिके अनुसार पूरी चेष्टा की तो अवश्य सफलता मिलेगी।

★

महात्मा गाँधी

१—ईश्वरको मानना चाहिये, क्योकि हम अपनेको मानते हैं, जीवकी हस्ती है, जो जीवमात्रका समुदाय ईश्वर ही है और यही मेरी दृष्टिमे प्रबल प्रमाण है।

२—ईश्वरको न माननेसे सबसे बडी हानि वही है, जो अपनेको न माननेसे हो सकती है अर्थात् ईश्वरको न मानना आत्महत्या-सा है। बात यह है कि ईश्वरको मानना एक वस्तु है और ईश्वरको हृदयगत करना और उसके अनुकूल आचरण रखना यह दूसरी वस्तु है। सचमुच नास्तिक इस जगत्मे कोई है ही नहीं। नास्तिकता आडम्बरमात्र है।

३—ईश्वरका साक्षात्कार राग-द्वेपादिसे सर्वथा मुक्त होनेसे ही हो सकता है अन्यथा कभी नहीं। जो मनुष्य साक्षात्कार हुआ है—यह कहता है, उसको साक्षात्कार नहीं हुआ है, ऐसा मेरा मन्तव्य है। यह वस्तु अनुभवगम्य है, परंतु अनिर्वचनीय है। इसमे मुझको सदेह नहीं है।

४—ईश्वरमे विश्वास रखनेसे ही मै जिदा रह सकता हूँ। मेरे जीवनमे ऐसी किसी वस्तुका मुझको स्मरण नहीं है, जिससे मैं यह कह सकता हूँ कि उस समय ईश्वरकी सत्ता और दयामे मेरा विश्वास जम गया। थोडा ही समय था जब विश्वास खो बैठा था या यो कहिये कि मैं सशङ्क था। उसके बाद दिन-प्रति-दिन विश्वास बढता ही गया है और बढ रहा है। बढ रहा है इसलिये कहता हूँ कि बुद्धिके लिये तो कोई प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है; परंतु जबतक हृदयमे थोड़ा-सा भी विकार भरा है वहाँतक पूर्ण विश्वासका दावा नहीं किया जा सकता।

═ ★ ═

स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती

१—ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

प्रत्येक मनुष्यको सुखकी इच्छा रहती है और वह यह समझता है कि यदि हम दूसरोको सुख पहुँचायेगे तो उसके बदलेमें न्यायकर्ता ईश्वरकी ओरसे हमको अगले जन्ममे सुख मिलेगा और इस जन्ममें भी हम सुखी रहेगे। वास्तवमें, ईश्वरको न्याय करनेवाला और सर्वज्ञ माननेसे मनुष्यमें सहज ही दूसरोको सुख देनेकी रुचि उत्पन्न हो जाती है और जो दूसरोको सुख पहुँचाते हैं, वे धर्मात्मा समझे जाते हैं—ससारभरमे उनकी कीर्तिकी गन्ध फैल जाती है। आगे चलकर उनका स्वभाव ही दूसरोंको सुखी बनानेका हो जाता है, फिर अपने परोपकारी स्वभावसे वे जिनको सुखी बनाते हैं, वे भी **'तुख्म तासीर सुहबते असर'**के अनुसार दूसरोंको सुख पहुँचाने लगते हैं और इस तरह समस्त ससारका कल्याण हो जाता है।

पूर्वजन्मोके कर्मानुसार ही ईश्वर हमको धनी या दरिद्रके घरमें जन्म देता है, अधा, कोढी या पगु बनाता है। यदि हमारे पुण्य अधिक होते है तो हम अगले जन्ममें सुखी होते हैं और यदि पाप अधिक होते हैं तो दु खी बनते हैं। इससे यह सिद्ध है कि हमारे ऊपर न्यायकर्ता ईश्वर अवश्य है, उसको हमें अवश्य मानना चाहिये। उसको माननेसे हम पापोंसे डरेंगे और हममें स्वाभाविक ही पुण्यकर्म करनेकी रुचि हो जायगी।

२—ईश्वरको न माननेमे कौन-कौन-सी हानियाँ है ?

ईश्वरको न माननेसे ससारमे भयकर कुकर्म होने लगेगे—नास्तिकोको किसी भी पापसे भय न रहेगा। वे एकान्तमे परस्त्रीके साथ गमन करेगे—फलत उपदश आदि बीभत्स व्याधियोके शिकार होकर उन्हें सडना पड़ेगा। दो-चार रुपयोके लोभसे भी पथिकोकी हत्या होने लगेगी। थोडे-से भी स्वार्थके लिये असत्य-भाषण करनेमे किसी प्रकारका सकोच न होगा। खुदगर्जी फैल जायगी। सारा समाज आसुरी (राक्षसी) सम्पदावाला बन जायगा। 'किसी भी पुण्यकर्मका बदला देनेवाला कोई है कि नहीं' यह मूर्खतापूर्ण विचार लोगोके मस्तिष्कमे घर कर जायगा। परिणाम यह होगा कि कोई भी पुण्य-कर्म, जैसे—यज्ञ, दान, अन्नक्षेत्र, विद्यादान, कुआँ-तालाब खुदवाना आदि न हो सकेगे। इस प्रकार ईश्वरको न माननेवाला मनुष्य, समाज या देश अवगुणो और पापोका केन्द्र बन जायगा।

३—ईश्वरके होनेमे कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण है ?

ज्योतिषशास्त्रके विद्वान् दस-दस, बीस-बीस वर्षके पञ्चाङ्ग पहले ही बना डालते हैं और उनमे बुध, गुरु, शुक्र आदि नक्षत्रोके उदयास्तकी जो तिथियाँ लिख देते हैं, उनमे जरा भी अन्तर नहीं पडता। इस प्रत्यक्ष प्रमाणसे यही सिद्ध होता है कि इन ग्रहो-उपग्रहोको नियमितरूपसे सचालित करनेवाला कोई सर्वज्ञ चेतन अवश्य है, तभी तो हजारो-लाखो वर्षोसे इनका नियमितरूपसे सचालन हो रहा है। नही तो, उन जड पदार्थोको अपने और परायेका भी ज्ञान नहीं है। यदि कोई कहे कि प्रकृति (नेचर) ही इन ग्रहोका सचालन करती है, तो यह कथन असत्य हे, क्योंकि प्रकृति भी तो उसी प्रकार जड है—उसमें भी किसी तरहका ज्ञान नहीं है। परतु यदि कोई प्रकृतिवादी प्रकृतिको

'चेतन' मानता हो तो उसी चेतनको हम अपने शब्दोमे 'सर्वज्ञ ईश्वर' मानते हे। ग्रहोकी चालोको देखकर पृथ्वीभरके चतुर विद्वान् 'सर्वज्ञ चेतन' की सत्ता नि सशय स्वीकार करेगे।

बालक माताके गर्भमे रहता हे—उस समय उसके शरीरके अवयवो—जैसे फेफडा, हृदय, नेत्र, यकृत, आँत आदिको कोन वनाता हे ? उसके माता-पिता। उन बेचारे अल्पज्ञोको तो इन अवयवोका ज्ञान भी नही होता कि कौन कहाँ स्थित रहता हे। अत मनुष्यके अवयवोकी चमत्कारपूर्ण बनावट देखकर भी ईश्वरकी सत्ता परम चतुरता और सर्वज्ञता सिद्ध होती है। यदि इसपर भी हम विचार करे तो ईश्वरका अस्तित्व नि सदेह समझमे आ जायगा।

प्रत्येक जीव परतन्त्र है, स्वतन्त्र कोई नही है। सभी मनुष्य यह चाहते है कि हम सौ वर्ष जीवित रहे, कभी रोगी न हो और हमारे पुत्र ही हो, कन्या कभी न हो, परतु उनकी ये कामनाएँ कभी पूरी नही होतीं। मनुष्य चाहता कुछ है, प्रयत्न कुछ करता हे और पाता कुछ और ही ह। इससे सिद्ध होता है कि उसके भाग्यका निर्णय करनेवाला और उसे कर्मानुसार फल देनेवाला उसका शासक कोई और हे। उस सर्वनियन्ती सर्वशक्तिमती सत्ताका ही नाम ईश्वर ह।

परतु हम अपने पूर्वजन्मके पाप और ज्ञानकी कमीके कारण यो ही ईश्वरके अस्तित्वपर सदेह करते हे। जिन महात्माओंने योगबलमे ईश्वरकी सत्ताको देखा है, उनके अनुभव निम्नलिखित शब्दोमे पढिये—

ऐसा तो रगरेज ना ऐसा छींपी नाँह।
ऐसा कारीगर नहीं या दुनियाके माँह॥
बाजीगर बाजी रची सब गति पूरन साज।
किये तमासे बहुत ही तोहि दिखावन काज॥

बहुत प्यार तो पै करे तू नहि जानत सार।
वाहि भुलायो ही फिरै नेक न करे सँभार॥
देखि देखि देखत रहो स्तुति ही मुखसूँ भाख।
ताकी चतुराई सबै लेकर मनमहँ राख॥
कबहूँ जग प्रगटित करे, कबहूँ करे अलोप।
नाना विधि बाजी करै, आप रहत है गोप॥
अजब अजब अचरज किये, अद्भुत अधिक अपार।
जल थल पवन अकासमे, देखो दृष्टि उघार॥

बिजली नेत्रोंसे नहीं दिखायी देती है, इससे यह नही कहा जा सकता है कि बिजली है ही नहीं, प्रत्युत रसायन-शालामे जाकर विद्युत्-शास्त्रके किसी धुरन्धर विद्वान्द्वारा बिजलीका पता लगाया जा सकता है। उसी तरह किसी ज्ञानपूर्ण योगाभ्यासी महात्माके पास रहकर उसके बतलाये हुए साधनोद्वारा ईश्वरका अस्तित्व भी थोडे समयमें ही जाना जा सकता है, परतु इसके विपरीत यदि कोई चाहे कि हम तर्कोसे उसका पता लगा लेगे तो यह असम्भव है। उसको तो केवल योगाभ्यास और ज्ञानचक्षुसे ही देखा जा सकता है। जिस प्रकार दो लकडियोका घर्षण होनेसे आग पैदा हो जाती है, उसी प्रकार परमात्माके मानसिक नामजप और शरीरका घर्षण होनेसे ब्रह्मरूपी अग्निका साक्षात्कार हो जाता है, इसमे कुछ भी सदेह नहीं है। नीचेके श्लोकोमे देखिये—

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१४)

यस्तु द्वादशसाहस्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत्।

तस्य द्वादशभिर्मासे परब्रह्म प्रकाशते ॥

(यतिधर्मप्रकाश)

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये साख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

(गीता १३ । २४)

नासा ध्यान दृष्टि भृकुटीमे सुरति श्वासके माहिं ।
ईश्वर देख्यो जात है यामे सशय नाहिं ॥

(शुकदेवोक्ति)

ऊपरके पहले श्लोकका अर्थ यह है कि यदि तुम अपने शरीरको नीचेकी लकडी ओर 'ॐ' को अर्थात् भगवन्नामके मानसिक जपको ऊपरकी लकडी बनाकर गुरुनिर्दिष्ट मार्गानुसार घर्षण करोगे तो गुप्त रहनेवाले देवको ज्ञानचक्षुद्वारा देख लोगे। दूसरे श्लोकका भाव यह है कि जो साधक एक वर्षतक नित्य बारह हजारके हिसाबसे 'ॐ' का जप करता है, उसको ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। श्रीकृष्ण भगवान्का भी कथन है कि 'यदि ब्रह्मको ज्ञानचक्षुसे देखनेकी इच्छा हो तो ध्यान करो, साख्ययोग साधो या निष्काम कर्मयोगका साधन करो।'

ईश्वरके अस्तित्वमे सदेह करनेवाले नास्तिकोंसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वे किसी योगाभ्यासी धुरन्धर महात्माके पास जाकर कम-से-कम एक वर्षतक भी योगाभ्यास करे। सच्चे साधनोंमे अवश्य ही सफलता मिलेगी। ज्ञानचक्षुसे ईश्वरका दर्शन हो जायगा। याज्ञवल्क्य-सहितामे लिखा है कि **'योगात् संजायते ज्ञानम्'**—योगसे ही ईश्वरका ज्ञान होता है। अत जिसने योगाभ्यास नहीं किया, उनको ईश्वरके सम्बन्धमे कुछ कहनेका अधिकार ही नहीं है। जिस तरह जन्मान्धको सूर्यका दर्शन नहीं

होता, उसी प्रकार नास्तिकको केवल उसकी मूर्खतासे ईश्वर नहीं दिखायी देता।

मुझको ईश्वरमे अटल विश्वास कबसे और कैसे हुआ, इसकी कथा सुनिये—

मैं पहले सी॰ पी॰ (मध्यप्रान्त)के एक छोटे-से गॉवमे रहता था। बाल्यावस्थासे ही मुझको ईश्वरसे प्रेम था, अतएव साक्षर होनेके बादसे नित्य ही मै श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करके भोजन करता था। जब मेरी अवस्था सोलह वर्षकी हुई, एक रातको मैंने स्वप्न देखा कि एक तेजस्वी वृद्ध महात्मा तपस्वी-वेषमे मेरे सामने खडे है और मुझसे कह रहे है कि 'जिनके नामोका तू नित्य पाठ करता है, वह विष्णु मै ही हूॅ। मैं सदा अपने भक्तोकी रक्षा करता हूँ। आज अभी दो घटेके बाद तुम्हारे गॉवमे आग लगेगी। तुम जल्दीसे अपना माल-असबाब एक बैलगाडी-पर लाद लो और गॉवके बाहर चले जाओ।' इतनेमे मेरी नींद टूट गयी। ऐसी बातोपर पहलेसे विश्वास था ही, अतएव मुझको बडी प्रसन्नता हुई कि प्रभुने दर्शन देकर विपत्तिसे बचा लिया। मैने झटपट अपना माल-असबाब बैलगाडीपर लादा तथा गॉवके बाहर ले गया। इस बातको मैने गॉवके अन्य भाइयोसे भी कहा, परतु किसीने मेरी नही सुनी। थोडी देर बाद सचमुच धाँय-धॉय करके गॉव जल उठा। आगकी लपटे आकाशको छूने लगीं। हाहाकार मच गया। आग बुझानेका बहुत प्रयत्न हुआ लेकिन हवाके जोरसे सब व्यर्थ रहा। उस समय मेरी ऑखोमे ऑसू थे, परतु भगवान्‌की कृपाका स्मरण करके मै फूले भी न समाता था।

——★——

स्वामीजी श्रीकेशवानन्दजी अवधूत

१—पिताको क्यों मानना चाहिये ? यदि पिताको हम नहीं मानेंगे तो वर्णसंकर कहे जायँगे। जो पिताकी रुचि देखकर वेदविहित कर्मोंमें प्रवृत्त होता है, वह सुपूत है और जो पिताके कहनेसे कार्यमें प्रवृत्त होता है, वह पूत है। भगवान् रामचन्द्रजी सुपूत हैं और नचिकेता पूत हैं और जो पिताकी आज्ञाको भी नहीं मानते वे कपूत हैं, जैसे राजा ययातिके पुत्र।

अव्याकृत माया जिसके अधीन है, जो शुद्ध सत्त्व गुणवाला, सबका ज्ञाता और अन्तर्यामी है, जो प्रपञ्चकी वासना एवं संस्कारोंका आश्रय अर्थात् प्रेरणा करनेवाला है, जो सम्पूर्ण जगत्‌का उपादान और निमित्त-कारण है, जो हिरण्यगर्भ और विराट्‌का भी कारण है तथा व्यष्टि-समष्टि सबका अन्तर्यामी है, ऐसे प्रकाशस्वरूप सबके पिता सबके प्रेरक अन्तर्यामी ईश्वरको क्यों नहीं मानना चाहिये ? वृक्ष, पत्थर, पृथ्वी, लता—सबमें उसी एक ईश्वरकी ज्योति झलमला रही है, ऐसे ईश्वरको क्यों नहीं मानना चाहिये ? जो ऐसे ईश्वरको नहीं मानते, वे वर्णसंकर हैं।

२—ईश्वरको न माननेवालेका जन्म लेना वृथा है, उससे पृथ्वीका भार बढ़ता है, उसको प्रत्यवायकी प्राप्ति होती है। जो पिताको न मानेगा, पिताकी आज्ञाको न मानेगा, वह (एक प्रकारसे) वर्णसंकर कहलायेगा। ईश्वर सबका पिता है, वीर्यरूप भी वही है, जीवनरूप भी वही है। जिसके अधीन जीवन है, उसको न मानकर सुखकी इच्छा करना वृथा है, क्योंकि सुखका कारण (उद्गमस्थान) तो ईश्वर ही है। शास्त्रमें भी कहा है—

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणं विप्राणामुपजायते ॥

सगुण-निर्गुण दोनो रूप ईश्वरके ही हैं, ईश्वरके बिना 'मै' और 'तू' कोई नहीं है। नाम-रूप मिथ्या हैं। अस्ति, भाति, प्रिय ईश्वरका स्वरूप है। वह सच्चिदानन्द ईश्वर ही सत्य है, नाम-रूप जजाल है। जो नाम-रूपमे फँसे हुए है, उनको सुख कहाँ है ?

३—वेद स्वत प्रमाण हैं, इसलिये ईश्वर स्वत सिद्ध प्रमाण है, और सब परत प्रमाण है, ईश्वरके अस्तित्वके लिये अन्य प्रमाणोकी आवश्यकता ही क्या है ? १- प्रत्यक्ष, २- अनुमान (शब्द), ३- उपमान, ४- अर्थापत्ति, ५- अनुपलब्धि—ये सब स्थूल वस्तुको ही प्रमाणित करते है। ईश्वर अव्याकृत है। शुद्ध सत्त्वगुण ही प्रमाण है, वह निर्विकार है। ईश्वर अपने स्वरूपको कभी विस्मृत नही हुआ, इसलिये उसके लिये प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। वैसे तो वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण आदि सब शास्त्र ईश्वरका ही प्रतिपादन करते है।

४—चक्रवर्ती राजा है, यौवन दृढ है, सब विद्याओसे पूर्ण है, शत्रुओसे रहित है, सब उससे भयभीत होते है, सुन्दरी स्त्रियाँ उसके पीछे खडी होकर चँवर डुला रही है, देह नीरोग है, पुष्ट और स्थूल शरीर है, यह पुरुष-सुख है। इससे सौगुना सुख मानव-गन्धर्वको है, उससे सौगुना सुख देव-गन्धर्वको है, उससे सौगुना सुख अजान-देवको है, उससे सौगुना सुख कर्मदेवको है, उससे सौगुना सुख मुख्य देवोंको है—११ रुद्र, १२ सूर्य, ८ वसु—ये मुख्य देव हैं—इनसे सौगुना सुख इन्द्रको है, इन्द्रसे सौगुना सुख बृहस्पतिको है, बृहस्पतिसे सौगुना सुख प्रजापतिको है, प्रजापतिसे सौगुना सुख हिरण्यगर्भको है, हिरण्यगर्भसे अनन्तगुना सुख ब्रह्मवेत्ताको है। ऐसा सुख जिन्होंने

निष्काम कर्मके द्वारा अपने स्वरूपकी प्राप्ति की है, उनको प्राप्त है। वे स्फुरणारहित वृत्तिमे खेल रहे हैं, क्योकि बुद्धिका कारण हिरण्यगर्भ है और हिरण्यगर्भ भी त्रिगुणोके अदर है, किंतु जो ईश्वरको प्राप्त हो गया है, वह तो गुणातीत है। वहाँ निर्गुण-सगुणका भेद नहीं रहता। ब्रह्मवेत्ता अपने सुखकी महिमा अपने मुखसे वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि उस सुखकी महिमा अकथनीय और उससे अभिन्न है।

मैने अपने जीवनमे बहुत कुछ अनुभव किये हैं। सर्प भी मेरे हाथोपर खेले हैं, भालू, शेर आदि हिंसक जन्तु भी मेरे समीप बैठे हैं। एक बार मैं तीन दिनतक जलके अंदर पड़ा रहा, वहाँ भी अपने पिताकी गोदमे खेलते हुए मुझको कोई भय नहीं हुआ। जोशीमठमें एक गुफाके अदर दिनके १२ बजे श्रीशङ्कराचार्यजीने मुझे दर्शन दिये थे। झाडियोमें श्यामरूपके दर्शन हुए थे, अब तो उनकी कृपासे मैं केवल उन्हींके नूरको सब समय सब जगह देखता हूँ। वास्तवमे इस विषयमें कहना-सुनना कुछ भी नहीं बनता।

यदि देव-पूजा नहीं करोगे, ठाकुरद्वारे, महात्माओके पास तथा तीर्थोमे नही जाओगे तो चरण और देह पवित्र कैसे होगे ? एक गङ्गाजी, दूसरे अवतारोकी कथा, तीसरा साधु-सङ्ग—ये तीनो ससारके जीवोंको तारनेके लिये हैं। जो इनका सेवन नहीं करते, वे मनुष्य अधम हैं। जो श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारोकी निन्दा करते हैं, वे वर्णसकर हैं। एक रोमकी भी निन्दा नहीं की जा सकती। कौन-सा ऐसा रोम है, जिसमे वे पूर्ण नहीं हैं ? क्या बनकर किसकी निन्दा करते हो ? उस ब्रह्मसे भिन्न अपना रूप तो हमें बताओ ? परमात्मासे भिन्न कोई वस्तु हो, तब तो निन्दा की जा सके। वह तो रोम-रोममें भरा हुआ है। कारण-कार्य सब वही है। जो उसको नहीं जानते, वे ही निन्दा करते हैं। अपने पेटके लिये जो श्रुति-स्मृतिका उलटा अर्थ करते है, वे शठ कहलाते हैं।

उनका न भला होगा और न इस लोक तथा परलोकमे उन्हे सुख ही मिलेगा। उनकी युग-युगान्तरोमे दुर्गति ही होगी। वे लोग भविष्यको नहीं विचारते। बुद्धिमान् वही है, जो पहले कर्मका फल विचारे और फिर उसमे प्रवृत्त हो। जो ईश्वर-शरणमे आ पड़ते है, वे जन्म-मरणके दु.खमे कभी नहीं पड़ते। जो ईश्वर-शरणमे आते है, वे मूलसे सब दु·ख गवॉं देते है। जो अहता-ममताको छोड़ ईश्वर-शरणमे आते है, वे अपने स्वामीको हृदयमे पाते है, द्वैत-कल्पनाका मूल गवॉते है, एक ही अखण्ड नजर पाते हैं, सत्यमे सत्यरूप मिलाते है, फिर गर्भमे नहीं आते हैं। जो ईश्वरके गुण गाते है, वे हरदम अखण्ड सुख पाते हैं, वे ईश्वररूप हो जाते हैं। जो सुखकी महिमा गाते हैं, वे दुःखमे कभी नही आते हैं। अन्तर-बाहर आप समाना, सत्त पुरुष पूरण परमाना। सब बस्ती सब ठौरमें, एकहि ब्रह्म छिपाना। अन्तर बाहिर आप समाया, सब जगत् जिन आप उपाया। जन्म-मरणका फिर मूल न थाया, ऐसा ईश्वर जिसने हृदयमे गाया, संकट कटे परम पद पाया।

═ ★ ═

स्वामी श्रीहरिबाबाजी महाराज

चारो प्रश्नोको पूछनेपर आप बोले—

मैं तो क्या कहूँ ? मुझे तो न किसी प्रकारका अनुभव है, न कोई ऐसी विशेष बात है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि भक्तजन मुझपर प्रेम करते हैं, मुझे अपना मानते हैं। इसे ही मैं भगवत्‌की अपने ऊपर बडी कृपा मानता हूँ।

भगवान्‌के सम्बन्धकी बात तो क्या कहूँ। साधु-सन्यासियोमें कहीं-कहीं वह बात नहीं मिलती, जो छोटे-छोटे बालकोंमे मिल जाती है। भगवत्-सम्बन्धी बात इन बालकोसे पूछो (दैवयोगसे उसी समय कहींसे चार-पॉच बालक भी वहॉ आ गये)। श्रीस्वामीजीने उनसे पजाबी (भाषा) मे कहा, 'बालको! भगवान्‌को तुमलोग जानते हो तो कहो।' कई बार पूछनेपर और तो सब चुप रहे, परतु उनमेसे एक बच्चा बोला, 'परमेश्वर सब जगह है।' स्वामीजी बोले, 'सब जगह हे, तुमने लोगोंसे सुना या देखा भी है ?' इसपर सब बालक कुछ चुप-से ही रहे। तब स्वामीजी महाराजने एक गुरुका उदाहरण देते हुए कहा कि 'दो शिष्य थे, उनसे गुरुजीने भगवान्‌का—ईश्वरका स्वरूप पूछा, एकने अनेक शास्त्रसम्मत बातें बतायीं, उसके रूपका विविध प्रकारसे वर्णन किया, दूसरेसे पूछा गया तो वह कुछ भी नहीं बोला, केवल चुप रहा।'

ईश्वरको जो देखता है, वह कुछ कह नहीं सकता। उसके लिये जब कुछ कहना होता हे, तब उससे नीचेकी स्थितिमें उतरकर ही कहना होता है। ईश्वरका सच्चा वर्णन मौन है, ईश्वरको यदि देखनेकी इच्छा हो

तो जाकर भगवान्‌के भक्तोके दर्शन करो। वही ईश्वरका रूप है। ससारके उदाहरणसे ईश्वरको क्या सिद्ध करना है। भगवान्‌के भक्तोके पास जानेसे स्वाभाविक ही सुख और शान्तिका अनुभव होता है। ससारके पाप-ताप नष्ट होते है। यही उसका प्रत्यक्ष रूप है, इससे अधिक मै कुछ नहीं कह सकता।

(पुन प्रार्थना करनेपर निम्नलिखित पत्र आपने भेजा।)

ॐ श्रीहरिः श्रीगुरवे नमः।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

महान् पुरुषोका सङ्ग और सामीप्य ही श्रीभगवान्‌की सत्ता और उनके आनन्दको प्रत्यक्ष दिखलाते हैं। पूज्यपाद श्रीगुरुदेवकी समीपतामे बिना किसी साधन या प्रयत्नके ही मुझे श्रीभगवान्‌की स्फूर्ति प्राय निरन्तर रहती थी और यदि कभी स्वप्नमे भी सकट या भय होता तो अपने-आप उसी अवस्थामे श्रीभगवान्‌द्वारा वह हट जाता था। श्रीगुरुदेवके वाक्यामृत इस समय स्मरण आते हैं। अकबरने बीरबलसे पूछा—

१—तुम्हारा खुदा कहाँ रहता है ? २—क्या करता है ? ३—क्या खाता है ? और ४—सकल्पद्वारा ही सब कुछ करनेमें समर्थ होनेपर भी अवतार क्यो धारण करता है ? बीरबलने तीन प्रश्नोंका उत्तर दिया—

१—रहता तो सर्वत्र ही है, पर प्रत्यक्ष प्रकट सतोंके हृदयमे होता है। यदि मिलना चाहो तो वहीं मिलेगा।

२—काजियोको पाजी और पाजियोको काजी (अनवच्छिन्न परिवर्तन)।

३—जीवाभिमान।

चोथे प्रश्नके उत्तरके लिये बीरबलने कुछ मुहलत मॉगी और इसी बीचमे अकबरके छोटे शाहजादेके समान एक नकली बालक बनवाया जो ठीक वसा ही दीख पडता था। बच्चेको खेलानेवाली दासीको समझा दिया कि जब आज सायकाल बादशाह बाहरसे आकर जलाशयके पास बेठे ओर तुम्हे पुकारकर बच्चा मॉगे, तब असली बच्चेको दूसरेके पास छिपाकर नकली बच्चा देते समय पॉव फिसल जानेका बहाना करक गिर पडना आर साथ ही नकली बच्चेको जलाशयमे गिरा देना।' शामको अकबरके बाहरसे आकर बैठने और बच्चेके लिये पुकारनेपर दासीन वसा ही किया। बच्चेको पानीमे गिरते देख बादशाह घबराकर स्वय जलमे कूदनेको तैयार हो गये, इतनेमे ही बीरबलने झट असली बच्चा लाकर कहा, 'सरकार! घबराइये नहीं, शाहजादा तो यह मोजूद ह। अकबरको बीरबलकी ऐसी चेष्टापर क्रोध आया और उसने बीरबलको दण्डका हुक्म दिया। बीरबलने कहा, 'हुजूर, मेने तो आपके प्रश्नका उत्तर दिया है। हम आपके सैकडों नौकर-चाकर मोजूद थे, जो आपकी आज्ञापर प्राणतक देनेको तैयार थे, तो भी बच्चेपर आपका इतना स्नेह था कि आप स्वय जलमे कूदनेको विवश हो गये। इसी प्रकार सकल्पमात्रसे ही सब कुछ करनेमे समर्थ होनेपर भी श्रीभगवान्‌को अपने भक्त इतने प्यारे ह कि वे उनके लिये प्रेमविवश होकर स्वय प्रकट होते है।'

(क) श्रीश्रीगुरुदेवको श्रीवृन्दावनमे प्रकट दर्शन

श्रीमहाराजजी (श्रीगुरुदेव) को यह जानकर कि अब भी श्रीवृन्दावनके श्रीसेवाकुञ्जमे श्रीश्यामसुन्दर पूर्ववत् लीला करते है, दर्शनकी बडी इच्छा हुई। श्रीसेवाकुञ्जमे रातको कोई रहने नहीं पाता, इसलिये श्रीमहाराजजी आधी रातके समय जाकर कुञ्जकी दीवारपर

चढकर बैठ जाते और भगवत्-स्मरण करते रहते, फिर चार बजेके करीब उतरकर आ जाते। इसी प्रकार करते-करते जितने दिनोका मनमे सकल्प किया था, उनमे केवल एक ही दिन शेष रह गया, पर दर्शन नहीं हुए। अन्तकी रात्रि आ गयी। मन आशा और निराशा दोनोसे भरा था कि अकस्मात् सामने रासमण्डल प्रकट हुआ। एक सखीने कहा, 'यहाँ तो कोई मनुष्य है।' श्रीश्यामसुन्दर बोले, 'नहीं, वह तो मेरे परम भक्त है।' रास आरम्भ हुआ, चारो ओर प्रेमानन्द छा गया। उस परमोत्कृष्ट रसको पानकर श्रीमहाराजजी प्रेमानन्दमे निमग्न हो गये, इतनेमे श्रीश्यामसुन्दरने आकर श्रीमहाराजजीके कधेपर अपना करकमल रखा और कहा, 'मै प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' श्रीमहाराजजीने कहा, 'आपके दर्शनसे परे और क्या हे ? बस, ऐसा ही आपके चरणोमे प्रेम बना रहे।' श्रीश्यामसुन्दर 'तथास्तु' कहकर मण्डलसहित अन्तर्धान हो गये। श्रीमहाराजजी भी मस्तीमे झूमते-झूमते वहाँसे आ गये। श्रीमहाराजजीके मुखारविन्दसे जीवनभरमे एक वार एकान्तमे यह प्रसग सुना था। सुनाते समय श्रीमहाराजजीके रोम-रोमसे दिव्यानन्द प्रकट हो रहा था और वही स्मृति मेरे जीवनका साधन है और साधन रहेगी।

(ख) 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

श्रीमहाराजजी विद्याध्ययन-काल (सन्यस्त अवस्था) मे श्रीकाशीजीमे निवास करते थे। एक बार अनध्यायमे एक दूसरे वृद्ध ब्राह्मण पण्डितजीके साथ वे बाहर वनभ्रमण और एकान्तसेवनको गये। वे सर्वत्र आनन्दपूर्वक प्रत्यक्ष श्रीभगवान्‌के प्रकाशका अनुभव करते और घूमते-घूमते दोपहरको जगलमे एक टूटे हुए मन्दिरपर पहुँचे। धूप अधिक थी, विश्रामके निमित्त वहीं बैठ गये। दोनोको भूख भी खूब लग गयी थी, परतु भिक्षाके निमित्त पास कोई बस्ती नही। पण्डितजी

बारह। अब क्या किया जाय?' श्रीमहाराजजीने कहा 'गोविन्द भजन करो 'स्मर्तव्य सदा विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुजित्।' इतनेमें ही एक विलक्षण पुरुष वनसे आया। उसके हाथमें एक दोना, जिसमें पाँच पेड़े थे। श्रीमहाराजजीके सामने प्रसाद रख प्रणाम कर वह चला गया। कुछ बातचीत नहीं हुई। पण्डितजीने पूछा 'कोई आपका भक्त था क्या?' श्रीमहाराजजीने मुस्कराकर कहा, 'हाँ', भक्त ही था (क्योंकि चिरकालसे भक्तोंके सच्चे भक्त श्रीभगवान् ही हैं)।' अब महाराजजी पण्डितजीसे और पण्डितजी महाराजजीसे आग्रह करने लगे कि 'इससे जलपान कर लें आपको बहुत भूख लगी है।' एक दूसरेको ऐसा कहते पर सकोचवश उन पेड़ोंको ग्रहण कोई न करते। इतनेमें मन्दिरकी छतपरसे उसी पुरुषकी आवाज आयी कि सकोच मत करो, दोनो ग्रहण करो।' आश्चर्य और आनन्दके साथ दोनोंने एक-एक करके पेडा उठाना आरम्भ किया। दोना रुचिपूर्वक पेडे खाते जायँ, पर दोनोंमे वही पाँच-के-पाँच। दोनोने पेटभर प्रसाद पाया, पर दोनेके पाँच पेडे बच ही रहे (अनन्त श्रीभगवान्के सम्बन्धका सभी कुछ अनन्त है)। श्रीभगवत्-लीलाको देखकर दोनो आनन्द-उत्साहसे भर गये। साय-काल काशीजी आकर सबको उसमेंसे प्रसाद दिया, फिर भी दोनेके पेडे पाँच-के-पाँच। तब श्रीमहाराजजीने उस दोनेको प्रसादसहित श्रीभागीरथीजीके अर्पण कर दिया।

ऐसी श्रीमहाराजजीके सम्बन्धकी बीसियों अलौकिक घटनाएँ स्मरण आ रही हे, सकोचवश लिखनेका साहस नहीं। हरिः ॐ।

—— ★ ——

श्रीजयदयालजी गोयन्दका

ईश्वरके विषयमे जो प्रश्न किये गये है, उनको सुनकर मुझको आश्चर्य नही होता, क्योकि यह विषय बुद्धिकी पहुँचके बाहरका है। आश्चर्य तो इसमे मानना चाहिये कि जो ईश्वरको मानते हुए भी नही मानते। ईश्वरके तत्त्वको न जानकर ईश्वरको माननेवाले कहते है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, कर्मफलदाता, सत्य-विज्ञान-आनन्दघन है। इस प्रकार वे ईश्वरके स्वरूपको बतलाते है, पर ईश्वरके निर्माण किये हुए नियमोका पालन नही करते। ऐसे पुरुषोका मानना केवल कथनमात्र है। ऐसे ही मनुष्योकी मूर्खताका यह फल है कि आज ससारमे ईश्वरके अस्तित्वमे सदेह किया जाता है। ईश्वरको सर्वथा न माननेवालोकी अपेक्षा वचनमात्रसे ईश्वरके माननेवालोको उत्तम समझता हुआ भी मै उनकी निन्दा इसलिये करता हूँ कि ऐसे अश्रद्धालु मनुष्य ही अनीश्वरवादके प्रचारमे एक प्रधान कारण हुए है। जो वास्तवमे ईश्वरको समझकर ईश्वरको मानते है, उन्हीका मानना सराहनीय है, क्योकि जो ईश्वरके तत्त्वको जान जाता है, उसके आचरण परमेश्वरकी मर्यादाके प्रतिकूल नही होते, प्रत्युत उसीके आचरण प्रमाणभूत और आदरणीय होते है। भगवान् कहते है—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३।२१)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है अन्य पुरुष भी उसीके

अनुसार बर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसीका अनुसरण करते है।' ऐसे पुरुष ही ईश्वरवादके सच्चे प्रचारक है, म तो एक साधारण पुरुष हूँ। यद्यपि ईश्वर-विषयक प्रश्नोके उत्तर देनेमे मे असमर्थ हूँ, तथापि पाठकोके लिये साधु पुरुषोके सङ्ग और अपने विचारसे उत्पन्न हुए भावोका कुछ अश अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार उनकी सेवामे रखता हूँ। सज्जनगण मुझे बालक समझकर मेरी त्रुटियोको क्षमा करेगे। ईश्वरका विषय बडा गहन और रहस्यपूर्ण है, इस विषयमे बडे-बडे पण्डितजन भी मोहित हो जाते हैं, फिर मुझ-सरीखे साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है।

१—(क) ईश्वर बिना ही कारण सबपर दया करता है, प्रत्युपकार-के बिना न्याय करता है और सबको समान समझकर सबसे प्रेम करता है। इसलिये उसको मानना कर्तव्य है और कर्तव्यपालन करना ही मनुष्यत्व है।

(ख) ईश्वरको बिना माने उसके तत्त्वकी खोज नहीं हो सकती और उसकी खोज हुए बिना उसके तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता और ईश्वर-ज्ञानके बिना कल्याण होना सम्भव नहीं।

(ग) ईश्वरको माननेसे उसकी प्राप्तिके लिये उसके गुण, प्रेम, प्रभावको जाननेकी खोज होती है और उसके नामका जप, स्वरूपका ध्यान, गुणोके श्रवण-मननकी चेष्टा होती है, जिससे मनुष्यके पापो, अवगुणो एव दु खोका नाश होकर उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

(घ) अच्छी प्रकारसे समझकर ईश्वरको माननेसे मनुष्यके द्वारा किसी प्रकारका दुराचार नहीं हो सकता। जिन पुरुषोंमें दुराचार देखनेमें आते हैं, वे वास्तवमें ईश्वरको मानते ही नहीं। झूठे ईश्वरवादी बने हुए हैं।

-(ङ) सच्चे हृदयसे ईश्वरको माननेवालोंकी सदासे जय होती आयी है।

ध्रुव-प्रह्लादादि-जैसे अनेको ज्वलन्त उदाहरण शास्त्रोमे भरे है। वर्तमानमें भी सच्चे हृदयसे ईश्वरको मानकर उसकी शरण लेनेवालोकी प्रत्यक्ष उन्नति देखी जाती है।

(च) सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रोकी सार्थकता भी ईश्वरके माननेसे ही सिद्ध होती है, क्योकि सम्पूर्ण शास्त्रोका ध्येय ईश्वरके प्रतिपादनमे ही है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरि सर्वत्र गीयते॥

इसी प्रकार ईश्वरको माननेसे अनन्त लाभ है।

२—(क) कर्मेकि अनुसार फल भुगतानेवाले सर्वव्यापी परमात्माकी सत्ता न माननेसे मनुष्यमे उच्छृङ्खलता बढती है। उच्छृङ्खल मनुष्यमें झूठ, कपट, चोरी, जारी, हिंसादि पापकर्मोकी एव काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार आदि अवगुणोकी वृद्धि होकर उसका पतन हो जाता है, जिसके परिणाममे वह और अधिक दु खी बन जाता है।

(ख) ईश्वरको न माननेसे ईश्वरके तत्त्वज्ञानकी खोज नहीं हो सकती और तत्त्वज्ञानकी खोजके बिना आत्माका कल्याण नही हो सकता।

(ग) ईश्वरको न माननेसे कृतघ्नताका दोष आ जाता है, क्योकि जो पुरुष सर्व ससारके उत्पन्न तथा पालन करनेवाले सबके सुहृद् उस परमपिता परमात्माको ही नही मानते, वे यदि अपनेको जन्म देनेवाले माता-पिताको न माने तो क्या आश्चर्य है? और जन्मसे उपकार करनेवाले माता-पिताको न माननेवालेके समान दूसरा कौन कृतघ्न है।

(घ) ईश्वरको न माननेसे मनुष्यकी आध्यात्मिक स्थिति नष्ट हो जाती है और उसमें पशुपन आ जाता है। ससारमे जो लोग ईश्वरको नही

मानते, गौर करके देखनेसे उनमे यह बात प्रत्यक्ष देखनेमे आती है।

इसी प्रकार ईश्वरको न माननेमे अन्य अनेको महान् हानियाँ हैं, पर विस्तारके भयसे अधिक नहीं लिखा गया।

३—ईश्वरके अस्तित्वमे प्रमाण पूछना कोई आश्चर्यजनक बात या बुद्धिमत्ता नही है। इस विषयमे प्रश्न करना साधारण है। स्थूल-बुद्धिसे न समझमे आनेवाले विषयमे समझदार पुरुषको भी शङ्का हो जाती है, फिर साधारण मनुष्योकी तो बात ही क्या है ? परतु विचारनेकी बात है कि जो परमात्मा स्वत प्रमाण है और जिस परमात्मासे ही सबका प्रमाण सिद्ध होता है, उसके विषयमे प्रमाण पूछना एक प्रकारका बालकपन है, जैसे किसी मनुष्यका अपने ही सम्बन्धमे शङ्का करना कि 'मे हूँ या नही' व्यर्थ है, वैसे ही ईश्वरके विषयमे पूछना भी है। यदि कहो कि मै तो प्रत्यक्ष हूँ, ईश्वर तो ऐसा नहीं है। यह कहा जा सकता हे, परतु असल बात तो यह है कि परमात्मा इससे भी बढकर प्रत्यक्ष हे। कोई पूछे कि 'हमसे बढकर परमात्माकी प्रत्यक्षता कैसे ?' इसका उत्तर यह है कि जेसे स्वप्न-अवस्थाके अनुभव किये हुए पदार्थ और शरीर जाग्रत्-अवस्थामे नहीं रहते, इसी बातको लेकर यह शङ्का हो सकती है कि यह जाग्रत्-अवस्थामे दीखनेवाले पदार्थ और शरीर भी किसीका स्वप्न हो, क्योकि स्वप्नके पदार्थोका स्वप्न-अवस्थामे परिवर्तन देखते हे, वैसे ही जाग्रत्-अवस्थाके पदार्थोका जाग्रत्-अवस्थामे परिवर्तन देखते हे, परतु जिससे इन सबकी सत्ता है और जो सबके नाश होनेपर भी नाश नहीं होता, जो सबका आधार और अधिष्ठान है, उस निर्विकार परमात्माकी प्रत्यक्षता हमारे व्यक्तिगत अस्तित्वकी अपेक्षा बहुत विशेष है, पर इस प्रकारकी प्रत्यक्षता उन्हीं महात्मा पुरुषोको होती है कि जिनकी महिमा सब शास्त्र गाते हे। जो सूक्ष्मदर्शी है, वे ही

सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा परमात्माका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते है। इस विषयमे श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि शास्त्र और महात्मा पुरुषोके वचन प्रमाण हैं। जिनको स्वय साक्षात् करनेकी इच्छा हो, वे भी श्रुति, स्मृति तथा महात्मा पुरुषोके बताये हुए मार्गके अनुसार साधनके लिये प्रयत्न करनेसे परमात्माको प्रत्यक्ष कर सकते हे। परमात्माके अस्तित्वकी सिद्धिमे युक्तिप्रमाण भी हैं। कार्यकी सिद्धिसे कारणके निश्चय करनेको युक्तिप्रमाण कहते हैं। ससारमे किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति और उसका सचालन किसी कर्ताके बिना नही देखा जाता। इसीसे यह निश्चय होता हे कि पृथ्वी, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा और काल आदिकी रचना और नियमानुसार उनका सचालन करनेवाली कोई बडी भारी शक्ति हे, उसी शक्तिको परमात्मा समझना चाहिये। यदि कहो, विना कर्ताके प्रकृतिसे ही अपने-आप सब उत्पन्न हो जाते हे, इसमे कर्ताकी कोई आवश्यकता नही, जेसे—बृक्षसे बीज और बीजसे वृक्ष अपने-आप ही उत्पन्न होते हुए देखनेमे आते हे, ठीक हे, किंतु यह कहना युक्तियुक्त नही हे। प्रथम तो यह बात विचारनी चाहिये कि पहले बीजकी उत्पत्ति हुई या वृक्षकी ? यदि वृक्षकी कहो तो वृक्ष कहाँमे आया और बीजकी कहो तो बीज कहाँमे आया ? यदि दोनोकी उत्पत्ति एक माथ कहो तो किसके द्वारा किससे हुई ? क्योकि बिना किसी कारणके कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नही। जिससे और जिसके द्वारा बीज, वृक्ष आदिकी उत्पत्ति हुई है, वही परमात्मा हे।

दूसरा प्रश्न होता हे कि यह प्रकृति जड हे या चेतन ? यदि जड कहो तो चेतनकी सत्ता-स्फूर्तिके बिना किसी पदार्थका उत्पन्न और सचालन होना सम्भव नहीं और यदि चेतन कहो तो फिर हमारा कोई विरोध नहीं, क्योकि चेतन-शक्ति ही परमात्मा है, जिनके द्वारा इस

ससारकी उत्पत्ति हुई है। केवल ससारकी उत्पत्ति ही नहीं, चेतनकी सत्ता बिना इस ससारका सचालन भी नियमानुसार नहीं हो सकता। बिना यन्त्रीके किसी छोटे-से-छोटे यन्त्रका भी सचालन होता नहीं दिखायी देता। किसी भी कार्यका सचालन हो, बिना सचालकके वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, अतएव जिससे इस ससारका नियमानुसार सचालन होता है उसीको परमात्मा समझना चाहिये। जीवोंके किये हुए कर्मोंके फलोंका भी सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ परमात्माके बिना यथायोग्य भुगताया जाना सम्भव नहीं है, यदि कहो, 'कर्मोंके अनुसार कर्ता पुरुषको किये हुए कर्मोंका फल अपने-आप मिल जाता है, तो यह कहना युक्तियुक्त नहीं, क्योंकि कर्म जड होनेके कारण उनमे क्रियाओंके अनुसार फल-विभाग करनेकी शक्ति नहीं है और चेतन जीव बुरे कर्मोंका फल दु ख स्वय भोगना चाहता नहीं। चोर चोरी करता है और चोरीके अनुसार राजा उसे दण्ड देता है, परतु न तो वह चोर जेलखानेमे स्वय जाता है और न वह चोरीरूप कर्म ही उसे जेल पहुँचा सकता है। राजाकी आज्ञासे नियत किये हुए अधिकारी लोग ही चोरीके अपराधके अनुसार उसे जेलका दण्ड देते है, इसी प्रकार पापकर्म करनेवाले पुरुषोंको परमेश्वरके नियत किये हुए अधिकारी देवता पाप-कर्मोंका दु खरूप दण्ड देते है। ऐसे ही यह जीव किये हुए सुकृत कर्मोंका फलरूप सुख भोगनेमे भी असमर्थ है। जैसे, कोई राजाके कानूनके अनुसार चलनेवाले व्यक्तिको राजा या उसके नियत किये हुए पुरुषोंद्वारा कर्मोंके अनुसार नियत किया हुआ ही पुरस्कार मिलता है, उसी प्रकार सुकृत या सत्कर्म करनेवाले पुरुषोंको भी उनके कर्मोंके अनुसार परमेश्वरद्वारा नियत किया हुआ फल मिलता है। अज्ञानके द्वारा मोहित होनेके कारण जीवोंको अपने कर्मोंके अनुसार स्वतन्त्रतासे एक शरीरसे

दूसरे शरीरमे जानेका सामर्थ्य और ज्ञान भी नहीं है।

इसके सिवा सृष्टिके प्रत्येक कार्यमे सर्वत्र प्रयोजन देखा जाता है। ऐसी प्रयोजनवती सृष्टिकी रचना बिना किसी परम बुद्धिमान् चेतन कर्ताके नहीं हो सकती।

ऊपरके विवेचनसे यह बात सिद्ध होती है कि परमेश्वरके बिना न तो ससारकी उत्पत्ति सम्भव है, न संचालन हो सकता है, न जीवोको उनके कर्मफलका यथायोग्य फल प्राप्त हो सकता है और न सप्रयोजन सृष्टि हो सकती है।

उपर्युक्त प्रमाण तो तर्कानुकूल दिये गये हैं, वस्तुतः ईश्वर 'स्वत प्रमाण' प्रसिद्ध है, क्योकि सम्पूर्ण प्रमाणोकी सिद्धि ईश्वरके प्रमाणसे ही सिद्ध होती है, इसलिये उसमे अन्य प्रमाणोकी आवश्यकता नहीं।

ईश्वरके होनेमे शास्त्र भी प्रमाण है। सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणोका तात्पर्य भी ईश्वरके प्रतिपादनमे ही है। इसके लिये जगह-जगह असंख्य प्रमाण देख सकते है।

यजुर्वेद—

ईशा वास्यमिदँ् सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

'इस जगत्मे जो कुछ भी है, वह सब-का-सब ईश्वरसे ही व्याप्त है।'

ब्रह्मसूत्र—

'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात्।'

'जिससे उत्पत्ति, स्थिति और पालन होता है, वह ईश्वर है। शास्त्रका कारण होनेसे अर्थात् जो शास्त्रका उत्पादक है तथा शास्त्रद्वारा प्रमाणित है, वह ईश्वर है।'

गीता—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो

मत्त स्मृतिर्ज्ञानमपोहन च ।
वेदश्च सवेरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

(१५ १)

म ही सब प्राणियाक हृदयम अन्तर्यामीरूपसे स्थित हू तथा मुझस ही स्मृति ज्ञान आर अपाहन हाता ह और सब वेदोद्वारा मै ही जाननयाग्य हू तथा वदान्तका कर्ता आर वदाका जाननवाला भा मै ही हू।

ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

(१८ ६१)

ह अजुन। शरीररूप यन्त्रम आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियाका अन्तर्यामी परमश्वर अपनी मायास उनक कर्मकि अनुसार भ्रमाता हुआ सबक हृदयम स्थित ह।

ज्यातिषामपि तज्ज्योतिस्तमस परमुच्यत ।
ज्ञान नय ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

(१)

यह ब्रह्म ज्यातियाका भा ज्याति एव मायास अति पर कहा जाता ह तथा परमात्मा बोधस्वरूप आर जाननयाग्य ह एव तत्त्वज्ञानस प्राप्त हानवाला आर सबक हृदयम स्थित ह।

उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर ॥

(१ ।१७)

उन (क्षर अक्षर) दानास उत्तम पुरुष ता अन्य ही ह कि जा तीना लाकाम प्रवश करक सबका धारण पाषण करता है एव

अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा, ऐसे कहा गया है।'

योगदर्शन—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।
पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

(समाधिपाद २४—२६)

'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरणभय)—इन पाँच क्लेशोसे, पाप-पुण्य आदि कर्मोसे, सुख-दुःखादि भोगोसे और सम्पूर्ण वासनाओसे रहित पुरुषविशेष (पुरुषोत्तम) ईश्वर है। उस परमेश्वरमे निरतिशय सर्वज्ञता है। वह पूर्वमे होनेवाले ब्रह्मादिका भी उत्पादक और शिक्षक है तथा कालके द्वारा उसका अवच्छेद नहीं होता।'

उपनिषद्—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व।

(तैत्तिरीय० ३।१)

'जिससे सब भूत उत्पन्न होते है, जिससे उत्पन्न हुए जीते हैं, नाश होकर जिसमें लीन होते है, उसको तू जान, वह ब्रह्म है।'

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्वतर उ० ६।११)

'एक ही देव (परमात्मा) सब भूतोके अन्तस्तलमें विराजमान है,

वह सर्वव्यापी है, सब भूतोका अन्तरात्मा है। वही कर्मोका अध्यक्ष, सब भूतोका निवासस्थान, साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण ह।

श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान् कहते हें—

अह ब्रह्मा च शर्वश्च जगत कारण परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयदृगविशेषण ॥
आत्ममाया समाविश्य सोऽह गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्व दध्रे सज्ञा क्रियोचिताम् ॥

(४।७।५० ५१)

हे ब्राह्मण। में ही ब्रह्मा हूँ, शिव हूँ और जगत्का परम कारण हूँ। मैं ही आत्मा और ईश्वर हूँ, अन्तर्यामी हूँ, स्वय द्रष्टा हूँ तथा निर्गुण हूँ। मैं अपनी त्रिगुणमयी मायामे समाविष्ट होकर विश्वका पालन, पोषण ओर सहार करता हुआ क्रियानुसार नाम धारण करता हूँ।'

महाभारत—अनुशासनपर्वके १४९ वें अध्यायमें कहा है—

अनादिनिधन विष्णु सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्ष स्तुवन्नित्य सर्वदु खातिगो भवेत् ॥ ६ ॥
ब्रह्मण्य सर्वधर्मज्ञ लोकाना कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथ महद् भूत सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥
परम यो महत्तेज परम यो महत्तप ।
परम यो महद् ब्रह्म परम य परायणम् ॥ ९ ॥
पवित्राणा पवित्र यो मङ्गलाना च मङ्गलम् ।
दैवत देवताना च भूताना योऽव्यय पिता ॥ १० ॥

'उस अनादि अनन्त, सर्वलोकव्यापक, सर्वलोकमहेश्वर, सब लोकोंके अध्यक्षकी सदा स्तुति करनेवाला सब दु खोंको लाँघ जाता ह।' 'जो परम ब्रह्मण्य, सब धर्मोको जाननेवाले, लोकोंकी कीर्तिको

बढ़ानेवाले, लोकनाथ, सर्वभूतोको उत्पन्न करनेवाले महान् भूत है।' 'जो तेजके परम और महान् पुञ्ज हैं, जो बडे-से-बड़े तपोरूप हैं, जो परम महान् ब्रह्मरूप है और आश्रयके परमधाम है।' 'जो पवित्र है, जो मङ्गलोका मङ्गलरूप है, जो देवताओका परम देवता है और जो प्राणिमात्रका अविनाशी पिता है।'

वाल्मीकीय रामायण—

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघवः।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥

(युद्धकाण्ड ११७। ६, १५)

ब्रह्मा कहते हैं—'हे देव ! आप समस्त लोकोके कर्ता, ज्ञानियोमे श्रेष्ठ विभु हैं। आप ही सब लोकोंके आदि, मध्य, अन्तमे विराजित अक्षर ब्रह्म और सत्य हैं, आप सब लोकोके परम धर्म विष्वक्सेन चतुर्भुज हरि हैं।'

जैन, बौद्ध और चार्वाक आदि कतिपय मतोको छोड़कर ऐसा कोई भी वेद-शास्त्र नहीं है, जिसमें ईश्वरका प्रतिपादन न किया गया हो। यहाँतक कि मुसल्मान, ईसाई आदि भी ईश्वरके अस्तित्वको मानते हैं। यथा—

कुरान—पूर्व और पश्चिम सब खुदाके ही हैं। तुम जिधर भी अपना मुँह घुमाओगे, उधर ही खुदाका मुख रहेगा। खुदा वास्तवमे अत्यन्त ही उदार है, सर्वशक्तिमान् है।

ईसाने कहा है—जिसका ईश्वरमे विश्वास है तथा जो भगवान्‌की शक्तिका आश्रित है, वह संसारसे तर जायगा, पर अविश्वासियोकी बड़ी दुर्गति होगी।

४—मनुष्य यदि विचारदृष्टिसे देखे तो उसे न्यायकारी और परम दयालु ईश्वरकी सत्ता और दयाका पद-पदपर परिचय मिलता है। प्राचीन और अर्वाचीन बहुत-से महात्माओंकी जीवनियोमे इस प्रकारकी घटनाओके अनेको प्रमाण प्राप्त होते है। मैं अपने सम्बन्धमे इस विषयपर क्या लिखूँ? अवश्य ही मैं यह विनय कर सकता हूँ कि सर्वशक्तिमान् विज्ञानानन्दघन परमात्माकी सत्ता और दयापर तथा उसके फलस्वरूप होनेवाली महात्माओकी जीवन-घटनाओंपर विश्वास करनेसे अवश्य लाभ होता है।

—★—

महामहोपाध्याय डा० पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्

सम्पादक महोदयने व्यक्तिगत भावसे चार प्रश्न उत्तरके लिये मेरे पास भेजे है; परंतु मैं इन्हे व्यक्तिगतरूपमे न लेकर कुछ अंशोमे व्यापकरूपमे ही ग्रहण करता हूँ। यद्यपि ये प्रश्न सम्पादककी ओरसे ही आये हैं, तथापि वस्तुतः ये किसी आध्यात्मिक तत्त्वजिज्ञासुके ही स्वाभाविक प्रश्न हैं। अतः इनका उत्तर व्यक्तिगतरूपसे देना समीचीन नहीं मालूम होता। इसके दो विशेष कारण भी हैं—

(क) यदि ये प्रश्न केवल व्यक्तिविशेपके प्रश्न होते, अर्थात् यदि वे जिज्ञासु होकर प्रतिनिधिरूपसे प्रश्न न उठाते तो मेरा उत्तर भी ठीक-ठीक व्यक्तिगत होता, क्योकि इन प्रश्नोके किसी-किसी अंशका उत्तर देते समय अपने जीवनकी कुछ ऐसी आभ्यन्तरीय और बाह्य घटनाओंका उल्लेख करना आवश्यक है, जो अन्तरङ्गरूपसे व्यक्ति-विशेपके प्रति ही किया जा सकता है। पर जिसका प्रकाश्यरूपमें लोक-समाजमे कोई भी अनुभवी व्यक्ति उल्लेख करना नहीं चाहेगा।

(ख) साधन-जगत्का जो निगूढ़ रहस्य है, जिसकी प्राप्तिके लिये दीर्घकालतक सत्यस्वरूप सद्गुरुकी कृपाका अवलम्बनकर तीव्र पुरुपार्थका प्रयोग करना पड़ता है, तार्किक-प्रकृति-विशिष्ट तथा साधनहीन पुरुपोंके सामने उस रहस्यकी आलोचना करना उचित नहीं है। वहाँ इस आलोचनाका यथार्थ फल उत्पन्न नहीं हो सकता।

इन्हीं दो बातोंको सामने रखकर मैं यथासम्भव संक्षेपमें अथ च

विशदरूपमे इन चारो प्रश्नोकी आलोचना करनेमे प्रवृत्त होता हूँ।

(१)

पहला प्रश्न यह है कि—'हम ईश्वरमे विश्वास क्यो करे ?' इसका उत्तर देनेके पूर्व मेरा कहना है कि जिन सब वस्तुओकी सत्ता तथा क्रियाको हम अनेको कारणोसे लौकिक दृष्टिसे स्वीकार करनेके लिये वाध्य होते है, उनके विषयमे हमारे हृदयमे विश्वासकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? यहाँ 'विश्वास' शब्दसे प्रश्नकर्ताका क्या उद्देश्य हे, यह वही जाने, परतु यह निश्चित है कि जिसे विश्वास कहा जाता है उसकी दो विशेष अवस्थाएँ है। इन्ही दोनो अवस्थाओका विश्लेषण करनेसे ही विश्वासके कारणके सम्बन्धकी धारणा बहुत कुछ स्पष्ट हो जायगी। आप्त पुरुपोके मुखसे कोई बात सुनकर एव उसके विचार करनेकी शक्ति न रहनेपर अथवा उसके सम्बन्धमें कोई प्रवृत्ति न होनेपर, वह आप्त-वाक्य सत्य है, ऐसी धारणा स्वभावत ही मनमे उत्पन्न होती है। वाल्यकालमे जब बूढी दादी या दादाजीके मुखसे अनोखी-अनोखी कहानियाँ सुनता था, जब हृदय सरल था तथा सासारिक संस्कार विशेषरूपसे चित्तमे संचित नहीं हुए थे, उस समय कल्पनाके बलसे मनश्चक्षुके सामने उन सारी कहानियोमे वर्णन किये हुए दृश्य मानो जीवितरूपमे आँखोके सामने आ जाते थे। उस समय लौकिक ज्ञान तथा युक्तिका विकास वैसा न होनेके कारण सम्भव या असम्भवका निर्णय नहीं कर पाता था। फलत कोई भी वात मनमें असम्भव नहीं जान पडती थी। जब दादी कहती—अमुक वृक्षपर भूत रहता है, उसे सुनकर सचमुच ही सध्याके समय अथवा शून्य रात्रिमें उस स्थानके पास होकर जानेमें शरीर काँप उठता था, भूत है इस बातको सुनते ही सचमुच ही भूतकी सत्तामें विश्वास उत्पन्न हो जाता, युक्तिकी

आवश्यकता अपेक्षित न होती और न मनमें वैसी प्रवृत्ति ही उत्पन्न होती। वहुतेरे इसे अन्धविश्वासके नामसे पुकारेंगे; परंतु मेरा कथन यह है कि उपर्युक्त दोनों दृष्टान्तोंसे यही बात समझमे आती है कि मनुष्यकी ऐसी एक अवस्था है, जब शब्दश्रवण करते ही अर्थबोधके साथ-साथ शब्दके प्रतिपाद्य विषयके सम्बन्धमें मनमे दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह विषय वहुत ही जटिल है; यहाँतक कि अन्तर्दृष्टिसम्पन्न मनस्तत्त्व-वेत्ताओंको भी यह सहज ही हृदयङ्गम होनेका नहीं। तथापि सभी इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि इसको समझनेमें किसीको कोई कष्ट नहीं होता। यह जो सरल और स्वच्छ हृदयकी बात कही गयी है, इसका उत्कर्ष किसी व्यक्तिविशेषमें इतना अधिक रह सकता है कि किसी विषयमें वाक्य-उच्चारणके साथ-ही-साथ उसके चित्तमे उसी विषयका दृश्यरूपमें तत्काल ही आविर्भाव हो जाता है। कृत्रिम नख-दर्पणादि प्रक्रियामें, बालककी दृष्टिके सामने शुद्ध शब्द उच्चारण करके इच्छानुसार दृश्य या वस्तु प्रकाशित की जा सकती है; इसका भी मूल कारण यही है। वेदान्तके ग्रन्थोंकी आलोचना करनेपर देखा जाता है कि शास्त्रोंमें वाक्य या शब्दसे अपरोक्षज्ञान किस प्रकार उद्भूत हो सकता है? इसके विषयमें अनेक प्रकारसे विचार किया गया है। शब्द-माहात्म्यसे मनश्चक्षुके सामने शब्दबोध्य अर्थका किस प्रकार आविर्भाव होता है, यहाँ उसपर आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं। पाश्चात्त्य देशोंके विद्वानोंने उसपर यथेष्ट आलोचना की है एवं हमारे शास्त्रोंमें भी उसकी अनेक रहस्यमयी बातोंका वर्णन हुआ है। सम्मोहन-क्रियामें चालकके शब्दके इशारेसे सम्मोहित व्यक्ति कैसे-कैसे अपूर्व दृश्य देखता है, इस बातको बहुत लोग जानते होंगे।

इससे स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि चित्तके कोमल तथा

अपेक्षाकृत स्वच्छ होनेपर विश्वासका बीज सहज ही अकुरित हो जाता है। इसी कारण बालक या स्त्रियाँ जितनी आसानीसे विश्वास कर सकती ह तर्ककुशल पुरुष उतनी आसानीसे नहीं कर सकता। यह अन्ध विश्वास होनेपर भी इस प्रकारकी एक अवस्था है, इसमे सदेह नहीं।

बाल्यावस्थामे गृहमे या समाजमे, आचारमे, उपदेशमे अथवा आलोचनामे एव सज्जनोके ससर्गवश कोमल हृदयमे इस प्रकारके ईश्वर विश्वासका बीज-वपन हो सकता है। दूसरे देशोके सम्बन्धमे आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं, परतु हमारे देशमे प्राचीन कालमे शशव-कालसे ही इस प्रकार चित्तमे साधारणत ईश्वरका विश्वास बद्धमूल हो जाता था। पिता, माता एव गुरुजनोके हृदयकी वृत्तियोका प्रभाव शिशुके चित्तपर कम नही पडता हे।

यदि कोई पूछे कि 'विश्वासका कारण क्या है ?' तो इसका उत्तर यही है कि चित्तकी बालकोचित कोमलता एव स्वच्छताके ऊपर आप्तवाक्यका प्रभाव ही इस विश्वासका कारण है। यह अन्धविश्वास होता हे, इसमे सदेह नहीं, क्योकि इस विश्वासके मूलमे स्वज्ञानकी उज्ज्वल दीप्ति नही होती। केवल यही बात नहीं, यह अज्ञानके प्रदोषालोकमे ही वृद्धि एव पुष्टि प्राप्त करता है। ज्ञानके सम्यक् उदय होनेपर इस प्रकारका विश्वास यथार्थ सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित न होनेसे सदाके लिये समूल उखड जाता हे। बेजड विश्वास युक्ति ओर तर्ककी भयानकताको देखकर भयभीत हो उठता हे और सासारिक द्वन्द्वके प्रभावसे निस्तेज होकर अव्यक्त (प्रकृति) के गर्भमें विलीन हो जाता हे। जीवनके क्रमविकासकी प्रथमावस्थामे इसका उदय होनेपर भी यह पीछे वर्तमान नहीं रह सकता, परतु सभी अन्धविश्वास बेजड नहीं होते—यदि किसी ज्ञानी महापुरुषके वचनोसे शिशुके हृदयमे

विश्वासका बीज अंकुरित हो तो यह क्रमशः पुष्ट होकर पूर्ण बोधरूप परिणामको प्राप्त हो जाता है। यह विश्वास तत्काल शिशुके निज ज्ञानद्वारा प्रदीप्त न होनेपर भी वस्तुतः अज्ञानमूलक नही होता।

इस प्रकार शैशवसुलभ विश्वासका उत्कर्ष तथा उसकी महत्ता आप्तरूपमे विवेचित पुरुषके वाक्यकी यथार्थतापर ही निर्भर करती है। यदि किसी समय यह मालूम हो जाय कि जिसको आप्त समझा गया था, वह आप्त नही है तथा उसके वाक्य भी सत्य नही है, यदि किसी समय प्रत्यक्ष अथवा अनुमान आदिकी सहायतासे इस प्रकारका ज्ञान उत्पन्न हो, तो इससे यह पूर्वकालीन विश्वास उखड़ जाता है। मनुष्यके शैशवके सम्बन्धमे जो बात है, मानव-जाति अथवा समाजकी प्रारम्भिक अवस्थाके सम्बन्धमें भी वही बात होती है।

सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित विश्वासमे अनेको गुण हैं। युक्ति या तर्कके बिना ही इसकी प्रेरणासे कर्ममे सहज ही प्रवृत्ति हो जाती है। पश्चात् यथाविधि कर्मके द्वारा फलकी प्राप्ति होनेपर यह विश्वास दृढ़ और अचल रूप धारण करता है अर्थात् सरल विश्वासके द्वारा उस समय संशयादिविहीन निश्चयात्मक ज्ञानका उदय होता है। तब कुतर्क अथवा नास्तिकोके कठोर युक्तिजालसे इसकी तनिक भी हानि नहीं होती। इसी प्रकारके विश्वासके ऊपर मानव-जीवनकी अथवा मानव-समाजकी यथार्थ उन्नति निर्भर करती है; किंतु विश्वासके मूलमें यदि किसी मिथ्याका संस्तव हो तो इससे उसके द्वारा सत्य फलकी उत्पत्ति नहीं हो सकती तथा इससे यथार्थ कर्मका भी विकास नहीं होता। इस प्रकारका विश्वास कुसंस्कारोके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यह युक्ति, विचार और सत्य दर्शनके प्रखर आलोकमें, सूर्यकी किरणोके स्पर्श करनेपर मेघमालाओके समान विलीन हो जाता है। जीवन-पथमें दीर्घ कालतक

यह मनुष्यके चित्तमें स्थान प्राप्त नहीं करता या नहीं कर सकता।

विश्वासके स्वरूप एव उसकी अवस्थाका सक्षेपमे वर्णन किया गया। 'हम ईश्वरमे क्यों विश्वास करें ?' यह प्रश्न प्राथमिक विश्वासके सम्बन्धमें उठ सकता है और उस चरम विश्वासके सम्बन्धमें भी उठ सकता है, जो कर्म करते करते प्रत्यक्ष ज्ञानके उदय होनेपर हृदयमें प्रतिष्ठित होता है।

प्राथमिक विश्वाससम्बन्धी प्रश्नका उत्तर यही है कि शास्त्र, गुरुजन, अनुभूतिसम्पन्न महापुरुष सभीने ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार किया है तथा जगत्के कल्याणके लिये पुन -पुन वे उसका प्रचार भी कर गये हैं। उनके प्रामाण्य-सिद्धान्त जबतक प्रवल और प्रतिकूल प्रमाणोंके द्वारा खण्डित नहीं हो जाते, तबतक चित्तकी प्रकृतिके अनुसार उनके ऊपर विश्वास करना वहुतोंके लिये स्वाभाविक है। साधक अपनी आध्यात्मिक साधनामे यथार्थ उन्नति कर लेनेपर, किसी समय उसने जिस सरल विश्वासको सत्य समझकर ग्रहण किया था, वह वास्तविक ही सत्य है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उसे पद-पदपर मिलता रहता है। अन्तर्जीवनके मार्गपर अग्रसर होते-होते ऐसी-ऐसी अलौकिक घटनाएँ घटती हैं एव ऐसी-ऐसी असाधारण विभूतियोंके निदर्शन जीवनमें अभ्रान्त-भावसे पुन -पुन प्रत्यक्ष होते हैं, जिनसे विचारशील पुरुष अतीन्द्रिय-जगत् एव समस्त जगत्के अधिष्ठाता, किसी महाशक्तिसम्पन्न सत्ताको स्वीकार करनेके लिये वाध्य होता है। साधारण मनुष्यका जीवन प्राय साधारण पथमें ही प्रवाहित होता है और उसमें उल्लेखनीय घटना अथवा वैचित्र्य बहुत ही कम होता है, किंतु किसी महाशक्तिशाली पुरुषके सहवासमें आनेपर उसके जीवनमें ऐसी-ऐसी अद्भुत घटनाएँ घटने लगती हैं, जो साधारण मनुष्यके ज्ञान और अनुभूतिके राज्यसे

सर्वथा बाहरकी बात है। ये घटनाएँ विविध प्रकारकी होती हैं। कुछ तो केवल भावके विकासके रूपमे होती हैं, कुछ भावके साथ बाह्य जगत्से विशिष्ट सम्बन्ध रखती हुई और कुछ पूर्णतया वास्तविक जगत्के ऊपर प्रतिष्ठित होती हैं। मैं अपने वक्तव्यको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करके समझानेकी चेष्टा करता हूँ।

कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य गम्भीर रात्रिके समय अत्यन्त दूर अज्ञात देशके जनशून्य प्रान्तमे अथवा वनभूमिके बीच होकर दीर्घ-कालतक चलते-चलते क्लान्त एवं हताश होकर जीवनका भरोसा छोड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उस एकाकी पथिकका कोई साक्षी नहीं, सहायक नहीं, कोई सहारा नहीं। यहाँतक कि कुछ भी पाथेय भी नहीं है, स्थान अपरिचित है, मार्ग अज्ञात है, गन्तव्य स्थान बहुत ही दूर है और दूरतक देखनेपर कहीं कोई घर-द्वार अथवा ऐसा कोई मनुष्य नही दिखलायी पड़ता, जिसे देखकर प्राणमे उत्साहका सचार हो। वह दिनभर भटकता-भटकता क्लान्त हो रहा है, एक प्रकारसे उसे चलनेकी शक्ति भी नहीं रही है, चारों ओर रात्रिका अन्धकार फैला हुआ है, हिंस्र पशुओके आक्रमणका भी भय बना हुआ है और साथ ही भूखसे शरीर शिथिल हो रहा है। अबतक केवल स्थूल देह और स्थूल जगत्की दृष्टिसे ही मैंने अवस्थाओका वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त मानसिक तथा अन्यान्य प्रकारकी अशान्ति भी हो सकती है। इस प्रकारको अवस्थामे पड़कर उस मनुष्यको कैसी अनुभूति होती होगी, इसका सभी अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकारकी घोर विपत्तिके समयमे जब उसे आसन्न मृत्युकी कराल छाया सामने दृष्टिगोचर हो रही है, यदि वह पलक मारते ही यह देखता है कि एक दिव्य ज्योतिर्मय मूर्ति स्निग्ध करुणामय एवं प्रशान्त मुखश्रीसे युक्त उसके दृष्टि-पथमे

शून्य स्थानमे आविर्भूत होकर उसके समस्त भयको हरण कर लेती है उसे आश्वासन देती हुई कहती है—

'वत्स। तुम भयभीत क्यो हो रहे हो, देखो, सामने दीपक जल रहा है, वहाँ जाओ। तुम्हारे सारे अभाव दूर हो जायँगे। मैं तुम्हारे साथ हूँ, भयका कोई कारण नही है।' इस आश्वासनको सुनकर वह यदि देखता है कि सचमुच ही सामने पर्णकुटीमे दीपक जल रहा और वहाँ एक मनुष्य मानो उसीकी प्रतीक्षामे बैठा हुआ है। यदि वह वहाँ आश्रय पाता है, क्षुधा-निवृत्तिके लिये मनमाना भोजन पाता है, भयसे त्राण पाता है, गन्तव्य स्थानका मार्ग पाता है तथा राहका साथी पाता है तो बताइये इससे उसके हृदयमे किस प्रकारके भावोका उदय होगा? वह कितना ही नास्तिक अथवा संशयाक्रान्तचित्त क्यो न हो, उसे मस्तक नत करके यह स्वीकार करना ही पडेगा कि मनुष्यकी विचारसीमाके परे कोई लोकोत्तर शक्ति अवश्य ही है, जो असीम और मङ्गलमय है जो सदा ही मनुष्यकी अवस्थाएँ देखती रहती है तथा जो घोर विपत्तिमे परम स्नेही मित्रके समान आविर्भूत होकर उसकी रक्षा करती है। इस शक्तिको चाहे कोई ईश्वर कहे या किसी दूसरे ही नामसे पुकारे उससे मुझे यहाँ कोई मतलब नही, परतु यह एक अलौकिक शक्ति-विशेष है वह चैतन्यमय, प्रेममय एव सब प्रकारसे असाधारण है, इस बातको स्वीकार करना ही होगा। ऐसा होनेपर वस्तुत नामान्तरसे ईश्वरकी सत्ता स्वीकार कर ली गयी। हाँ, कोई स्पष्टभावसे ईश्वरके भीतर प्रविष्ट हो सकते है, और कोई न भी हो सकते है। इस प्रकारकी अनेको घटनाएँ मनुष्यके जीवनमें कभी-कभी घटती है, जो लौकिक कार्य-कारणके सम्बन्धद्वारा समझायी नही जा सकतीं एव जिनका एकमात्र लक्ष्य मनुष्यका मङ्गल-साधन होता है।

इस प्रसङ्गमे मै साधकके साधन-जीवनकी बात नही कहूँगा, क्योकि जो यथार्थ साधक है, साधन-राज्यमे प्रवेशकर अध्यात्म-पथमे चलते-चलते उनको तो भगवत्-शक्ति एव भगवत्-सत्ताके दर्शन सैकडो-हजारो बार हुआ ही करते है। जो सच्चे साधक है, वे सरल विश्वाससे प्रवृत्त होनेपर भी क्रमश ऐसी-ऐसी अभिज्ञता और शक्तियोका सचय करते रहते है, जिससे उनका भगवान्मे विश्वास केवल प्रारम्भिक अन्ध-विश्वासमे ही आबद्ध नही रहता, बल्कि इन अभिज्ञता और शक्तियोके द्वारा वह विश्वास विशेषरूपसे दृढ़ताको प्राप्त होता है।

अतएव वर्तमान जीवनकी साधनाके फलसे अथवा प्राक्तन सुकृतियोके कारण मनुष्य भगवान्की नाना विभूतियोके और करुणाके प्रत्यक्ष दर्शन कर भगवान्की कल्याणमयी सत्तामे अविचलित विश्वास करनेमे समर्थ होता है। प्राथमिक सरल विश्वासका मूल क्या है ? इसका उत्तर पहले दिया जा चुका। यथार्थ विश्वास क्यो और कैसे होता है ? इसका उत्तर भी दिया जा चुका। प्रथम विश्वासके मूलमे हृदयकी सरलता और द्वितीय विश्वासके मूलमे जीवनकी विचित्र अभिज्ञता तथा भगवत्तत्त्वसम्बन्धी नाना प्रकारके प्रत्यक्ष दर्शनकी अधिकता होती है।

परतु ससारमे सभी लोग भगवान्मे विश्वास कर सकगे, ऐसी आशा नही की जा सकती। वास्तवमे जगत्का चित्र देखनेपर समझा जा सकता है कि मनुष्यमात्रमे ही भगवद्विश्वास बीजरूपसे निहित होनेपर भी सर्वत्र समभावसे उसकी स्फूर्ति नही प्राप्त होती। इसका भी एक समय होता है। मै पहले यह बतला चुका हूँ कि शिक्षा, सस्कार, आचार, उपदेश, शास्त्र और महापुरुषोके वाक्य आदि शुद्ध चित्तमे

ही विश्वासोत्पत्तिके कारण है, परतु यहाँ भी कालका विचार अवश्य ही करना होगा। जीव जबतक स्थूल तथा अचिरस्थायी वस्तुकी प्राप्तिमें तृप्त होता है अथवा अभाव होनेपर सहायताके लिये स्थूल जगत्की ओर ही सतृष्ण दृष्टिसे देखता है, तबतक अतीन्द्रिय सत्ताकी ओर उसका लक्ष्य नही जा सकता। हमारी आकाङ्क्षाएँ यदि दृश्यमान जगत्से ही पूर्ण हो सकती हैं तो फिर उन आकाङ्क्षाओकी पूर्तिके लिये अतीन्द्रिय सत्ताकी ओर हमारी दृष्टि क्यो जायगी ? किंतु ससारचक्रमे घूमते-घूमते नाना प्रकारके भोग एव अभिज्ञताओका सचय करते-करते और नाना प्रकारकी तीव्र साधनाएँ करनेपर भी निरन्तर बाधा और प्रतिकूल घटनाओसे मनोरथ-सिद्धि न होनेके कारण जीव जैसे एक ओर क्रमश अपनी शक्तिकी क्षुद्रताका अनुभव करता है, दूसरी ओर वैसे ही सासारिक शक्तिकी अकिञ्चित् कर्ताको भी उपलक्ष्य करता रहता है। आकाङ्क्षाकी मात्रा बढते-बढते अन्तमें ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है, जब उसे ज्ञात होने लगता है कि आकाङ्क्षाकी पूर्णता जगत्की किसी भी वस्तुके द्वारा नही हो सकती। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दीर्घकालके अनुभवके बिना ऐसी अवस्था उत्पन्न नहीं हो सकती, परतु जब ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है, तब सचमुच ही जीव अपनेको निराश्रय अनुभव करता है। मनुष्यके जीवनमे इस निराश्रय भावका उदय ही एक परम पवित्र शुभ मुहूर्त है, क्योंकि इसी समयसे जगत्की ओरसे उसकी दृष्टि हट जाती है और वह जगत्के ऊपर किसी अज्ञात और अचिन्त्य शक्तिकी ओर देखता है। इसके बाद आकाङ्क्षाकी मात्रा जिस परिमाणमे घनीभूत होती है, स्वाभाविक नियमानुसार ठीक उसी परिमाणमे मनुष्यका लक्ष्य लौकिक जगत्को छोडकर एक अनन्त सत्ताके केन्द्रको स्पर्श करता है, अवश्य ही यह विधि और बोधपूर्वक

नहीं होता। जबतक मनुष्यके अहंभावकी प्रधानता तरह-तरहसे पुष्ट होती रहती है, तबतक उसके लिये अपनेको एक विराट् सत्ताके आश्रित समझना तथा उस सत्तासे अपनेको सत्तावान् समझना असम्भव है। ससारके घात-प्रतिघातसे जब अहंभाव क्रमशः भग्न हो जाता है एवं जगत्‌की असारता हृदयङ्गम होती है, तब जगत्‌के परे तथा जगत्‌के आत्मभूत ईश्वरीय शक्तिकी क्रिया तथा उसका भाव स्वयमेव प्रकट हो जाता है। इसीलिये जबतक मनुष्यका समय पूरा नहीं होता अर्थात् जबतक भोगाभिमुखी प्रवृत्ति निवृत्त होकर शान्तभावको धारण करना आरम्भ नही करती, तबतक यथार्थरूपसे उसे भगवत्-सत्तामे विश्वास नही हो सकता। श्रीमद्भगवद्गीतामें लिखा है—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके मनुष्य भगवान्‌की भक्ति करते हैं, किंतु इतना ही मात्र कहनेसे काम नहीं चल सकता; क्योकि संसारमें ऐसे कितने ही आर्त्त मनुष्य देखे जाते हैं, जो घोर विपत्तिके समय भी भगवान्‌की ओर नहीं ताकते।

इधर जिनको ज्ञानप्राप्तिकी इच्छा है अर्थात् जो जिज्ञासु हैं, वे सभी भगवान्‌की भक्ति ही करते हैं, यह भी जगत्‌का इतिहास देखकर कोई स्वीकार न करेगा। इसी प्रकार अर्थाकाङ्क्षी लोग भी सांसारिक अर्थी अर्थात् धनीकी उपासना ही किया करते हैं। अर्थलाभकी आशामे भूलकर भी वे कभी जगदीश्वरकी शरण ग्रहण नहीं करते और शुष्क ज्ञानी भी ज्ञाननिष्ठ होनेपर भी सर्व ज्ञानाधार श्रीभगवान्‌के श्रीचरणमे आत्मसमर्पण करनेमे समर्थ नहीं होते। पूर्वजन्मके सौभाग्य अथवा भगवान्‌की विशेष कृपाका सचार हुए बिना भगवान्‌की ओर चित्तके लग जानेकी आशा दुराशामात्र है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें भी '**सुकृतिनः**' इस विशेषणके द्वारा समझा दिया है कि सुकृति हुए बिना केवल आर्त्ति,

जिज्ञासा, अर्थकी आकाङ्क्षा अथवा ज्ञान-सम्पत्तिद्वारा ही चित्त भगवान्‌की ओर आकृष्ट नहीं होता।

अतएव जो भगवान्‌मे आस्था स्थापन नहीं कर सकते, उनका अभी समय पूरा नहीं हुआ है, यही समझना होगा और जिनके चित्तमे भगवद्विश्वास उत्पन्न हो गया है, उनका समय पूरा हो जानेके कारण ही आप्तवाक्य, शिक्षा, ससर्ग प्रभृति निमित्तोके अवलम्बनसे विश्वास जाग उठा है। कर्मपथमे अग्रसर होते-होते प्रत्यक्ष ज्ञानके आविर्भावमे यह विश्वास घनीभूत हो जायगा।

(२)

दूसरा प्रश्न यह है कि भगवान्‌में विश्वास नहीं करनेसे हानि क्या है ? इस प्रश्नके उत्तरमें मेरा कहना यही है कि 'यदि भगवान्‌मे विश्वास करनेका कोई आध्यात्मिक मूल्य है तो यह मानना होगा कि विश्वास न करनेसे अवश्य ही हानि होगी। परंतु बात यह है कि विश्वास जिस प्रकार बलात् उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार अविश्वास भी युक्ति या तर्कके बलसे दूर नहीं होता। पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य जब अपने अहंभावकी सीमाको देखता है और समझता है कि किसी अचिन्त्य-शक्तिके प्रतिघातसे उसका पुरुषार्थ पद-पदमें क्षुण्ण होता रहता है और जब वह यह अनुभव कर सकता है कि जिसे हम बाह्य जगत् कहते हैं, उसकी शक्ति भी परिमित और ससीम है, तब स्वभावत उसका व्याकुल चित्त विश्व ब्रह्माण्डको लाँघकर एक असीम तत्त्वकी ओर दौडता है; किंतु जबतक प्राकृतिक क्रम-विकासके नियमानुसार इस प्रकारकी अवस्था आविर्भूत नहीं होती, तबतक बलपूर्वक भगवान्‌मे विश्वास करनेकी चेष्टा निष्फल प्रयासमात्र है। यद्यपि भगवान्‌में विश्वास कर सकनेपर मङ्गल-सोपानमें पदार्पणकर धीरे-धीरे परम

मङ्गलके पथपर अग्रसर होनेका उपाय सहज ही हो जाता है तथापि जबतक यह स्वभावत ही हृदयमे उदित नहीं होता, तबतक अविश्वाससे हानि होनेपर भी उसे स्वाभाविकरूपसे नतमस्तक होकर ग्रहण करना ही पडता हे। कोई भगवान्मे विश्वास करता है और कोई नहीं करता—इन दोनो क्षेत्रोमे विचारकर देखनेपर ज्ञात होता है कि दोनो ही भगवान्के मङ्गलमय विधानके अन्तर्गत है। उनमे विश्वास न करना भी उनके नियमके वाहरकी बात नहीं है। आज जो भाग्यवश विश्वासके सोपानपर पर रखनेके अधिकारी हो रहे है, यदि उनके सुदीर्घ अतीत जीवनके इतिहासका अन्वेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि वे भी एक समय अविश्वासी थे। सब मनुष्य सृष्टिके आदिसे ही भगवान्मे विश्वासी होकर ससार-क्षेत्रमे नहीं आते। पहले उदासीनता रहती है, वही उदासीनता आगे चलकर अविश्वासमे परिणत हो जाती हे और अन्तमे वही अविश्वास विश्वासके स्वर्णालोकमे देदीप्यमान हो उठता है। जिनमे अन्तर्दृष्टि होती हे, वे मनुष्यके बाह्य आचार एव स्थूल आचरण देखकर उसके चित्तकी शुद्धताकी मात्राका निर्देश नहीं करते। वे जानते हैं कि आज जो अविश्वासी हे, वही कल अपने भोगोके पूर्ण होनेपर तथा निवृत्तिमुखी गतिका पूर्वाभास प्राप्त होनेपर—अनन्य भक्तके रूपमे उन्नत हो उठता हे। प्राचीन ईसाई-सघके इतिहासकी आलोचना करनेपर ज्ञात होता हे कि 'पाल' (Paul) एक समय ईसाइयोके घोर विद्वेषी समझे जाते थे, कालान्तरमे वे ही ईसाके अन्तरङ्ग भक्तोमे गिने जाने लगे। समस्त धर्मोके इतिहासमे बारम्बार इस प्रकारके वृत्तान्त मिलते ह।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, इससे कोई यह न समझे कि मैं अविश्वासका समर्थन कर रहा हूँ। मेरा कथन केवल यही है कि

मनुष्यके जीवनमें अविश्वासका भी एक समय निर्दिष्ट रहता ह। अविश्वास भी परिणाममे विश्वासका रूप धारण करता हे। अत वस्तुत वह हानिकारक नहीं है, किंतु जो अदूरदर्शी हैं, वे वर्तमान अवस्थाको ही एकमात्र अवस्था समझते हैं, इसीलिये वे कहते हें कि भगवान्में विश्वास नहीं करनेसे क्षति होनेकी सम्भावना हे।

सुतरा व्यापक दृष्टिसम्पन्न ज्ञानीके दिव्य नेत्रोंके सामने अविश्वासकी भी एक मर्यादा होती हे। अवश्य ही लौकिक अपूर्ण दृष्टिसे अविश्वासके दोष एव अपकार स्पष्ट ही देखनेमे आते हें।

'ईश्वरमे विश्वास न करनेसे क्या हानि होती हे ?' इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहा जा सकता हे कि परमार्थ-दृष्टिसे हानि होनेपर भी इस अविश्वासके भविष्यत्मे उन्नतिके लिये आवश्यक होनेके कारण इस हानिको वस्तुत हानि नही समझना चाहिये। भगवान्को न मानना यदि उनके माननेका ही पूर्वाङ्ग हो तो वह हानि सामयिकमात्र ह, किंतु परिणामकी दृष्टिसे वह अवश्य ही स्वीकार करनेयोग्य हे, परतु व्यावहारिक दृष्टिसे भगवान्मे अविश्वास करना घोर अनर्थका कारण है। ईसा कहते ह—

He that believeth and is baptised shall be saved but he that believeth not shall be condemned' (Aristion's Appendix Mark 16-16)

अर्थात् 'जिसके चित्तमे विश्वास उत्पन्न हो गया ह तथा जो भगवत्-शक्तिद्वारा अभिषिक्त हो गया हे, वह ससारसे उत्तीर्ण हो जायगा, परतु जो अविश्वासी हे, उसे भयकर दुर्गति भोगनी पडती है ।' गीतामे लिखा हे—'संशयात्मा विनश्यति' । इस प्रकार सभी धर्मोंमें विश्वासकी प्रशसा और अविश्वासकी निन्दा पायी जाती है। जिनको

अन्तर्जगत्‌के सूक्ष्म तत्त्व अवगत है, वे जानते है कि भाव और विषयके भेदसे चित्तकी अवस्थामे परिवर्तन होता है। जिसका चित्त जिस प्रकारके भाववाला होता है, वह उसी प्रकारका फल प्राप्त कर सकता है। जिस किसी विषयमे विश्वास किया जाय उसके साथ चित्त सम्बद्ध होता है और चित्त उसी भावसे भावित हो उठता है। ईश्वर यदि सत्य है और चित्त यदि उसपर विश्वास करके तद्‌भावसे भावित हो सके, चाहे वह विश्वास ज्ञानमूलक न हो—तो इसी विश्वासके बलसे भगवान्‌के साथ मनुष्यके चित्तका एक सम्बन्ध हो जाता है। इसके फलस्वरूप उस चित्तमे अज्ञातरूपसे भगवत्-शक्ति नाना प्रकारसे उसपर कार्य करती रहती है। सत्यमे प्रतिष्ठित विश्वासके द्वारा इसी प्रकार धीरे-धीरे पूर्ण सत्यका बोध उत्पन्न होता रहता है। भगवान्‌मे विश्वास कर सकनेपर मनुष्य उनकी आकर्षण-सीमामे पड जानेके कारण क्रमश उनके निकटवर्ती हो जाता है, फिर सांसारिक वासनाएँ उसे बॉध नहीं सकतीं। सत्य विश्वासके प्रतापसे सैकडो दोष दूर हो जाते है। इसीसे अविश्वाससे होनेवाली हानिका अनुमान किया जा सकता है। नित्य और आनन्दमय वस्तुमे विश्वास हुए बिना अमरत्व और आनन्दमय सत्तामे स्थिति होनेकी आशा दूराशामात्र है। नित्य वस्तुके साथ सम्बन्ध न होनेसे जीवको निरन्तर संसार-चक्रमें घूमना पड़ता है। भला, इससे अधिक हानि और क्या हो सकती है? विश्वासका फल अमरत्व है और अविश्वासका फल मृत्यु-राज्यकी मलिनता और अन्धकार है।

तथापि यह बात याद रखनी चाहिये कि यह लौकिक दृष्टिका ही समाधान है। दिव्य दृष्टिसे तो मृत्यु भी अमृतकी छाया होनेके कारण अमङ्गलका कहीं लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

(३)

प्रश्नकर्ताका तीसरा प्रश्न है कि 'ईश्वरके अस्तित्वमे कौन-कोनसे प्रमाण है ?' इस प्रश्नका उत्तर देनेके पूर्व यह कह देना आवश्यक जान पडता है कि सासारिक विचार-दृष्टिसे ईश्वरकी सिद्धि अथवा खण्डनमें जो कुछ युक्तियाँ दी जायँगी, उनमेसे कोई-सी भी ऐकान्तिक-रूपेण सर्वत्र गृहीत नहीं हो सकतीं ? उदयनाचार्यने अपनी 'कुसुमाञ्जलि' में नैयायिक पक्षका आलम्बन करते हुए ईश्वर-बाधक प्रमाणोका खण्डन कर ईश्वर-साधक प्रमाणोको सुचारुरूपेण प्रदर्शित किया है। उनके परवर्ती अनेक विद्वानोने उन्हीका अनुसरण करते हुए इस विषयकी आलोचना की है। उत्पलदेवने 'सिद्धित्रयी' नामक ग्रन्थके 'ईश्वर-सिद्धि' नामक अशमे तथा अभिनवगुप्ताचार्यने 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी' नामक ग्रन्थमे काश्मीर-शैव-आगमके प्रतिनिधिरूप होकर ईश्वर-तत्त्वकी आलोचना की है, यामुनाचार्य 'सिद्धित्रय' नामक ग्रन्थमे, लोकाचार्य 'तत्त्वत्रय' नामक ग्रन्थमे तथा वेदान्तदेशिकाचार्य, श्रीनिवासाचार्य प्रभृतिने अनेको स्थलोमें श्रीवैष्णवसम्प्रदायके पथको लेकर ईश्वरवादकी आलोचना की है। इस प्रकार प्रत्येक सम्प्रदायने अपने-अपने ग्रन्थोंमे अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे ईश्वर-तत्त्वकी समालोचनाके प्रसङ्गमे साधक और बाधक युक्तियोका तात्त्विक विचार किया है। पाश्चात्त्य देशमें भी अनेकों स्थलोंमें इस विषयकी बारम्बार आलोचना हुई है। प्राचीन ईसाई तथा अन्यान्य धर्मसम्बन्धी ग्रन्थोंमें, विशेषकर मध्ययुगीय Schoolmen आदिके दार्शनिक विचारपूर्ण शास्त्रीय व्याख्यात्मक ग्रन्थोंमें इस आलोचनाके नैतिक, यौक्तिक और आगमिक उपपत्तिके अनुकूल बहुतेरी बातें लिखी गयी हैं। वर्तमान समयमें भी जो मनीषी पुरुष विज्ञान-वेत्ता होते हुए भी ईश्वरके अस्तित्वमें

विश्वास रखते हैं, वे भी युक्ति-तर्कपूर्वक अपनी-अपनी धारणाके अनुसार इस विषयमें ग्रन्थ रच गये हैं।

परतु इन सब आलोचनाओको पढकर बुद्धिके परिमार्जित होनेपर भी किसीको ईश्वरमें तनिक-सा भी विश्वास बढता है या नहीं, यह सदेहका विषय है। प्रथम और द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें मैंने जो कुछ कहा है, उससे स्पष्टत समझा जा सकता है कि केवल युक्तिबलसे कोई कभी ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकता। युक्तिके सुप्रतिष्ठित होनेसे उसके द्वारा ईश्वरकी सत्ताके सम्बन्धमें एक आनुमानिक ज्ञान होता है, इसमें सदेह नहीं, किंतु युक्तिका प्रतिष्ठित होना ही कठिन है। नैयायिक जिस युक्तिद्वारा ईश्वरकी सिद्धि करते हैं, मीमासक लोग उस युक्तिको युक्तिका आभासमात्र समझते हैं। कार्य देखकर चेतन कर्ताका अनुमान करना अथवा केवल कारणमात्रका अनुमान करना, एक विवादग्रस्त विषय है। इसी प्रकार सर्वत्र देखा जाता है।

वस्तुत प्रयोगकुशल शक्तिशाली पुरुषके हाथसे अस्त्रविशेष जिस प्रकार कार्यकारी होता है, उसी प्रकार सिद्धिसम्पन्न शक्तिशाली पुरुषविशेषद्वारा प्रदर्शित युक्ति ही सार्थक होती है। जिन्होने स्वय प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति की है तथा जो दूसरोंको प्रयोजन होनेपर, अवस्था-विशेषमें सदिग्ध विषयको प्रत्यक्षरूपसे दिखला देनेकी क्षमता रखते हे, उनकी दी हुई युक्ति, युक्ति होनेपर भी दूसरोंको समझानेके लिये अधिक उपयोगी होती है। यदि ऐसा न होता तो बहुत दिन पूर्व ही विचारके द्वारा ईश्वरका अथवा अन्य किसी अतीन्द्रिय-सत्ताका रहस्य मीमासित हो जाता। सुतरा मैं ईश्वरके अस्तित्वके समर्थनमें जो युक्तियाँ उपस्थित करूँगा, उन सबको आपेक्षिक ही समझना होगा, क्योंकि अवस्था-विशेषमें वे युक्तियाँ प्रयुक्त न हो सकेंगी तथा प्रयुक्त होनेपर

भी उनकी सारवत्ता न रहेगी।

'ईश्वर' शब्दसे मेरा अभिप्राय—'ससारकी सृष्टि, स्थिति और संहारके कर्ता एव अनुग्रह और निग्रहके हेतुभूत (कारणस्वरूप) सच्चिदानन्दमय अनन्तशक्तिसमन्वित सत्ता-विशेष' से है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस सत्तामे जो शक्तियाँ निहित रहती है, उन शक्तियोंकी साम्यावस्थाको ही ईश्वरका 'ब्रह्मभाव' कहते है। वैषम्यकालमे कोई भी शक्ति प्रधान होकर इतर शक्तिको अभिभूतकर प्रकाशित हो उठती है, इससे केवल उसी शक्तिकी क्रिया दिखायी देती है, इस प्रकार पृथक्-पृथक् रूपसे सृष्टिमे अनन्त शक्तियोंकी क्रिया दृष्टिगोचर होती है। सृष्टिके अन्तमे किसी भी शक्तिकी उपलब्धि नहीं होती तथा शक्ति और शक्तिमान् अभिन्नभावसे एकरस हो प्रकाशित रहते है। ससारमे जो कुछ है अथवा होगा, सब ईश्वरसे उद्भूत है, ईश्वरमे स्थित है एव ईश्वरमे ही विलीन होता है। इसलिये जबतक जगत् है तबतक जगत्के आश्रयरूप—जिस प्रकार जलाशय तरङ्गोका आश्रय होता है, उसी प्रकार ईश्वर-सत्ताको अनुसधानपूर्वक प्रत्यक्ष करना होगा। *केवल यही नहीं, सासारिक सत्ता भी मूलत ईश्वरीय* सत्तासे अभिन्न है, इसकी भी उपलब्धि करनी होगी। प्रलयमे जगत् जिनमे विलीन हो जाता है तथा उस समय जो अवशिष्ट रहता है, उस विशुद्ध ईश्वरीय सत्ताको भी समझना होगा। जगत्की स्थितिके समय इसके सरक्षक, नियामक, दर्शक और यहाँतक भोक्तारूपमे भी ईश्वरकी सत्ता अनुसधानयोग्य है। जो कला और विद्यारूपा शक्तियाँ प्रवाहरूपमे प्रवर्तित हो *व्यावहारिक जगत्का कार्य-साधन कर रही हैं,* उनकी मूल प्रवृत्ति जहाँसे होती है—वही ईश्वर है। इस प्रकारसे भी सर्वशक्तिके अधिष्ठाताके रूपमे भी ईश्वरके अस्तित्वकी धारणा करनी होगी।

इस परिदृश्यमान जगत्की पर्यालोचना करनेसे पता लगता है कि लौकिक प्रत्यक्ष गोचर स्थूल सत्ताके अन्तरालमे एक शक्तिमयी सूक्ष्म सत्ता वर्तमान रहती है। शक्तिके बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती। जिस किसी वस्तुमे क्रिया हो, उसके मूलमे शक्तिकी प्रेरणा रहती है, इस बातको मानना ही होगा। किसी कौशलसे शक्तिका निरोध कर सकनेपर उसके फलस्वरूप क्रिया भी निवृत्त हो जाती है। मनुष्यके शरीरमे दर्शन, श्रवण प्रभृति क्रियाएँ अथवा ग्रहण, गमन, उत्सर्ग आदि क्रियाएँ निरन्तर हो रही हैं। इन सब क्रियाओके मूलमे एक शक्ति है, इसमे कोई संदेह नहीं। इसी प्रकार बाह्य जगत्मे वायुका संचालन, मेघका गर्जन, विद्युत्की दीप्ति इत्यादि नाना प्रकारकी क्रियाएँ दीख पडती हैं। जब क्रियाके द्वारा ही शक्तिका अनुमान होता है, तब विभिन्न क्रियाओंके पार्थक्यसे शक्तिके पार्थक्यको भी स्वीकार करना पड़ता है; किंतु जिन लोगोने जड विज्ञानकी दृष्टिसे शक्ति-तत्त्वकी आलोचना की है, वे जानते है कि एक जातीय शक्तिसे अन्य जातीय शक्तिका आविर्भाव होता है। शक्तियाँ केवल परस्पर सम्बन्धित हैं ऐसी बात नहीं है, उनके मूलमें एकके सिवा दूसरी शक्तिका पता नहीं लगता। एक ही महाशक्ति आधार-भेदसे भिन्न-भिन्न शक्तिरूपमें प्रकाशित हो भिन्न-भिन्न कार्य करती है—

'एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥'

चण्डीका यह महावचन बीसवीं शताब्दीके विज्ञानको भी सिर झुकाकर स्वीकार करना पड़ता है।

किंतु इस शक्तिका स्वरूप क्या है? कहना नहीं होगा कि इस सम्बन्धमें विज्ञान अबतक कुछ भी समाधान नहीं कर सका है। शक्तिके अखण्ड रूपके विज्ञानके दृष्टिगत होनेमे अभी देर है, किंतु उसके

परिच्छिन्न रूपके सम्बन्धमें वैज्ञानिक जगत्में यथेष्ट गवेषणा हो चुकी है। सिद्धान्त यह कि शक्ति ही घनीभूत होकर भौतिक सत्ताके रूपमे आविर्भूत होती है, तब उससे ऐसे अनेको धर्मोका विकास होता है, जिनका अस्तित्व विशुद्ध शक्तिकी अवस्थामे खोजनेपर भी नहीं मिलता। वस्तुत भौतिकरूप नियन्त्रित अथवा बद्ध अवस्थामात्र है, क्योकि शक्तिको यन्त्रद्वारा बद्ध न कर सकनेपर उससे स्थूलभावका विकास सम्भव नहीं है। दूसरे प्रकारसे इस बन्धनको मुक्त कर देनेपर अर्थात् स्थूलभावसे स्थूलत्वको हटा लेनेपर सत्ता विशुद्ध शक्तिके रूपमें ही पर्यवसित हो जाती है। अतएव शक्ति और भौतिक सत्ता, अवस्थागत भेद रहनेपर भी वास्तवमे अद्वैत है। शक्तिकी इस नियन्त्रित अवस्थाको सृष्टिमे हम निरन्तर सर्वत्र देख रहे हैं। विशुद्ध शक्तिके स्वरूपको साधारणत कोई प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। कोई शक्तिशाली पुरुष यदि उसे दिखला भी दे तो साधारण जीव उसके तेजको सहन नहीं कर सकता। सासारिक क्रिया, परिणाम-विपाक प्रभृति व्यापारोसे साधारण मनुष्य केवल शक्तिका अनुमान कर सकते हैं। इससे अधिक अग्रसर होनेका अधिकार साधारण मनुष्योको तो है ही नहीं, जड विज्ञानवादी वैज्ञानिकोको भी नहीं होता। जो लोग विचारशील एव कर्मी हैं, अर्थात् जो लोग केवल प्रवाहके साथ न बहकर अपने विवेक और विचारके आश्रयसे दृश्यमान वस्तुके सूक्ष्म तत्त्वको ढूँढ निकालनेके लिये उद्यमशील हैं, उन्हें यह स्वीकार करना ही होगा कि इस स्थूल सासारिक अवस्थाके अन्तरालमें एक विराट् शक्तिमय अवस्था है। आस्तिक और नास्तिक, ईश्वरके विश्वासी और अविश्वासी सभीको यह स्वीकार करना होगा, किंतु प्रश्न यह है कि इस शक्तिका स्वरूप क्या है ? यह शक्ति चेतन है या जड, इसका विवेचन करनेके पहले यह देखना

होगा कि इसके साथ मानवीय इच्छाशक्तिका कोई सम्बन्ध है या नहीं ? क्योंकि इच्छाको मध्यभूमिमें न रख सकनेसे एक ओर ज्ञान और दूसरी ओर क्रियाका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। क्रियासे केवल शक्तिका अनुमान किया जा सकता है, किंतु वह शक्ति यदि इच्छारूपा न हो तो उससे ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता। वैसे ही ज्ञानसे इच्छाका विकास किस प्रकार होता है, इसे न जाननेसे तथा इच्छाकी शक्तिके रूपमे उपलब्ध न होनेसे उससे क्रियाकी उत्पत्ति होना युक्तिद्वारा नहीं समझाया जा सकता। जिस विराट् महाशक्तिके क्षुद्रतम अंशके प्रभावसे विशाल जगत्‌की अनन्त प्रकारकी क्रियाएँ निष्पन्न होती है, उसके साथ इच्छा-शक्तिका क्या सम्बन्ध है; यही मर्वप्रथम विचारणीय है।

साधारण दृष्टिसे सांसारिक क्रिया-कलापको इच्छाकृत एवं अनिच्छा-कृत—इन दो भागोमे विभक्त किया जा सकता है। इच्छासे जो कार्य निष्पन्न होता है, वह इच्छाकृत कार्य तथा उससे भिन्न सभी कार्य अनिच्छाकृत एवं स्वाभाविक होते हैं। मनुष्यके देहमे जो यान्त्रिक क्रियाएँ होती हैं, उनमेसे अधिकांश ही इच्छापूर्वक नहीं होती।

किन्तु इस बातको बहुत लोग जानते हैं कि ये सारी अनैच्छिक क्रियाएँ भी विशेष चेष्टा और कौशलके द्वारा दीर्घकालमे इच्छाके अधीन हो सकती हैं। अतएव दैहिक क्रियाओमेंसे जो साधारणतः इच्छाधीन नहीं होतीं, वे भी कालक्रमसे इच्छाधीन हो सकती हैं। इससे स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि मनुष्यकी इच्छाशक्ति यदि उस प्रकारसे परिचालित एवं परिशोधित हो तो उससे देहकी समस्त क्रियाओंको नियन्त्रित किया जा सकता है। जब इच्छाद्वारा किसी भी कार्यकी प्रवृत्ति, निवृत्ति अथवा परिवर्तन सम्भव है, तब फिर यह स्वीकार किये बिना

नहीं चल सकता कि इच्छा ही क्रिया अथवा कार्यका मूल है। अवश्य ही यह दैहिक क्रियाके विषयमें कहा गया है, किन्तु यदि बाह्य क्रियाका भी इस प्रकार व्यक्ति-विशेषकी इच्छाद्वारा नियन्त्रित किया जाना सम्भव हो तो बाह्य क्रियाके मूलमें भी इच्छाशक्ति है, इसमें सदेह नहीं रह जाता। इस इच्छाशक्तिकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं है। इसलिये इससे जितनी बाह्य क्रियाएँ निष्पन्न होती हैं, वे भी सब क्षेत्रोमे एक-सी नहीं होतीं, अर्थात् यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इच्छाशक्तिकी तीव्रता सर्वत्र एक-सी ही होती है। अतएव जिस शक्तिसे बाह्य-जगत् एव अन्तर्जगत्मे सब प्रकारकी क्रियाएँ निष्पन्न होती हें, वह इच्छास्वरूप ही है, यही हमारा प्रतिपाद्य सिद्धान्त है। जिन जड-शक्तियोसे हम परिचित हैं, वस्तुत वे सभी केवल इच्छाशक्तिकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं। ऐसा न होता तो उन शक्तियोके विपरीत इच्छाशक्ति कार्य न कर सकती। मध्याकर्पणशक्ति, वैद्युतिक-शक्ति, आणविक आकर्पण और विकर्पण-शक्ति—ये समस्त शक्तियाँ विशुद्ध ओर सयत इच्छाके द्वारा अधीन हो सकती हैं। कहनेकी आवश्यकता नही कि आविर्भूत इच्छाकी मात्राकी अपेक्षा जिन शक्तियोंकी मात्रा कम होती है, वे अधिक इच्छाके द्वारा अभिभूत होती हैं। एव जिनकी मात्रा अधिक होती है, वे प्रवल होनेके कारण इच्छाको अभिभूत कर रखती हैं। प्राक्तन इच्छा ही वर्तमानकालमें जड-शक्तिके रूपमें प्रकटित होती हे। वर्तमान इच्छा प्राक्तन इच्छाकी विरोधी होनेके कारण जब प्रवल होती हे, तब प्राक्तन इच्छा स्वयमेव अभिभूत हो जाती है। जड-शक्तिका ही दूसरा नाम अदृष्ट है एव इच्छाशक्तिका दूसरा नाम पुरुपार्थ है। वस्तुत इन दोनों शक्तियोंमें कोई भेद नहीं। वोध-क्षेत्रमें शक्तिका प्रकाश होनेसे यही इच्छा अथवा पुरुपार्थके रूपमें अभिव्यक्त होती है। दूसरी

ओर अबोध-भूमिमे अर्थात् बोध-राज्यके तलदेशसे यदि शक्तिका विकास होता है तो उसीको अदृष्ट या जड-शक्ति समझना चाहिये; वस्तुत दोनो शक्तियाँ एक ही हैं।

जब हमारे परिचित ज्ञानका आलोक क्रमश. अधिकतर विशुद्ध होकर निर्मल प्रकाशके रूपमे परिणत होता है, तब जान पड़ता है कि बोधराज्यके तलदेशमे भी बोध रहता है; अर्थात् तब ज्ञानके विस्तारकी सीमा अनन्त हो जानेके कारण अज्ञानकी सत्ता कहीं ढूँढ़े नहीं मिलती। तब जान पडता है कि सभी शक्तियाँ शुद्ध बोधमय क्षेत्रसे उठती हैं। अतएव 'अभिव्यक्त शक्तिमात्र ही इच्छा-स्वरूपा है। यही विराट् महाशक्ति, जिसे इच्छाशक्ति या ऐश्वरिक शक्तिके रूपसे वर्णन किया गया है, आगम शास्त्रोंमें जगदम्बा अथवा जगत्प्रसूतिके नामसे वर्णित हुई है। शिवसूत्रकार कहते हैं—

'इच्छाशक्तिरुमा कुमारी।'

ससारका मूलकारण अभीतक वैज्ञानिकोके दृष्टिपथमें यथार्थ-रूपसे नहीं आया है। आया होता तो इस कारणरूपा शक्तिको वे इच्छाके रूपमें पहचान सकते, एवं अपनी इच्छाके साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध आविष्कार कर चिन्मयधाम अथवा बोध-राज्यमे जानेका यथार्थ मार्ग प्राप्त करते। शक्तिको इच्छास्वरूपा न जाननेके कारण वे जगत्-कार्यके मूलमें चैतन्यकी सत्ताका आविष्कार नहीं कर पाते हैं। शक्ति इच्छामयी है या नहीं ? इसके जाननेका एकमात्र उपाय यही है कि जिसे हम इच्छा कहते हैं, उसे विशुद्ध और संयत करके उसके द्वारा सांसारिक शक्तिके ऊपर प्रभाव विस्तार किया जा सकता है या नहीं, इसकी परीक्षा करना इच्छाके स्फुरणसे यदि बाह्य-शक्ति स्तम्भित होती

है अथवा निरुद्ध शक्ति उद्रिक्त होती है तो इससे सिद्ध होता है कि एक ओर जैसे बाह्य-शक्ति इच्छामयी है वैसे ही दूसरी ओर इच्छा भी शक्तिरूपा है। इच्छाके द्वारा अन्त आंशिकरूपमे जो बाह्य-शक्तिके ऊपर क्रिया की जाती है, यह वर्तमानकालके वैज्ञानिकोको अज्ञात नहीं है। जो योगी अथवा उच्चकोटिके साधक है, वे तो इच्छामात्रसे ही किसी भी शक्तिका चाहे जिस प्रकार उपयोग करनेमे समर्थ हैं, जगत्मे इसके अनेको दृष्टान्त मिलते है।

पूर्वोक्त आलोचनासे समझमे आ गया होगा कि इच्छा और शक्ति मूलत अभिन्न पदार्थ है, एव इनके मूलमे चैतन्यमय प्रकाश नित्यसिद्ध सत्ता अथवा पराशक्तिके रूपमे जाग्रत् है। जिस चैतन्यरूपा अखण्ड सत्तासे बात-विक्षुब्ध समुद्रके वक्ष स्थलपर तरगोके उद्गमकी भाँति स्वभावकी प्रेरणासे इच्छामयी शक्तिका आविर्भाव होता है तथा इच्छाके द्वारा क्रमसृष्टिके नियमानुसार क्रियाका विकास होता हे, वही 'ईश्वर' पदवाच्य वस्तु है। इच्छारूपा शक्ति कभी उसमे अन्तर्लीन होकर वर्तमान रहती है और कभी उन्मेषको प्राप्त होकर बाह्य-गति सम्पादन करते हुए प्रपञ्च-सृष्टिकी सूचना करती हे। जड जगत्से चिन्मय ईश्वर-सत्ताको प्राप्त होनेके लिये मध्यवर्ती-शक्ति अथवा इच्छा-भूमिसे होकर ही जाना होगा। विज्ञान-जगत्में जब इस शक्तिका स्वरूप कुछ यथार्थरूपमें प्रकाशित होगा, तब उससे मौलिक चित्सत्ताके सम्बन्धमें उन्हे (वैज्ञानिकोंको) अनुमान करनेका अवसर मिलेगा। अप्रतिहत इच्छा अथवा शक्तिका चैतन्यमय आधार ही ईश्वर है।

सूक्ष्मदृष्टिसे जगत्के कार्य-कारण-प्रवाहकी पर्यालोचना करनेपर ज्ञात हो जाता है कि बिना कारणके कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। केवल यही बात नहीं, बल्कि कार्य और कारणकी मात्राका समान होना भी

अवश्यम्भावी है। किसी प्रकारके कार्यका तत्त्व समझते समय इस नीतिको स्मरण रखना आवश्यक है। प्राच्य दार्शनिकोंने इसी नीतिका अवलम्बन कर कर्मवादकी स्थापना की है। कर्मवादका तात्पर्य स्थूलरूपेण यही है कि कर्मकी प्रकृति और मात्राके अनुसार तज्जनित फलका आविर्भाव होता है। अतएव कर्मद्वारा जिस प्रकार फलका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार फलके द्वारा भी कर्मका अनुमान किया जा सकता है। प्राणिजगत्मे सुख-दुःखकी विचित्र लीलाको देख उसके कारणका अन्वेषण करनेपर कर्मकी इस विशेषताको स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। सुख-दु खरूप फल जिस असाधारण कारणसे उत्पन्न होता है, उसे ही कर्म अथवा अदृष्ट सस्कार कहते हैं। इससे कोई यह न समझे कि बाह्य-जगत्मे कोई सत्ता सुख-दु खका कारण नहीं है। यथार्थ बात तो यह है कि प्रत्येक कार्य अनेको कारणोसे उत्पन्न होता है। उनमेसे अधिकाश ही साधारण कारण होते हैं और कुछ असाधारण होते है। साधारण कारणोके समूह समभावसे उपस्थित रहनेपर भी असाधारण कारणके बिना निर्दिष्ट कार्य सम्पन्न नहीं होता, क्योंकि यही इस कार्यका मुख्य कारण है, यह सच है कि सुख-दु खके अनेको लौकिक कारण होते हैं, किंतु उनके सुख-दु ख उत्पन्न नहीं हो सकते। इसके लिये किसी असाधारण कारणकी सहकारिता आवश्यक है। इसीको दार्शनिक लोग 'कर्म' नामसे निर्देश करते है। जो सुख-दु ख भोगता है, सुख-दु खके असाधारण कारण अथवा कर्मका उसीमें रहना युक्तिसगत है। नहीं तो कार्य और कारणका वैयधिकरण्यदोष आ पडेगा। एक आदमी कर्म करे और दूसरा उसका फलभोग करे, यह कार्य-कारण-शृङ्खलासे नियन्त्रित भौतिक जगत्में सम्भव नहीं हो सकता। जो अग्निमें हाथ डालता है, उसीका हाथ जलता है, दूसरेका

नहीं। इसी प्रकार जो कर्ता होकर सत्-असत्-कर्मका अनुष्ठान करता है, उसीको भोक्ता बनकर अपने सुख-दु खरूप फलका अनुभव करना होता है, दूसरेको नही। इसीलिये भोगकी सामग्री उपस्थित रहनेपर भी भोग-साधक कर्मके अभावमे बहुतोके भाग्यमें इच्छानुरूप भोग-सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती। फिर बहुधा देखा जाता है कि बिना चेष्टाके, बिना प्रयासके यहाँतक कि इच्छा और ज्ञानके अभावमे भी, बहुतोको आशातीत भोग्य वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। बीजके बोये बिना जैसे वृक्ष नही उगता, उसी प्रकार पूर्वकर्म न होनेसे सुख-दु खकी उत्पत्ति नही होती। यह जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड असख्य प्रकारके जीवोको वक्ष स्थलपर धारण करके काल-स्रोतमे बहते चले जा रहे है तथा उनके सामने अनेक प्रकारके सुख-दु ख उपस्थित करते ह, इनके पीछे एक विशाल कर्मशक्ति अनन्त प्रकारकी विचित्रताको साथ लिये वर्तमान है।

कर्मसे ही फल होता है यह ठीक है, किंतु अचेतन कर्म केवल जड-शक्ति है, वह किसी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, चेतन्य सत्ताके सान्निध्य ओर प्रेरणाके बिना कभी परिचालित नहीं हो सकती। लौकिक जगत्में भी जड-शक्तिका स्वातन्त्र्य कहीं उपलब्ध नहीं होता। पीछे कर्ता न हो तो करण या यन्त्र स्वयमेव किसी कार्यमे प्रवृत्त या निवृत्त नही हो सकते। जड-शक्ति केवल कारण या यन्त्रमात्र है, इसे सभी जानते है। यह सत्य है कि अग्निमे दाहिका-शक्ति होती है ओर यह भी सत्य है कि वह स्वधर्मसे ही दाह्यवस्तुको दग्ध करती है, किंतु किसी निर्दिष्ट वस्तुको दग्ध करनेमें अग्निके लिये एक चेतन पुरुषकी आवश्यकता होती है। अग्नि अपने-आप स्वत प्रेरित होकर किसी निर्दिष्ट वस्तुको नहीं जला सकती। कर्म-शक्ति भी इसी प्रकार अग्निके समान जड-शक्ति है,

इसीसे स्वाभाविक नियमानुसार सुख-दु.ख उत्पन्न होता है। अवश्य ही, जिस आधारपर कर्म संचित होते हैं, सुख-दु.खके भोग भी उसी आधारसे होते हैं, इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं; किंतु स्वभावके नियमानुसार फलके उत्पन्न होनेपर भी उसका भोग्यरूपमे आविर्भाव होना किसी प्रबलतर शक्तिद्वारा नियमित होता है, अर्थात् कर्मसे ही फल होनेपर भी उसको व्यवहार-क्षेत्रमे लानेके लिये किसी इच्छाशक्ति-सम्पन्न प्रबल सत्ताकी प्रेरणा आवश्यक है। जगत्‌के अन्तर्यामीरूपमे जिन व्यापक आत्मा अथवा चैतन्य इच्छाशक्तिका एकमात्र अधिष्ठान है। उनके संकल्पसे ही जीव कर्मानुसार फल प्राप्त करता है। वही कर्मके साक्षी और भोगके साक्षी हैं एवं उन्हींके ईक्षणके वश कर्म भोगरूपमे परिणत हो भोक्ताके निकट उपस्थित होता है। इसीलिये उनको भोक्ताका कर्म-फल-दाता कहा जाता है। कर्मशक्तिके पीछे जो उसको प्रेरित करनेवाली यह चैतन्यसत्ता कार्य करती है, यही ईश्वर है।

जीव जो कर्म करता है, उसके मूलमें भी ईश्वर-सत्ता है एव वह जो फलभोग करता है, उसके भी मूलमे वही ईश्वर-सत्ता है। मूलमे इस विशुद्ध चैतन्यभावके न रहनेसे एक ओर जहाँ कर्म सम्भव नही होता, दूसरी ओर उसी प्रकार फल भी नहीं हो सकता।

इस सत्ताकी प्रेरणा किस प्रकारकी है; इसे दृष्टान्तद्वारा दिखाया जाता है। जिस प्रकार सूर्यके आलोकमे आँखवाला पुरुष नाना प्रकारके रंगोंको देखता है, इस देखनेके मूलमे कारणरूपमे दृश्य वस्तुओंका वैचित्र्य रहती है एवं द्रष्टाकी दृक्‌शक्ति भी रहती है; परंतु इनके होनेपर भी इस प्रकार विचित्र रंग न दीख पडते, यदि दृश्य वस्तु उज्ज्वल आलोकसे आलोकित न होती। इसी प्रकार जीव जो कर्म करते हैं उसका फल भी वे भोगते हैं, तथापि ईश्वरकी चैतन्य सत्तामें प्रतिष्ठित

न होनेसे कर्म और भोग दोनों ही असम्भव होते। जो ईश्वरको न मानकर केवल कर्मसे ही फलकी उत्पत्ति मानते हैं, उनके लिये भोगमे वैचित्र्यको सिद्ध करना अत्यन्त कठिन है।

जगत्मे अलङ्घ्य कार्य-कारण-भाव अथवा नियतिको देखकर उसके अधिष्ठाताके रूपमें जिस सत्ताको स्वीकार करना अनिवार्य होता है, वही ईश्वर है। जिन्होने जगत्के तत्त्वका जितना ही सूक्ष्मभावसे विश्लेषण किया है, वे उतना ही स्पष्टरूपसे समझ सके हैं कि जगत्के प्रत्येक विभागमे नियम वर्तमान रहता है। यह नियम अत्यन्त जटिल और दुर्बोध है, तथापि एक भागके नियमके साथ दूसरे विभागके नियमोका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, जिससे जान पडता है कि मूलमे एक ही नियम क्षेत्रभेदसे भिन्न-भिन्न नियमोके रूपमे परिणत हो गया है। समस्त जगत्मे तथा ज्ञान-राज्यमे इस नियमगत ऐक्यका आविष्कार ही विज्ञानकी चरम कीर्ति है। विशाल और वैचित्र्यपूर्ण भिन्न-भिन्न ज्ञानराज्यमें एक ही मूल नियमकी सत्ता एव प्रभावको देखकर प्रत्येक विचारशील व्यक्तिकी धारणा होती है कि अनन्त प्रकारके सासारिक वैचित्र्यके पीछे एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हे। उसी सत्तासे जब नियमोका उद्भव होता है, तब वह स्वीकार करना ही पडता है कि वह चेतन है तथा वही जगत्को एकमात्र नियामक हे। अतएव जो नियम-वादी हैं, उन्हें भी नामान्तरसे ईश्वरकी सत्ताको माननेके लिये बाध्य होना पडता है। हाँ, तर्कस्थलमें यह कहा जा सकता है कि नियमके साथ नियामकका होना आवश्यक हे, ऐसी कोई बात नहीं, क्योंकि यदि नियमको अनादिरूपसे स्वीकार करें तथा वह यदि सचमुच ही अलङ्घ्यरूपमें प्रमाणित हो जाय तो नियमके कर्ता या प्रवर्तयिताके रूपमें नियामकके माननेकी आवश्यकता नहीं रहती। यह शङ्का

निराधार भी नहीं है। यथार्थ बात यह है कि जिसे अनादि और अपरिवर्तनीय समझा जाता है, वास्तवमे नियम वैसा नहीं है। साधारण ज्ञानसे नियमका आदि अथवा व्यतिक्रम चाहे अनुभवमे न आवे, किंतु ज्ञानकी निर्मलताके साथ-साथ क्रमशः समझमे आने लगता है कि नियमका आदि है तथा उसका रूपान्तर भी सम्भव है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस अवस्थामे नियमका नियमत्व ही खण्डित हो जाता है। जो इसकी उपलब्धि कर सकते हैं, उनकी समझमे आ सकता है कि बद्ध जीवके लिये जो नियम है वह अधिकारी पुरुषके लिये स्वाधीन इच्छाकी स्फूर्तिमात्र है। जिस अधिकारी पुरुषकी इच्छा सासारिक नियमके रूपमे आत्म-प्रकाश करती है वही जगत्का ईश्वर है। जड-विज्ञान केवल नियमकी सत्ताको ही उपलब्ध कर सकता है, किंतु जिनकी इच्छा इस नियमके रूपमें प्रकाशित होती है, उनका पता उसे नही रहता। नियमको अनादिरूपमे स्वीकार करनेका कारण यही है कि इच्छाविशेषके प्रभावसे नियमका आदि और अन्त दोनों स्थल-विशेषमे उपलब्ध हो सकते हैं। अनादि एवं अखण्डनीय भावके ऊपर इच्छाशक्ति अथवा अन्य कोई शक्ति कार्य नहीं कर सकती। हाँ, लौकिक दृष्टिसे नियमका अनादित्व अथवा अलङ्घनीयत्व दोनो स्वीकार किये जा सकते हैं।

जो लोग जिज्ञासुभावसे जगत्के इतिहासका अनुसधान करते हैं, वे जानते हैं कि सांसारिक दृष्टिसे ज्ञानशक्ति अथवा क्रियाशक्ति किसीके भी क्रमिक उत्कर्षकी अवधि दृष्टिगत नहीं होती। शक्ति वस्तुतः अव्यक्त होनेपर भी आधार-विशेषके अवलम्बनसे अभिव्यक्त होती है तथा निर्दिष्ट कार्य करती है। आधार सर्वत्र एक प्रकारका नहीं होता, अतः शक्तिका विकास भी सर्वत्र समानरूपसे नहीं हो सकता। जो आचार

जितना निर्मल होता है, जिसकी धारणशक्ति जितनी अधिक होती है, उसमे उसी हिसाबसे शक्तिका विकास होता है। अवश्य ही हम किसी निर्दिष्ट शक्तिके सम्बन्धमे यह बात नहीं करते। ज्ञान और क्रिया, दोनों क्षेत्रोमे एक ही नियम है, किंतु दोनोंके आधारमे विशेपता होती है, यही इनमे भेद होता है। अव्यक्त ज्ञान-शक्ति जैसे अनन्त है, वैसे ही अव्यक्त क्रियाशक्ति भी अनन्त है। जिसकी अभिव्यक्ति नहीं, उसका प्रतिबन्धक भी नही होता और उससे कोई कार्य भी निष्पन्न नहीं होता। अतएव क्रिया-सम्पादनमे समर्थ अभिव्यक्ति ज्ञान अथवा क्रियाशक्तिका उत्कर्ष आधारके उत्कर्षके ऊपर ही निर्भर करता है। आधार यदि मलिन और आवरणसे आच्छन्न हो तो शक्तिका विकास भी अच्छी तरह नहीं हो सकेगा। आवरणके दूर होनेपर शक्तिकी अभिव्यक्तिमे विघ्न हट जाते हैं। अत आवरणशून्य और बाह्य सत्ताके सम्बन्धसे शून्य विशुद्ध उपादानमे जो ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्तिका प्रकाश होता है, वह अपरिच्छिन्न, अप्रतिहत और अनन्त होता है। वस्तुत यह ईश्वरका ही नामान्तर है। जीवमात्रके भीतर ज्ञान और क्रिया कुछ-न-कुछ अवश्य ही प्रकाशित रहती है। ऐसा न होता तो चेतन जीव जडसे पृथक् नहीं हो सकता। यही ज्ञान-क्रिया क्रमश बढते-बढते आधार-विशेपमें पूर्णरूपसे प्रकाशित हो उठती है। शास्त्रमें शुद्ध आधारमें अभिव्यक्त इस पूर्ण ज्ञान-क्रिया अथवा चैतन्यका ही ईश्वर-नामसे वर्णन किया गया है।

अलौकिक पर प्राकृतिक घटनाओंका अनुसधानपूर्वक सग्रह करके जो तत्त्व निर्णय करनेका प्रयास करते हैं, उन्हें मालूम होता है कि बहुधा सुदूर अतीतकालकी अथवा देशान्तरमें हुई घटना और दृश्यके समान कभी कभी अनागत घटना तथा दृश्य किसी-किसीको प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इस प्रकारकी घटनाएँ विरली नहीं होतीं। इस प्रसङ्गमें ऐसी

घटनाओका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है, परंतु सचमुच ऐसी बातें होती हैं, इसका समर्थन अनेको प्रकारसे किया गया है। इसके तत्त्वकी आलोचना करनेमे हृदय विह्वल हो उठता है। जो दृश्य अबतक सृष्टिके राज्यमे आविर्भूत नहीं हुए, जो घटना अभीतक कहीं नहीं घटी, यदि इस प्रकारके दृश्य अथवा घटनाएँ—जो सांसारिक दृष्टिसे बहुत समय पीछे आविर्भूत होनेवाली हैं—अभी स्पष्टरूपसे तथा यथार्थ-रूपसे प्रत्यक्ष हो जायँ तो कोई भी विचारशील व्यक्ति इनके तत्त्वकी मीमांसा नहीं कर सकेगा और मोहित हो जायगा। यथार्थत· जिसकी सत्ता ही नहीं है—व्यावहारिक भावसे ही नही, बल्कि प्रतिभासरूपमे भी जो नहीं है, वह वर्तमान ज्ञानमे किस प्रकार आ सकता है, यह जानना अत्यन्त कठिन है। अतीत ज्ञानके सम्बन्धमें व्यक्तिगतभावसे यह बात इतनी जटिल नहीं है, क्योकि चित्तमे अनुभूत ज्ञान और क्रियाके सस्कारको स्वीकार करने तथा निमित्त-कारणकी सहकारितासे उसके उद्बोधनको मान लेनेपर अतीतका साक्षात्कार तो बहुत कुछ बोधगम्य हो सकता है। अवश्य ही विश्वव्यापकरूपमे अतीतका ज्ञान व्यापक आधार—जिसमे समस्त संस्कार निहित हैं—के स्वीकार किये बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। इससे एक विराट् एवं आपेक्षिक नित्यता विशिष्ट आधारके अस्तित्वको स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। जो जीवात्माके 'एकत्ववाद'के सिद्धान्तको मानते हैं, उनकी दृष्टिसे यही वह व्यापक जीव है। सब देशोके और सब युगोके नाना जीव इसीके विभिन्न अंशमात्र हैं; किंतु *अतीत ज्ञानके द्वारा समष्टि-जीवका अस्तित्व सिद्ध होनेपर भी ईश्वरका* अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। भविष्यत्-दृश्य अथवा घटनाविषयक प्रत्यक्षसे ईश्वरका अस्तित्व स्वभावतः प्रमाणित होता है; क्योकि कालके प्रभावसे जो सत्ता अभी उदित नहीं हुई है, उसका दर्शन अतीत दर्शनके समान संस्कारके उद्बोधनद्वारा नहीं हो सकता। संस्कार चित्त अथवा लिंग-शरीररूप आधारमें

वर्तमान रहता है तथा उद्‌बोधक कारणोंके सन्निधानसे जाग्रत् होकर स्मृतिरूपमे परिणत होता है। अवश्य ही आविर्भावकी विशदतासे आभास-ज्ञान स्पष्टताको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, सृष्टि अपरोक्ष-अनुभूतिरूपमे भी दिखलायी दे सकती है, किंतु अनागत प्रत्यक्षमें चित्त अथवा लिङ्ग-शरीरकी कोई भी उपयोगिता नहीं है। असल बात यह है कि नित्य कारण-भूमिसे आंशिकभावमे स्रोत निकलता है और वह कार्यरूपमें परिणत हो जाता है। अनागतसे वर्तमानकी ओर जो शक्तिका प्रवाह है, यही कारणकी कार्यावस्थाके प्रति उन्मुखता है। भाव अथवा क्रिया जब अनागत-अवस्थामे रहता है, तब वह कारणके ही अन्तर्गत है। अतएव चित्त अथवा लिङ्ग-शरीरका अन्वेषण करनेसे कारणस्थ भावका पता लगनेकी कोई सम्भावना ही नहीं है। वह अभी न तो काल-स्रोतमें पडा है और न वर्तमान अवस्थामे ही उपनीत हुआ है, इसलिये वस्तुत उसका कोई सस्कार भी नहीं है, इसी कारण चित्त-क्षेत्रमे उसका कोई प्रतिबिम्ब नहीं पडता। अतएव अनागत-दर्शनमें चित अथवा सस्कार किसीकी जरा-सी भी अपेक्षा नहीं होती। अब प्रश्न यह होता है कि तब अनागत-दर्शन किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? महर्षि पतञ्जलि इसके उत्तरमें कहते हैं कि अनागत भी वस्तुत वर्तमानसे भिन नहीं है। हमारे लिये जो अनागत है, व्यापक ज्ञानविशिष्ट पुरुषके लिये वह अनागत न होकर वर्तमान ही हो सकता है। इस युक्तिके अनुसार समझा जा सकता है कि जहाँ ज्ञान व्यापकतम है अर्थात् जिस ज्ञानमें किसी प्रकारका आवरण नहीं है, वहाँ कोई भी पदार्थ या घटना अनागत नहीं रह सकती। वस्तुत जो हमारे सामने अनागत है वही वहाँ वर्तमान है, यही बात अतीतके विषयमें है। जिस भूमिमें अतीत और अनागत नित्य वर्तमानरूपमें प्रकाशित होते हैं, वही पूर्ण ज्ञान-भूमि है। वहाँ कालका भेद नहीं है, घटनाकी पृथक्ता नहीं है,

भावकी विशिष्टता नहीं है और क्रियाका तारतम्य नहीं है, यही कारण-जगत् है। इसका जो अधिष्ठाता है, वही ईश्वर है। अतएव किसी अचिन्त्य कारणसे क्षणमात्रके लिये ईश्वरीय सत्ताके साथ जीव-सत्ताकी अभिन्नता सिद्ध होनेपर जीवको उपर्युक्त भविष्य-दर्शन होना कुछ भी आश्चर्यकी बात नही है, क्योंकि जीव-भूमिमे जो भविष्यत् है, इस प्रकारकी युक्ति-अवस्थामे ईश्वरीय भूमिसे वही वर्तमानरूपमें प्रकाशित होता है। इससे सिद्ध है कि ज्ञानके पहले एक निर्मल अवस्था होती है, जहाँ उपर्युक्त भविष्यत् भी नित्य वर्तमानरूपमे सदा प्रकाशमान रहता है। इस प्रकारकी एक नित्य वर्तमान अवस्था न रहती तो व्यक्तिविशेषके लिये कभी भी भविष्यत्-दर्शन सम्भव नहीं हो सकता। अतएव प्रामाणिक भविष्यत्-दर्शनद्वारा ईश्वरीय सत्ताका युक्तिपूर्वक अनुमान किया जा सकता है। ईश्वरका अस्तित्व माननेके लिये यह एक अभ्रान्त प्रमाण है।

किसी कार्यकी उत्पत्तिमे प्रधानतया उपादान और निमित्त यही दो प्रकारके सामर्थ्य देखे जाते हैं। जगत्रूपी कार्यका विश्लेषण करते समय ठीक इसी प्रकार दो कारणोंको स्वीकार करना आवश्यक होता है। जिस उपादानसे जगत् निर्मित हुआ है, उसे परमाणु, त्रिगुण, माया या कला किसी भी नामसे पुकारा जाय, उसे जड ही मानना होगा; किंतु चेतनके संनिधान बिना केवल जड उपादान अपने-आप कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सकता। यह चेतन-सत्ता ही जगत्-सृष्टिका निमित्त-कारण है, इसीके प्रभावसे जगत्का मूल उपादान विक्षोभको प्राप्त होकर विभिन्न कार्योंके रूपमें परिणत होता है। इस अखिल जगत्का व्यापक निमित्त-कारण ही ईश्वर है। जो लोग निमित्तके बिना ही उपादानके विक्षोभ एवं परिणामको स्वीकार करते हैं, वे विपर्यस्त स्वभाववादी हैं;

क्योकि अनुसधान किये बिना ही स्वभावकी शरण लेना विचार-शास्त्रकी नीतिके विरुद्ध है। अतएव सृष्टि-प्रवाहमे निमित्तरूपसे ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणसिद्ध है। अवश्य ही दृष्टिके और भी उत्कर्ष होनेपर यह समझमें आता है कि निमित्त और उपादानमे वस्तुगत कोई पार्थक्य नहीं है। तब यह भी समझा जाता है कि एक ही चैतन्य-सत्ता अपनी इच्छासे नाना रूप धारणकर विचित्र जगत्के रूपमे प्रकाशित होती है।

जगत्की ओर देखनेसे सर्वत्र एव प्रतिक्षण एक घोर परिवर्तन होता हुआ दिखलायी देता है, यह सर्ववादि सम्मत है। अपरिवर्तनीय द्रष्टाके सामने परिवर्तनकी सार्थकता है। जगद्व्यापी इस शाश्वत परिणामका कोई नित्य द्रष्टा अवश्य है। न होनेसे परिवर्तनका कोई अर्थ ही न रहता। विशुद्ध व्यापक द्रष्टा जो समग्र जगत्के अखिल अभिनयोको निर्विकाररूपेण प्रत्यक्ष कर रहा है, वही चिन्मय ईश्वर है। कहना नहीं होगा कि इस रूपमे दृक्शक्ति ही अभिव्यक्त है एव अन्यान्य शक्तियाँ विलीन-अवस्थामे स्थित है।

(४)

ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमे विचारशील साधारण व्यक्तिके बोधगम्य होनेयोग्य ऊपर जो कुछ बातें कही गयी है, वे सभी युक्तिमात्र है। इस प्रकारकी बहुतेरी युक्तियाँ शास्त्रमें दिखलायी गयी है एव प्रतीच्य ईश्वर-विश्वासी पण्डितोने भी अपने-अपने ग्रन्थोमें दिखलायी है। वस्तुत प्रयोजन होनेपर और भी बहुतेरी युक्तियाँ दिखलायी जा सकती है, किंतु इन युक्तियोके द्वारा कोई कभी ईश्वरमें विश्वास करेगा, इसकी बहुत ही कम आशा है। शास्त्र-वाक्य अथवा अनुभूतिसम्पन्न महापुरुषके वाक्यसे ईश्वरकी सत्ताके विषयमे उपदेश सुनकर निर्मल और अन्त प्रवेशोन्मुख हृदयमें जो अस्फुट श्रद्धाका उदय होता है,

विचारके द्वारा उसका समर्थन करना ही युक्तिका उद्देश्य है; किंतु जो आगम-प्रमाणकी प्रमाणताको नहीं मानते, उनके चित्तमें शुष्क युक्तिके द्वारा किसी विषयमें विश्वास उत्पादन करना असम्भव है। युक्ति और विचारका प्रधान कार्य असम्भावना-बोधको दूर करना है अर्थात् हृदय आप्तवचन सुनकर स्वभावतः ही जिस विषयमे श्रद्धाशील होता है, वह अयौक्तिक नहीं, बल्कि सम्भवनीय है, यह दिखला देनेपर ही युक्तिका कार्य समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात् साधन-प्रणालीद्वारा उसी श्रद्धाके विषयीभूत महापुरुषोंके उपदिष्ट एवं युक्तिद्वारा समर्थित सत्यको प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। इस साधन-प्रणालीमें मूलतः योग ही सर्वप्रधान है। कर्म, ज्ञान, भक्ति प्रभृति इसीके ही एक-एक पर्वमात्र हैं। योगके अवलम्बनसे जब साध्य-तत्त्वको सम्पूर्णरूपसे प्रत्यक्षका विषयीभूत किया जाता है, तब सभी संशय अपने-आप ही दूर हो जाते हैं। ज्ञाता और ज्ञेयका मायिक भेद दूर होनेपर विशुद्ध ज्ञानके आलोकमें विशुद्ध चैतन्य-ज्योति अपने-आप ही प्रतिष्ठित होकर अखण्ड स्वप्रकाश-सत्तारूपमें स्थित होती है।

जो साधन-पथके पथिक हैं, उनके सम्मुख ईश्वरका अस्तित्व शुष्क युक्तिद्वारा प्रकाशित नहीं होता। ज्ञानकी जिस भूमिसे हम वर्तमान अवस्थामें जगत्‌को देखते हैं, जबतक उस भूमिका अतिक्रम नही कर पाते, तबतक जगत्‌का अथवा अपना या तदतीत किसी सत्ताका बोध जैसा अब होता है, तब भी वैसा ही होगा; किंतु एक बार यदि किसी अचिन्त्य कारणवश चित्तमें क्षणमात्रके लिये भी चित्-शक्ति सचारित होकर साथ ही ज्ञानकी भूमिकाका परिवर्तन कर दे, तो एक ही मुहूर्तमें हमारा दर्शन एवं सत्ताबोध अचानक अदृष्टपूर्व नवीन स्वरूप धारण कर लेगा। इस समय हम नास्तिक और घोर अविश्वासी क्यो न

हों, लोकोत्तर शक्तिके प्रभावसे एकाएक नवीन मनुष्यके रूपमें परिणत हो सकते हैं। जगत्में जहाँ ईश्वर-दर्शन या सत्य-ज्ञानका उदय हुआ है, वहाँ इसी प्रकारका ही हुआ है, युक्ति-तर्कद्वारा स्वपक्ष और परपक्षके विचारसे कहीं नहीं हुआ। वस्तुत मनुष्यके जीवनमें ऐसी बहुतेरी अनुभूतियाँ होती हैं, जिनसे मनुष्यके दृष्टिकोणका परिवर्तन होते कुछ भी देर नहीं लगती।

प्रश्नकर्ता चौथे प्रश्नमें पूछते हैं कि आपके व्यक्तिगत जीवनमें ऐसी कौन-सी घटना घटी है, जिससे ईश्वरकी सत्ता अथवा उसकी करुणाके प्रति विश्वास सुदृढ हो सकता है ?

मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं व्यक्तिगत अनुभूतिको लोगोंमें प्रकाशित करनेमें असमर्थ हूँ। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि भलीभाँति उनको पुकारनेपर उनका उत्तर मिलता है, यह निश्चित है। ऐसी-ऐसी विपत्तियोंसे बहुत बार उन्होंने अलौकिक उपायोंसे मेरी रक्षा की है, जिनका प्रतीकार लौकिक उपायोंसे हो नहीं सकता था, और जिनका स्मरण आते ही उनकी करुणा और प्रेमका भाव हृदयको अभिभूत कर डालता है। ज्ञानके राज्यमें, कर्म-भूमिमें तथा भावके मन्दिरमें उन्हींकी मङ्गलमयी सत्ता एवं शक्तिका प्रतिनियत मैं कितने रूपोंमें अनुभव करता हूँ, उसके वर्णनका परिशेष कभी नहीं हो सकता।

ये विषय इतने गुह्य और गोपनीय हैं कि इसके सम्बन्धमें साधारणत किसीके साथ आलोचना करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। मेरी व्यक्तिगत प्रकृति एक ओर जिस प्रकार विश्वासशील है, दूसरी ओर उसी प्रकार सशयप्रवण है। अतएव मैंने अपने जीवनमें जो कुछ उपलब्ध किया है या कर रहा हूँ, उसको बडी ही कठोरताके साथ सब प्रकार प्रमाणकी कसौटीपर जाँचे बिना मैंने स्वय कभी सत्यरूपमें

ग्रहण नहीं किया या नहीं करता हूँ। मेरे विश्वासमे जो सत्य है, वह सदा ही सत्य है। अतएव परीक्षा करनेसे उसकी उज्ज्वलता बढ़ती ही है, घटती नहीं। प्रातिभासिक सत्तासे व्यावहारिक सत्ताको ज्ञानालोकमे पृथक् करके पहचाने बिना पारमार्थिक सत्यकी ओर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। श्रीभगवान्‌की कृपा और सद्गुरुके अनुग्रहसे इस क्षुद्र हृदयमे प्रतिभाससे व्यवहार तथा व्यवहारसे परमार्थकी ओर जानेका मार्ग कुछ मालूम हुआ है, कुछ-कुछ खुल गया है, परंतु अपने पुरुषार्थ-रूप उद्यमकी सहायतासे जब उनकी नित्य प्रकृति अन्तरमे जाग उठेगी, तब स्वभावके स्रोतमे चलते-चलते प्रत्येक स्तरमे उनकी उपलब्धि करता रहूँगा एव सोपान-परम्परासे कर्म, ज्ञान, भक्ति और प्रेमरूपमे नित्य योगके विकाससे उनके अखण्ड सत्त्वमय, ज्ञानमय और आनन्दमय स्वरूपको प्राप्तकर अन्तमे लीलावसानमे उनके सर्वभावमय किंतु सर्व-भावातीत परमरूपमे स्थित हो सकूँगा—**गुरोः कृपैव केवलम्।**'

═ ★ ═

गङ्गातीर-निवासी एक संत

ईश्वरके होनेमे मुझे कोई सशय नहीं है, इसलिये मैं क्या उत्तर लिखूँ ? प्रमाण चाहते हो तो वेद-शास्त्रोमें ईश्वरकी सत्ताको कथन करनेवाले अनन्त प्रमाण हैं, वहाँसे देखकर लिख सकते हो।

१—कर्मफलकी सिद्धिके लिये ईश्वरको अवश्य मानना चाहिये। कर्म जड है, इसलिये वह फल नहीं दे सकता। ईश्वर जिसको ऊर्ध्व ले जाना चाहता है, उससे साधु कर्म कराता है और जिसको अध ले जाना चाहता है, उससे असाधु कर्म कराता है। जैसे घटादि पदार्थोंके होनेमे उसके कर्ताको मानना पडता हे, वैसे ही इस जगत्‌के सम्पूर्ण पदार्थोंके कर्ता ईश्वरको भी मानना पडेगा। जैसे घर कार्य हे, उसी प्रकार जगत् भी कार्य है। और इस जगत्‌का कारण ईश्वर है।

२—यदि ईश्वरको न मानोगे तो जगत्‌के नियत कार्य भी न होंगे। जैसे सूर्य तपता हे, वायु चलती है, मेघ वर्षा करते हैं इत्यादि। यह सब कार्य ईश्वरकी आज्ञासे होते हैं। यदि ईश्वरको न मानोगे तो मुक्ति आदिकी हानि होगी।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

(केन॰ २।५)

हिरण्यकशिपु, रावण, शिशुपाल, कस आदि ईश्वरको न मानने-

वाले लोगोंकी कैसी दुर्दशा हुई और वसुदेव, देवकी, प्रह्लाद, विभीषण आदि ईश्वरको माननेवालोको इस लोकमे द्वन्द्वोकी निवृत्ति और अन्तमे मोक्षकी प्राप्ति हुई। इसीलिये ईश्वरको मानना ही श्रेयस्कर है।

ईश्वरको न माननेवाले भी प्रकारान्तरसे ईश्वरको स्वीकार करते है, यदि वे स्वीकार नही करेगे तो ईश्वरका अभाव है, यह कैसे कहेंगे ? जैसे कोई कहे कि घटका अभाव है। पर जिसने घटको कभी नही देखा होगा, वह कभी घटका अभाव नहीं कह सकता, क्योकि अभावका ज्ञान अनुयोगी-प्रतियोगीपूर्वक ही हुआ करता है। जिसका अभाव होता है, वह प्रतियोगी है और जिसमे अभाव रहता है, वह अनुयोगी होता है। जैसे घटका अभाव पृथ्वीमे है, उसमे घट प्रतियोगी है और पृथ्वी अनुयोगी है। इसी प्रकार ईश्वरका अभाव किस अधिकरणमे रहेगा ? यदि पृथ्वीमे कहो तो इसके विरुद्ध प्रमाणोसे बृहदारण्यक-उपनिषद्का अन्तर्यामी ब्राह्मण भरा पडा है।

कारणको न माननेसे कार्य कैसे होगा ? जैसे तुम अपने पिताको कारण नहीं मानोगे तो कार्यरूप तुम कैसे हो गये और जब अपना ही अभाव मान लिया, तब इससे बढकर और क्या हानि होगी ? इसलिये पिताको अवश्य मानना पडेगा और जब पिताको मान लिया, तब पिताका शरीर भी किसीका कार्य है, अत परम्परासे ईश्वर ही सबका कारण सिद्ध होगा। ईश्वरसे भिन्न कोई कारण हो ही नहीं सकता, क्योकि ईश्वर ही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, वही पितारूपसे पुत्रको उत्पन्न करता है, कुलाल होकर घटको रचता है, जुलाहा होकर वस्त्र बुनता है। इसी प्रकार सब जगत्को रचता है, यदि ईश्वरसे भिन्न जगत्-रूपी कार्यका कोई कारण मानोगे तो एकके ज्ञानसे सबका ज्ञान नहीं होगा—**'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति'**

(छान्दोग्य० ६ । १ । ३) इस श्रुतिवाक्यका विरोध होगा। अन्य स्थलमें भी कहा है—

माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बाहिर नाहिं।
जलते फेन तरग बुदबुदा, उपजत जलते जुदे सु नाहिं ॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारणरूप पिछानहु ताहि।
कारण ईस सकलको सो मैं लय चिन्तन जानहु विधि याहि ॥

यदि कोई कहे कि शून्य यानी अभाव ही जगत्‌का कारण है तो सब पदार्थोंमे उस शून्य अभावकी प्रतीति होनी चाहिये, क्योंकि कार्यमें कारण अनुगत होता है। क्या शून्यका तुमने अनुभव किया है ? यदि नहीं, तो जिस शून्यका अनुभव ही नहीं किया, उसको कारण कैसे कह सकते हो ? यदि यह कहो कि शून्यका अनुभव किया है तो शून्यसे कोई भिन्न अनुभव करनेवाला मानना पडेगा और उस चेतनको ही हम ईश्वर मानते हैं। वास्तवमें अभावसे भावकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। जैसे बीजके अभावसे वृक्ष आदिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, माता-पिताके अभावसे सतानकी उत्पत्ति नहीं होती, इसी प्रकार शून्यसे पदार्थकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। शून्य तो स्वय अभावरूप है। उससे भावकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

३—ईश्वरके होनेमें वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण आदि शास्त्र एव सद्‌गुरु, सत-महात्माओंके अनुभव तथा उनके वचन ही प्रमाण हैं। अनुमान-प्रमाण भी है—जैसे '**क्षित्यङ्कुरादिक कर्तृजन्य कार्यत्वाद् घटवत्**' जितने पृथ्वी आदि कार्य पदार्थ हैं, वे सब कर्ताके द्वारा जन्य हैं। भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहते हैं—

ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

(१८।६१)

× × × सदसच्चाहमर्जुन ॥

(९।१९)

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।

(७।७)

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥

(९।४)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

(१०।२०)

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

(१०।४२)

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

(१३।२)

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

(१३।२७)

उपनिषदोमे कहा है—

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

(ईश० १)

भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

(तैत्तिरीय० २।८।१)

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि। जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।

(तैत्तिरीय० ३।१।१)

वेदान्त-सिद्धान्तमे सम्पूर्ण कार्यमात्रके प्रति जो कारण हो, उसको साधारण कारण यानी ईश्वर कहते है। जो लोग ईश्वरको नहीं मानते, उन लोगोको अपने पिता, पितामह आदिको भी नही मानना चाहिये, क्योंकि पिता आदिके माननेमे भी शब्द प्रमाण ही है। इसी प्रकार ईश्वरकी सिद्धिमे भी वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण आदि अनेक शास्त्र प्रमाण है।

जिस वस्तुका प्रश्न होता है, उसका सामान्य ज्ञान होता है। जैसे उत्तराखण्डके गौरी-फलको कोई नही जानता, इसलिये तद्विषयक प्रश्न ही कोई नही करता। वैसे ही नास्तिकोको भी ईश्वरका सामान्य ज्ञान है, इसलिये उनके कथनसे भी ईश्वरकी सिद्धि होती है। आस्तिकोको तो विशेषरूपसे ईश्वरका ज्ञान अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार होता है। राम-कृष्ण, विष्णु, शिव आदि अवतार ईश्वरके विशेष रूप है और सच्चिदानन्द ईश्वरका सामान्य रूप है। आस्तिकोको ईश्वरके सामान्य और विशेष दोनो रूपोका साक्षात्कार होता है।

लक्षण और प्रमाणसे ही वस्तुकी सिद्धि होती है, केवल कथन-मात्रसे नही, इसलिये अब ईश्वरके कुछ लक्षणोका कथन किया जाता है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह ईश्वरका स्वरूप-लक्षण है। **'जगत्कर्तृत्वे सति जगदुपादानत्वम्'** और **'जन्माद्यस्य यतः'** (ब्रह्मसूत्र १।१।२) यह उसका तटस्थ लक्षण है। **'अन्तर्यामी-अधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'** (ब्रह्मसूत्र १।२।१८) जितने अधिदेव आदि पदार्थ है, उन सबका अन्तर्यामी अर्थात् नियन्ता है। यह बात श्रुति भी कहती है। सर्वका नियन्तापना यह परमात्माका ही धर्म है, पृथ्वी आदि अभिमानी देवताओका धर्म नहीं है। वह युक्तिसिद्ध भी है, क्योंकि **'फलमत उपपत्तेः'** (ब्रह्मसूत्र ३।२।३८) इस ईश्वरसे ही सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होनेमे, वह सबका अध्यक्ष

है और सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाला भी वही है।

जिस ईश्वरको न जाननेसे सब अनर्थोंकी प्राप्ति होती है और जिसको जाननेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है, वही ईश्वर सब प्रकारके जिज्ञासु अधिकारियोंको जिज्ञासितव्य है। जैसे मृत्तिकाके ज्ञानसे मृत्तिकाके सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है, सुवर्णके ज्ञानसे सुवर्णके सम्पूर्ण आभूषणोंका ज्ञान हो जाता है, लोहेके ज्ञानसे लोहेके सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है, इसी प्रकार एक ईश्वरके ज्ञानसे सम्पूर्ण जगत्के पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। जब ईश्वरको केवल कर्ता ही न मानोगे, तब उपर्युक्त दृष्टान्तोंका विरोध होगा और यदि ईश्वरको केवल उपादान-कारण ही मानोगे तो प्रतिज्ञाके वचनोंका विरोध होगा*। जिस एकके श्रवणसे सबका श्रवण हो जाता है, जिस एकके ज्ञानसे सबका ज्ञान हो जाता है, जिस एकके मननसे सबका मनन हो जाता है। यह सब प्रतिज्ञा-वचन हैं।

यदि ईश्वरको सर्वज्ञ, शक्तिमान् नहीं मानोगे तो सर्व-सृष्टिका कर्ता ईश्वर नहीं होगा; क्योंकि जिसके प्रति उपादान-कारणका अपरोक्ष ज्ञान हो और जिसमे इच्छा एवं यत्न हो, वही कर्ता कहलाता है। मायाके तमोगुणयुक्त होनेसे ईश्वर जगत्का उपादान-कारण है, रजोगुणयुक्त

---

* 'येनाश्रुतँ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति × × ×॥'

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥ यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्॥

(छान्दोग्य० ६।१।३, ४, ५)

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्'

(छान्दोग्य० ६।२।१)

होनेसे ईश्वर जगत्का स्रष्टा है और सत्त्वगुणयुक्त हुआ वही सर्वज्ञ है।

ब्रह्म (ईश्वर) प्रपञ्चका उपादान है। जो उपादान होता है, वह कार्यमे अनुगत होता है, जैसे घटका मृत्तिका उपादान-कारण है, वह घटमें अनुगत है। इसी प्रकार ईश्वर सब प्रपञ्चका उपादान-कारण है, इसलिये वह सबमें अनुगत है। जैसे 'घटः सन् पटः सन्' घट है,पट है, यह सत्ताकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार 'घट प्रतीत होता है', 'पट प्रतीत होता है,'यह चेतनताकी प्रतीति है और 'घट प्रिय है, पट प्रिय हे' यह आनन्दकी प्रतीति है। ये सब ईश्वरके सच्चिदानन्द-स्वरूपका ही बोध कराते हैं। ईश्वर ही सब पदार्थोंमे पूर्ण होकर व्यापकरूपसे प्रतीत हो रहा है, जैसे घटमे नेत्रोंसे मृत्तिकाकी ही प्रतीति होती है, घट मानना मिथ्या हे, इसी प्रकार सब जगह सच्चिदानन्दघन परमात्माकी ही प्रतीति होती है। नाम-रूपात्मक जगत् वास्तवमे परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं हे, यह बात छान्दोग्य-उपनिषद्में श्वेतकेतुके प्रति उद्दालक ऋषिने बहुत विस्तारके साथ वर्णन की है।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वरका स्थूल शरीर है और सम्पूर्ण समष्टि सूक्ष्म शरीर ईश्वरका सूक्ष्म शरीर है एव माया उसका कारण-शरीर है। ईश्वरके इन तीनों शरीरोंके अन्तर्गत ही सम्पूर्ण व्यष्टि-शरीर एव सम्पूर्ण प्रपञ्च है। जैसे खेतमें अलग-अलग क्यारे होते हैं और वह खेत सब क्यारोंमें अनुगत है, इसी प्रकार सब व्यष्टि-शरीरोंमें ईश्वर अनुगत है। जब ईश्वरको न मानोगे, तब अपनेको तथा इस जगत्को भी नहीं मानना चाहिये, क्योंकि यह सब ईश्वर करके ही व्याप्त है। ईश्वरके निषेधसे सबका निषेध होगा। अपना शरीर तथा जगत् प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, इसलिये उसका अभाव नास्तिकको भी इष्ट नहीं है, इस न्यायसे भी

ईश्वरकी सिद्धि होती है। यदि कोई यह कहे कि जो प्रतीत होता है वही हुआ करता है, जो प्रतीत नहीं होता वह होता ही नही, उसके उत्तरमें ये आठ दृष्टान्त दिये जाते है।

'दूर, समीप, इन्द्रियको हान। मन चञ्चल सूक्ष्म, विवधान।
तिरोधान, सजाती-संग। अष्ट हेत धारो चित अंग॥'

(१) दूर—जैसे पक्षी उडता हुआ आकाशमे दूर चला जाता है तब प्रतीत नही होता, परतु ऐसा नही कहा जाता कि पक्षी नहीं है।

(२) समीप—जैसे नेत्रोंमे अञ्जन अत्यन्त समीप है, किंतु अपनेको प्रतीत नही होता तो भी अञ्जन नही है यह नहीं कह सकते।

(३) इन्द्रियको हान—अधा रूपको नही देखता है तो भी रूपका अभाव नहीं कहा जाता, क्योकि नेत्रवाले रूपको देखते है।

(४) मन चञ्चल—मनके चञ्चल होनेसे पदार्थ प्रतीत नही होते तो भी पदार्थोंका अभाव नही कहा जाता, क्योकि पदार्थ है।

(५) सूक्ष्म—सूक्ष्म परमाणु प्रतीत नही होते तो भी उनका अभाव नही कहा जाता, क्योकि परमाणु है।

(६) व्यवधान—जैसे राजमहलमे परदेके अदर रानी बैठी हुई दीखती नहीं, तो भी रानीका अभाव नही कहा जाता।

(७) तिरोधान—तारे दिनमे नहीं दीखते तो भी उनका अभाव नहीं कहा जाता, क्योकि सूर्यके प्रकाशसे वे नही दीखते।

(८) सजातीय-संग—वर्षाका जल तो तालाब या नदीमे मिल जाता है, इससे उसकी अलग प्रतीति नही होती, किंतु यह नही कहा जाता कि वृष्टिका जल उनमे नही है।

इन सबको अन्य लोगोके न देख सकनेपर भी योगी पुरुष इन्हे देखता है।

इसी प्रकार विचाररूपी नेत्रोसे रहित जो अनीश्वरवादी है, वे ईश्वरको नहीं मानते तो भी ईश्वरका अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि जो विचारवान् आस्तिक पुरुष हैं, वे ईश्वरको अपने आत्मरूपसे सर्वत्र देखते है।

गुरु-ग्रन्थ साहबमे भी ईश्वर-सिद्धिके लिये अनेक प्रमाण स्थल-स्थलपर दिये गये हैं, उनमेसे कुछ दिग्दर्शनमात्र नीचे लिखे जाते है।

'यह जो दीखे अम्बर तारे, किनओ चीते चीतनहारे।'

यह जो आकाशमे तारे लगे है, वह किस चितेरेने चित्रित किये हैं। इस रीतिसे इनके कर्ता ईश्वरकी सिद्धि होती है।

'तू कर्ता सच्यार मेढा साँई।'

हे परमात्मन्! तू सर्व जगत्का कर्ता है और सच्चा है अर्थात् आप्तवक्ता और मेरा स्वामी है। प्रारम्भमे मङ्गलाचरण करते हुए गुरु नानक साहब कहते है—

'एक ॐ सतनाम कर्त्ता पुरुष निर्भउ, निर्वैर।
अकालमूरत अजूनि सेभं गुरुप्रसाद जप॥'

अर्थ—एक अद्वितीय ब्रह्म जो परमात्मा है, वही हमारा उपास्य है, वह कैसा परमात्मा है कि वह ॐस्वरूप है। अब उसका स्वरूप-लक्षण तथा तटस्थ-लक्षण कहते हैं। सतनाम अर्थात् सत् है स्वरूप जिसका, ऐसा कहनेसे उसके स्वरूप-लक्षणका बोध हुआ और कर्तासे तटस्थ-लक्षण कहा अर्थात् नाममात्र जो जगत् है, उसका वह कर्ता है। यदि कहो, कर्ता प्रधान होगा तो इसका उत्तर यह है कि 'नहीं', पूर्ण होनेसे पुरुष ही कर्ता है, उसीको उपादानकारण भी कहते हैं। फिर वह कैसा है कि जिसको किसीका भय नहीं है, किसीसे वैर नहीं है। जिसका कालसे रहित स्वरूप है, जो मृत्युका भी मृत्यु है। वह अजूनि यानी कारणसे रहित है। जिसका कोई कारण नहीं है और वह सबका

कारण है। 'सैभं' अर्थात् प्रकाश-स्वरूप है। 'गुरुप्रसाद' यानी गुरुकृपासे ही प्राप्त होता है।

गुरु गोविन्दसिंहजी कहते है—

'श्रीअसकेत जगत्के ईस' शोभायमान तलवारका चिह्न है जिसकी ध्वजामे, ऐसा सर्व जगत्का नियन्ता ईश्वर है।

गुरु गोविन्दसिंहजीका तवप्रसाद सवैया—

'दीननकी प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनीमन गारै।
पक्षि पसू नग नाग नराधिप, सर्व समै सबको प्रतिपारै॥
पोषत है जलमे, थलमे, पलमे पलके नहीं कर्म बिचारै।
दीनदयाल दया निधि दोषन देखत है पर देत न हारै॥'

मूलश्लोक सुखमनी सोलवाँ—गुरु नानक साहब कहते है—

'आदि सच, जुगादि सच, हे भी सच, नानक होसी भी सच।'

सृष्टिकी उत्पत्तिसे प्रथम वह परमात्मा सत् था।

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'

(छान्दोग्य० ६।२।१)

सत्ययुग आदिके पूर्व इच्छा-कालमे वह परमात्मा सत् हुआ। **'तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय'** वह परमात्मा वर्तमानकालमे भी सत् है और गुरु नानकजी कहते हैं कि वह भविष्यमें भी सत् ही रहेगा। इसी मूलश्लोकको व्याख्यामे लिखते हैं—

चरण सत सत परसनहार, पूजा सत सत सेवदार।
दरसन सत सत पेखनहार नाम सत सत ध्यावनहार॥
आप सत सत्त सब धारी, आपे गुण आपे गुणकारी।
शब्द सत्त सत प्रवकता, सुरत सत्त सत्त जस सुनता॥
बूझनहारको सत सब होय, नानक सत्त सत्त प्रभु सोय।

इस प्रकार जाननेवालेको सर्वत्र सत् परमात्मा ही प्रतीत होता है, क्योंकि भूत, भविष्यत् और वर्तमान—इन तीनों कालोंमे वह सत् है। और भी कहा है—

आदि पूर्ण मध्य पूर्ण अन्त पूर्ण परमेश्वर है।
सिमरन्त सन्त सर्वत रमण, नानक अघ नासन जगदीश्वर है ॥

× × × ×

एक कृष्ण सर्व देवा, देव देवात आत्मा, आत्मा वासुदेवस्य।
जे को जाणेभ्यो। नानक ताका दास है सोई निरञ्जन देव हे ॥

× × × ×

वासुदेव सर्वत्रमे ऊन न कतहु उठाय।
अन्दर बाहिर सदा सग, नानक काहे दुराय ॥

नानकजी कहते हे कि जो सबमे निवास करता हे अथवा जिसमे सब निवास करते हैं, वह वासुदेव सर्वत्र हे। किसी जगह उसका अभाव नहीं है, क्योंकि वह अदर-बाहर सदा सङ्ग रहनेवाला है। हे नास्तिको। ऐसे परमात्माको तुम क्यो छिपाते हो ? वह परमात्मा तुम्हारे छिपानेपर छिप नहीं सकता। जेसे उल्लू सूर्यका अभाव कथन करता है, परतु उल्लूके कहनेमात्रसे सूर्यका अभाव नहीं हो सकता। सूर्य तो अपना अभाव करनेवाले उल्लूको भी अपना प्रकाश ही देता है, इसी प्रकार सर्व-प्रकाशक ईश्वरका नास्तिक लोग अभाव करते हैं, यह उनकी भूल है, क्योंकि नास्तिकोंकी सिद्धि भी ईश्वरमे ही होती है, इसलिये ईश्वरको सदा मानना चाहिये।

जल थल महि अल पूर्या, स्वामी सिरजनहार।
अनेक भाँति होय पसरया नानक एकुंकार ॥

जल, मरुभूमि, पृथ्वी, आकाशादि पञ्चभूतोंमें वह परमात्मा पूर्ण हो

रहा है। वह परमात्मा सबका नियन्ता है और वह नाना रूपोसे संसाररूप होकर विस्तृत हो रहा है, उसका ॐकार नाम है। इसलिये ईश्वरसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है।

वासुदेवः सर्वमिति। (गीता ७।१९)

सर्व खल्विदं ब्रह्म। (उपनिषद्)

४—जिस ईश्वरकी कृपासे हम आपलोगोमेसे निकलकर इस वेषमे जाये और आपलोग हमलोगोको नमस्कार करते है तथा आपके परिचित लोग आपको भक्त जानकर नमस्कार करते हैं, यह सब ईश्वरकी ही दया है और ईश्वरमे विश्वास बढ़ानेवाली ही बाते है।

घटनाएँ

(क) एक संत कई वर्ष पहले मुझे मिले थे। उन्होने अपने जीवनकी एक घटना मुझे सुनायी थी, जिससे ईश्वरकी सत्ता और उसकी दयामे विश्वास विशेष बढ़ता है।

वे संत बद्रीनारायणके दर्शनार्थ गये थे। वहाँसे लौटते समय रास्तेमें उनको दस्त बहुत लगने लगे, जिससे वे बहुत निर्बल हो गये; तब वे एक गुफामे बेहोश होकर पड़ गये। इसके बाद एक पुरुष उनके पास आकर बोला कि महात्माजी ! यह दवा खाइये और इसका पथ्य हम भेज देगे।' तदुपरान्त दो घंटे बाद दही और भात लेकर वही पुरुष आया और उन महात्माको देकर चला गया। इसी प्रकार तीन दिनोतक वह पुरुष ठीक समयपर आकर दवा तथा पथ्य उन महात्माको बराबर देता रहा। जब महात्माके शरीरमे कुछ शक्तिका संचार हुआ और वे एक दिन गुफासे बाहर निकले, तब उनको अपने चारो ओर बर्फ-ही-बर्फ दिखायी दी। कहीं कोई मनुष्य, पशु-पक्षी आदि वस्तु नजर नहीं आयी। तब तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'यह आदमी

खाते हैं और मेरे लिये खानेको कहाँसे लाता है ?' इसके बाद जब वह पुरुष खानेके लिये सामान लेकर आया, तब उससे महात्माने पूछा कि 'आप खाना कहाँसे लाते हैं ? कहाँ रहते हैं ?' इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि 'आप खा लीजिये, इन प्रश्नोंसे क्या प्रयोजन है ?' तब महात्माने बड़े आग्रहसे कहा कि 'आप अपना हाल बता देंगे तभी खायँगे, नहीं तो नहीं खायँगे।' इसके बाद वह पुरुष उस महात्माको उसी जगह चतुर्भुज विष्णु भगवान्‌के रूपमें दीखने लगा और बोला कि 'मैं भगवान् हूँ।' तब वे महात्मा बोले कि 'तो आप यहाँ साक्षात्-रूपमें सेवा करते हैं। पर अन्य जगह आप साक्षात्-रूपमें सेवा क्यों नहीं करते ?' तब भगवान् बोले कि 'जहाँ कोई नहीं होता वहाँ हम साक्षात्-रूपसे सेवा करते हैं और जिस जगह अन्य कोई होते हैं, वहाँ हम अपने भक्तोंके द्वारा सेवा कराते हैं।' इससे यही सिद्ध हुआ कि ईश्वर ही सबका योगक्षेम करता है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

(ख) रियासत पटियालामें अमरगढ नामक एक कस्बा है। उसमें एक ब्राह्मण रहता था, जिसकी टाँगें जुड़ी हुई थीं, इसलिये वह लकड़ीके खड़ाऊँके सहारे बैठा-बैठा ही चला करता था। उसने अपने मनमें विचार किया कि मैं श्रीजगन्नाथ भगवान्‌के दर्शन करूँ तो मेरा जीवन सार्थक हो जाय। पश्चात् उसने अपने घरवालोंसे कहा कि 'मुझे श्रीजगन्नाथजी जानेके लिये खर्च दे दो, क्योंकि मुझे वहाँ दर्शन करनेके लिये जाना है।' घरवालोंने कहा कि 'तुम दिनभरमें एक मीलसे अधिक तो जा नहीं सकते, फिर इतनी दूर श्रीजगन्नाथधाम कैसे जाओगे ?'

उस समय रेलगाडी तो थी नही, इसलिये उसके सम्बन्धियोने भी जानेकी राय नही दी, परतु उसने किसीकी बात नहीं सुनी। इसपर सभी गाँववालोंने भी उसे जानेसे बहुत रोका, परतु वह अपने दृढ सकल्पसे जरा भी न डिगा और जानेके लिये तैयार हो गया। तब उसके घरवालोंने उसको रास्तेके लिये कुछ खर्च दे दिया और वह अपना थोडा सा सामान पीठपर बाँधकर प्रभुका स्मरण करके घरसे चल पडा। चलते-चलते कुछ दूर जानेके बाद वह थक गया और जगलमे एक वृक्षके नीचे जाकर छायामे विश्राम करने लगा। इतनेमें उसी जगह एक पुरुषने आकर उससे पूछा कि 'तुम कौन हो और कहाँ जा रहे हो ?' इसके उत्तरमे उसने कहा कि 'मैं ब्राह्मण हूँ और श्रीजगन्नाथभगवान्‌के दर्शनके लिये जा रहा हूँ।' तब उस पुरुषने कहा कि ब्राह्मणदेवता ! तुम वहाँतक कैसे जा सकोगे, तुममे चलनेकी शक्ति तो है ही नहीं, अच्छा हो तुम यहीसे लौट जाओ।' इस प्रकार उस पुरुषने बहुत मने किया, तब ब्राह्मण बोला कि मैने तो अपना शरीर श्रीजगन्नाथजीके अर्पण कर दिया है, इसलिये बिना उनके दर्शन किये मैं लौट नहीं सकता।' इसपर उस पुरुषने कहा कि 'यदि श्रीजगन्नाथजीके दर्शन तुम्हें इसी जगह हो जायँ तब तो लौट जाओगे ?' तब ब्राह्मण बोला कि 'हमको तो श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करने हैं, कहींपर हो जायँ।' तदनन्तर उस ब्राह्मणको वही पुरुष भगवान् श्रीजगन्नाथजीके रूपमे दीखने लगा। ब्राह्मणने श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके उनसे कहा कि 'हे नाथ! आपके दर्शन तो मुझे हो गये हैं, परतु मेरे गाँववाले इस बातको नहीं मानेंगे, इसलिये आप कोई चमत्कार दिखलाइये, जिससे उनके मनमें सदेह न रहे।' तब भगवान्‌ने उसकी एँडीपर अपना चरण रखकर एक झटका देकर उसे सीधा, सुन्दर पुरुष बना दिया और स्वय अन्तर्धान हो

गये। तदनन्तर वह ब्राह्मण भगवत्प्रेमसे प्लावित होकर उनकी अहैतुक असीम दयाका तथा उनके माधुर्यरूपका चिन्तन करता हुआ अपने पैरोंसे चलकर घर पहुँचा और यह घटना सबसे कही, तब सब लोगोंने इस बातको मान लिया। इस घटनाको हुए सत्तर-अस्सी वर्षसे अधिक हुए होंगे। उस ब्राह्मणकी संतान उसी ग्राममें अभीतक मौजूद है। यह घटना भी ईश्वरकी सत्ता और उनकी विशेष दयाकी परिचायक है।

(ग) थोड़े ही वर्ष पहलेकी बहुत प्रसिद्ध वृन्दावनकी घटना है। श्रीनारायण स्वामीजी एक बड़े प्रसिद्ध भक्त हुए थे, जिनके बनाये हुए बहुत-से पद तथा दोहे आजकल बहुत प्रचलित हैं। उन्हीं महात्माकी एक अमृतसरमें रहनेवाली कुबड़ी शिष्या थी। वह प्रायः प्रतिवर्ष श्रावणके झूलोंके समय वृन्दावन जाया करती और वहींपर नारायण स्वामीकी मढ़ीपर रास कराया करती थी। एक समय भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रका स्वरूप बननेवालेसे रासके समयमें उस कुबड़ी माईने प्रार्थना की कि 'भगवन्! मथुरामें रहनेवाली कुबड़ीकी कूबड़ तो भगवान्‌ने तत्काल दूर कर दी थी, आप भी भगवान् हैं, इसलिये मेरी कमर भी सीधी कर दीजिये।' इतनेमें जो भगवान्‌के रूप बने थे, उन्होंने आकर उस कुबड़ी माईके कमरमें एक लात मारी, जिससे तत्काल उसकी कमर सीधी हो गयी। यह थोड़े ही वर्षोंकी घटना है, जिसे बहुत लोग जानते हैं। हमें भी एक महात्माने यह बात उस कुबड़ी माईकी जबानी सुनी हुई सुनायी थी। सिद्धान्तसे भी यह कोई असम्भव या दुर्घट बात नहीं है। यह घटना भी ईश्वरकी सत्ता एवं उसकी विशेष दयाको प्रकट करती है। तात्पर्य यह कि जिसको ईश्वरकी सत्ता और उसकी दयापर पूर्ण विश्वास है, उसको उससे लाभ भी पूर्ण होता है। अनेक भक्तोंकी जिन घटनाओंका वर्णन सुना जाता है, वे सब ध्रुव सत्य हैं। इसलिये

ईश्वरमे और उसकी दयामें पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'**संशयात्मा विनश्यति**' (४।४०), संशयवाला पुरुष विनाशको प्राप्त होता है।

(घ) सं० १९६० में हरिद्वारका कुम्भ था। यह हमारे आँखों देखी बात है। रात्रिमें एक बेरीके वृक्षके नीचे हमलोग नेत्र मूँदे हुए ध्यानमें बैठे थे। उसी समय एक सिंह हमलोगोंके पास आ गया और गरजने लगा। हमने कभी सिंहकी गर्जना सुनी नहीं थी, इसलिये हमे डर नहीं लगा। हमने अपने वस्त्रको हिलाकर थोड़ा शब्द किया, जिससे वह सिंह पीछे हट गया। इतनेमें वहाँ हल्ला होने लगा, तब किसी महात्माने आकर हमसे कहा कि 'अभी यहाँ सिंह आया था।' इसी प्रकार कई बार सर्प हमारे शरीरपर चढ़ गये, चोर भी हमारे पास आये। उस समय हमारी सहायता करनेवाला कोई व्यक्ति हमारे पास नहीं था और जब हमने ईश्वरका स्मरण किया, तब उसने हमारी रक्षा की। इसलिये ईश्वर सत्य है ! सत्य है ! सत्य है ! ईश्वरपर अवश्य विश्वास करना चाहिये।

जब देवताओंको अपनी विजय देखकर अभिमान हुआ, तब उनका मान भङ्ग करनेके लिये यक्षके रूपमें वहाँपर ईश्वर प्रकट हुए, यह कथा 'केन-उपनिषद्'मे विस्तारपूर्वक वर्णन की गयी है। प्रह्लादके लिये वे खम्भेमेसे प्रकट हो गये, क्योंकि वे सब जगह व्याप्त हैं। द्रौपदी, गजेन्द्र, ध्रुव आदिकी कथाओंको पढ़ने, सुनने और मनन करनेसे उनकी सत्ता तथा दयामें विश्वास अधिक होता है। जिस समय, जिस जगह दृढ़ विश्वासपूर्वक उन्हे पुकारो, उसी समय वहींपर वे प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं।

एक ब्राह्मण बड़ा गरीब था, उसके पास कुछ भी न था; किंतु

उसके मनमे यह इच्छा हुई कि म किसी प्रकारसे राजाके दर्शन करूँ। इसी चिन्तामे वह दिन-रात दु खी रहा करता। वह यह बात जानता था कि मुझ-जैसे कँगलेको राजाके पास कौन जाने देगा ? एक दिन वह एक महात्माके पास जाकर उनसे बोला कि महाराज। मुझे राजाके दर्शन कैसे हो मुझे इसी बातकी चिन्ता हर समय लगी रहती है।' तब उस महात्माने कहा कि 'भाई। राजाका मकान बन रहा है, उसमे जाकर कुछ भी मजूरी न लेकर राजाके दर्शनके लिये मन लगाकर खूब उत्साहपूर्वक काम करने रहो। ऐसा करते रहनेसे किसी दिन राजाके दर्शन भी हो जायँगे। यह बात सुनकर वह पुरुष राजाके मकानमे प्रमपूर्वक काम करने लगा। सध्या-समय जब अन्य सब मजदूरोको मजदूरी दी गयी तब उस ब्राह्मणको भी बुलाकर मजदूरी देने लगे। तब वह बोला कि 'म तो कुछ भी नही लूँगा, क्योकि मै तो केवल महाराजाके लिये ही काम करता हूँ।' जब इस प्रकारसे काम करते हुए कई दिन बीत गये, तब बढते-बढते यह बात राजाके पास पहुँची कि 'एक मजदूर कुछ भी मजदूरी न लेकर केवल आपके दर्शनके लिये ही काम करता है।' इस बातको सुनकर राजा बोला कि 'उस मजदूरको मेरे पास ले आओ।' जब वह ब्राह्मण राजाके सामने गया तब राजाने उससे पूछा कि 'तुम मुझसे क्या चाहते हो ?' इसपर वह ब्राह्मण बोला कि 'मुझको तो आपके दर्शनकी इच्छा थी, सो हो गये, अब कुछ भी इच्छा नहीं है।' राजाने उसको बहुत-से द्रव्यादि पदार्थ देने चाहे, किंतु उसने कुछ भी नहीं लिया। तब राजाने उसको अपने बराबरका अधिकार देकर अपने सदृश बना लिया।

तात्पर्य यह है कि जो लोग धन, मान, स्त्री, पुत्रादि सासारिक पदार्थोंकी कामना करके ईश्वरकी आराधना करते हैं, वे तो राजाके

मजदूरोंकी भाँति नियत किये हुए पैसे पानेके ही अधिकारी है; पर जो निष्काम भक्त केवल ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये ही कर्म या उपासनादि करते है, परमेश्वर इस लोकमे ध्रुव-प्रह्लादकी भाँति उनके द्वन्द्वोकी निवृत्ति करके अन्तमे उन्हे अपने धाम या मोक्षपदकी प्राप्ति करा देते है।

इसलिये ईश्वरकी शरण होकर निष्काम भावसे उनकी भक्ति करनी चाहिये। कलियुगमे यही सबसे सरल और सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

जै प्राणी 'हौ' 'मै' तजी, कर्ता राम पिछान।
कह नानक वह मुक्त नर ए मन साची जान॥

जिस व्यक्तिने अपने साढ़े तीन हाथके शरीरके अहंकारको त्याग दिया है और सबके कर्ता ईश्वरको तत्त्वसे जान लिया है, गुरु नानकजी कहते है 'अरे मन! वह मनुष्य मुक्तस्वरूप ही है, यह बात सत्य समझ।'

एक राजा था, उसने अपने देशमें ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'जो व्यक्ति दो घंटेके अन्दर हमारे पास आ जायगा, उसको हम अपना राज्य दे देगे।' ऐसा कहलाकर उस राजाने अपने बैठनेकी जगहके बीचके रास्तेमे पाँचो ज्ञानेन्द्रियोके विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके उत्तम-से-उत्तम भोग्य पदार्थ अपने पास आनेवालोंको मुफ्तमे भोगनेके लिये रखवा दिये, जैसे अच्छे-अच्छे गायन गानेवाली सुन्दर अप्सराओके सदृश युवती स्त्रियाँ तथा फोनोग्राफ, हारमोनियम, तम्बूरे, सितार, वीणा, मृदङ्ग आदि अनेक वाद्य बजानेवाले प्रवीण लोग नाना प्रकारके गायनके साथ वाद्य बजाकर मनको मोहित करने लगे। मखमली गद्दोंकी शय्या एवं मनको लुभानेवाली इन्द्रकी अप्सराओंको भी अपने रूप-लावण्य और मन्द मुस्कानसे मात करनेवाली युवती स्त्रियाँ अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं। अनेक प्रकारके नाटक,

सिनेमा तथा नेत्रोको मोहनेवाले सुन्दर-सुन्दर दृश्य पदार्थ रखवा दिये, कि वे देखनेवालोको दूर जाने ही नहीं देते। खानेके लिये मेवा-मिष्टान्न, फल आदि इतनी सामग्री एकत्रित कर दी गयी कि उनकी सख्या ही नहीं की जाती तथा उनके रसास्वादन किये विना ही मुँहमे पानी भर आता है। इसी प्रकार सुगन्धके लिये इत्र, फुलेल, एसेंस, पुष्प, वाग-बगीचे ऐसे रचे गये कि वहाँसे हटनेको चित्त ही नही चाहता। यह तो इन्द्रियोके कुछ विषय हुए। अब मनको फँसानेके लिये भी नाना प्रकारकी सामग्री एकत्र कर दी गयी। इन सब मनोमोहक सामग्रियोके यथेच्छ उपभोगका आनन्द बिना ही कुछ दिये करनेकी खुली आज्ञा राजाने सबके लिये दे दी। साथ ही यह भी कह दिया कि दो घटे पूरे होनेपर सबको जबरदस्ती बाहर निकाल दिया जायगा।

हजारो-लाखोकी सख्यामे लोग राजासे मिलनेके लिये वहाँ एकत्र हो गये। सबने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अपना मन उन भोग्य वस्तुओंके उपभोगमे लगा दिया। अधिकाश तो उनमे इतने निमग्न हो गये कि राजाके पास जाना ही भूल गये। कुछ बुद्धिमान् थे, उन्होंने विचार किया कि 'अभी तो समय बहुत है, इन पदार्थोंका उपभोग कर लें। ठीक समयपर राजाके पास पहुँचकर राज्य ले लेंगे।' ऐसा विचारकर वे भी उन भोग्य सामग्रियोमे ही लिप्त हो गये। उनमेंसे किसी एक अति बुद्धिमान् व्यक्तिने ऐसा विचार किया कि 'यह सब सामग्री तो राजाकी है और राजाके पास जानेसे जब हम स्वय राज्यके मालिक ही हो जायँगे फिर यह सब सामग्री आप ही हमारी हो जायगी, तब इनका मनचाहा उपभोग कर लेंगे।' ऐसा विचारकर वह व्यक्ति किसी भी ओर जरा भी न ताक सीधा तेजीसे दौडकर राजाके पास पहुँच गया। राजासे भेंट होते ही राजाने अपनी पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार उसको राज्य

देकर स्वय वनकी राह ली।

तात्पर्य इस प्रकार समझना चाहिये कि ईश्वररूपी राजाने मनुष्योके लिये सम्पूर्ण भोग्य पदार्थ रचकर उनको आज्ञा कर दी कि 'जो जीव मनुष्य-शरीरको प्राप्त करके इन सब पदार्थोसे मोह हटाकर केवल मेरे परायण हो जायगा, उसे मै अपने परम धामका मालिक बना दूँगा या उसे परमपद यानी मोक्षपदकी प्राप्ति करा दूँगा।' परम दयालु ईश्वरकी ऐसी आज्ञा होनेपर भी मायामरीचिकामे मोहित रहनेवाले अधिकांश जीव मायिक पदार्थोंके उपभोगमे ही अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। कुछ समझदार लोग ऐसा विचार करते हैं कि अन्त समयमे ईश्वरमें प्रेम करके संसारी पदार्थोसे मोह हटा लेगे, किंतु जैसे दो घंटेकी अवधिके समाप्त होते ही उन लोगोको धक्के देकर निकाल दिया गया। इसी प्रकार श्वासोकी अवधि पूरी होते ही इन जीवोको कालदेव जबरदस्ती यहाँसे ले जाकर उनके अपने-अपने कर्मानुसार चौरासी लक्ष योनियोके चक्करमें भ्रमण करायेगे। नचिकेताके सदृश कोई विरला ही वैराग्यवान् पुरुष ब्रह्मलोकपर्यन्तके सम्पूर्ण भोग्य-पदार्थोंको नाशवान् समझकर उनमें दोषदृष्टि करके ईश्वरके भजन-ध्यानके परायण होगा तो उसको इसी जन्ममे ईश्वरका साक्षात्कार होकर परमपदकी प्राप्ति होगी।

हरिः ॐ तत्सत्

★

स्वामी श्रीअभेदानन्दजी, अध्यक्ष श्रीरामकृष्ण वेदान्त-आश्रम

१—ईश्वर हमारे प्राण एवं चेतनाका अनन्त स्रोत है तथा हमारे आत्माका आत्मा है। इसलिये हमे उसके अस्तित्वमे विश्वास करना चाहिये। हम उसीके अदर रहते हैं, उसीके अदर चलते-फिरते हैं और उसीके अंदर जीते हे, परतु हमे ऐसे ईश्वरकी सत्तामे विश्वास नहीं करना चाहिये, जिसके सम्बन्धमे यह कहा जाता है कि वह इस बाह्य जगत्को शून्यमेसे उत्पन्न करता है और जो अपने धाममे सिहासनासीन होकर पापियोको नरककी ज्वालामे अनन्त कालतक जलाता है और पुण्यात्माओको अक्षय स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति कराता है। इस प्रकारका ईश्वर साम्प्रदायिक सिद्धान्तों एव विधि-निषेधोके पोषक प्रचारकोंकी कल्पनामे ही रहता है।

ईश्वर वह महान् समष्टि है, जिसके हम सारे जीव क्षुद्रातिक्षुद्र अशमात्र है। वह सच्चिदानन्द-स्वरूप है तथा क्षणिक एव प्रातिभासिक बाह्य सत्ताओके मूलमे रहनेवाला वास्तविक तत्त्व है। जिस प्रकार अशका अस्तित्व अशीके आधारपर है, इसी प्रकार हमारी सत्ता ईश्वरके आधारपर है। इसी प्रकारके ईश्वरको न माननेमे हमारा जीवन व्यर्थ हो जायगा। ऐसी दशामे हमारे लिये न तो सदाचारकी, न नीतिकी और न धर्मकी आवश्यकता रहेगी और हमारा जीवन पशुओका-सा हो जायगा। दूसरे और तीसरे प्रश्नोका उत्तर भी इसीके अदर आ जाता है।

४—मैंने सारे संसारका भ्रमण किया है। मैं जिस समय संसार-यात्राके लिये चला था, उस समय एक बिलकुल अकिञ्चन सन्यासी था। मैंने लंदन, पेरिस, न्यूयार्क, सैन्फान्सिसको तथा अमेरिकाके सयुक्त प्रदेश, कनाडा, अलास्का एवं मेक्सिको तथा अन्यान्य देशोके नगरोमे भाषण दिये। अमेरिकाके संयुक्त प्रदेशमें धर्मोपदेशकके रूपमे पचीस वर्ष व्यतीत किये। अटलान्टिक महासागरको सत्रह बार पार किया। जापान, चीन एवं फिलिपाइन द्वीपमे भ्रमण किया और भारतवर्षको लौटनेपर मैंने पैदल हिमालयको पार किया और तिब्बतको गया और पचीस वर्षतक केदारनाथ, बद्रीनाथ, गङ्गोत्तरी, यमुनोत्तरी, अमरनाथ, द्वारका, रामेश्वर एवं अन्य तीर्थोमे भ्रमण करता रहा। मेरे जीवनके इस दीर्घकालमे हजारो ऐसी घटनाएँ हुई, जिनमे मेरा ईश्वरकी सत्तामे विश्वास दृढतर होता गया और मुझे सर्वत्र उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वरकी दया-ही-दया दीख पड़ी। जिसे ईश्वरमे विश्वास होता है, उसकी भगवान् स्वयं सभी अवस्थाओमे रक्षा करते है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है और शरीर छोडनेके बाद शाश्वत-सुख एव ब्रह्म-भावको प्राप्त हो जाता है।

═ ★ ═

श्रीस्वामी निगमानन्दजी सरस्वती

ईश्वरकी सत्तामें किसीको विश्वास दिलाना या तर्क और प्रमाणके द्वारा उसकी सत्ता सिद्ध करना सम्भव नहीं प्रतीत होता। श्रद्धा और विश्वास सत्सङ्ग, सदाचार तथा आत्मानुसन्धानके बिना अथवा ईश्वरकी विशेष कृपाके बिना नहीं उत्पन्न हो सकते। संशयात्माके लिये यह बहुत सम्भव है कि महात्माओंके जीवनकी घटनाओंको वह झूठ समझे और यदि कोई महात्मा अपने जीवनकी ऐसी कोई घटना वर्णन करे तो उसे असत्यवादी मान ले। संशयात्माको ईश्वरकी सत्ता माननेकी कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती, परंतु इससे दुःखमें, बीमारीमें, विरहमें उसके लिये कोई दिलासा नहीं होती और उसके लिये यह असम्भव नहीं है कि निराशामें वह आत्महत्यातक कर डालनेपर उतारू हो जाय, परंतु श्रद्धावान् पुरुष निराश नहीं होता, सङ्कटकालमें उसे अपने विश्वाससे आश्वासन मिलता है।

―★―

स्वामी श्रीशिवानन्दजी

१—प्रत्येक मानव-प्राणीके लिये ईश्वरमे विश्वास करना अनिवार्य है। इसके बिना मनुष्यका चल ही नहीं सकता। अविद्या अथवा अज्ञानके प्रभावसे मनुष्यको दु.ख सुख-सा प्रतीत होता है। जगत् दुःख, शोक, विपत्ति और क्लेशोसे पूर्ण है। जगत् आगका गोला है। राग-द्वेष, क्रोध-ईर्ष्या और मत्सरसे भरा हुआ अन्त.करण जलती हुई भट्ठी है। विषयी पुरुष भ्रमके कारण मोहमें पड़ रहे हैं। जन्म-मृत्यु, जरा, रोग और शोकसे हमे स्वयमेव मुक्त होना है। यह केवल ईश्वरमे विश्वास करनेसे ही हो सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। धन और ऐश्वर्यसे हमे यथार्थ सुख नही मिल सकता। यहाँतक कि यदि हमें सार्वभौम राज्यकी भी प्राप्ति हो जाय तो उससे भी हमे चिन्ता, क्लेश, दुःख, शोक, भय और निराशा आदिसे छुटकारा नहीं मिल सकता। केवल ईश्वरमे श्रद्धा तथा ध्यानके द्वारा भगवत्-प्राप्ति होनेसे ही यथार्थ शाश्वत सुखकी प्राप्ति हो सकती है तथा हम सब प्रकारके भय और चिन्तासे त्राण पा सकते हैं, जो प्रतिक्षण हमे जलाते रहते हैं। ईश्वरमे श्रद्धा होनेसे हम उसका सतत चिन्तन करनेके लिये तथा उसका ध्यान करनेके लिये प्रेरित होते हैं और फलत. हमे भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

ईश्वरमे और ईश्वर-प्राप्तिमे श्रद्धा रखनेसे हमें परम शान्तिकी प्राप्ति होगी, उस शान्तिके प्राप्त होते ही समस्त दु ख निर्मूल हो जायँगे, फिर हमारा भटकना बंद हो जायगा। हम कर्मके बन्धनसे छूट जायँगे, हम अमर हो जायँगे। हमे शाश्वत दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति होगी। हम एक ऐसे

पदको प्राप्त होंगे जहाँसे पुनः इस दुःखमय लोकको लौटना न होगा, क्योंकि दिव्य ज्ञानके द्वारा हमारे पापोंका नाश हो जायगा। हमारा मन सदा समाहित रहेगा। फिर हमें न तो सुखकी प्राप्तिमें हर्ष होगा और न दुःखकी प्राप्तिमें विषाद ही। हमारा अन्तःकरण हिमवत् शीतल हो जायगा और हम दिव्य चेतनामें सदा अवस्थित रहेंगे। हमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होगी। हम ईश्वरके साथ एक-रस हो जायँगे तथा हमें नित्य अनन्त अक्षय आनन्दकी प्राप्ति होगी। दिव्य चेतनामें अवस्थित होनेपर हम भारी-से-भारी दुःखमें भी विचलित न होंगे। हमें अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति होगी।

यदि हम अनन्य चित्तसे दृढतापूर्वक भक्तिभावसे ईश्वरकी अर्चना करेंगे तो वे हमें पूर्ण अभय प्रदान करेंगे। ईश्वर हमें बुद्धियोग प्रदान करते हैं, जिसके द्वारा हम उन्हें सुगमतासे प्राप्त कर सकें। वे हमारे ऊपर कृपायुक्त हो, हमारे अज्ञानान्धकारको ज्ञानज्योतिके प्रकाशद्वारा नष्ट कर देते हैं। यदि हम दृढ भक्ति और श्रद्धापूर्वक अपने मनको उनमें लगायें तो वे संसार-समुद्रसे शीघ्र ही हमारा उद्धार करते हैं। हम तीनों गुणोंको पार कर जाते हैं तथा जन्म-मृत्यु, जरा-शोकसे छुटकारा पाकर अमर-सुधाका पान करते हैं। उनमें विश्वास करनेमें भक्ति और श्रद्धाके द्वारा हम उन्हें तत्त्वतः जानेंगे तथा उनमें प्रवेश करेंगे। उनकी कृपासे हम मार्गमें आनेवाली समस्त बाधाओंको दूर करेंगे तथा परमपद—परम-धामको प्राप्त होंगे।

२—यदि हम ईश्वरमें विश्वास न करेंगे तो हमें इस संसारमें बार-बार जन्म लेना पड़ेगा तथा नाना प्रकारके दुःख सहने पड़ेंगे। अज्ञानी, श्रद्धाहीन तथा संशयात्मा पुरुष विनाशको प्राप्त होते हैं। उन्हें तनिक भी सुखकी प्राप्ति नहीं होती। संशयात्माके लिये न तो इहलोक है और न

परलोक। जो पुरुप ईश्वरमे विश्वास नही करता, वह सत्य और असत्यको नही पहचान सकता, उसे विवेक-शक्ति नही रहती। ऐसे पुरुप असत्यवादी, अभिमानी और अहकारी होते हैं। उन्हे अतिशय काम, क्रोध और लोभ होता है। वे गर्हित उपायोसे धनका अर्जन और सग्रह करते है। वे आसुरी स्वभावके मनुष्य बन जाते हैं। वे नाना प्रकारके घोर पाप करते है। उनके जीवनका कोई आदर्श नही होता, वे आसुरी योनिको प्राप्त होते है तथा जन्म-जन्मान्तर मूढताको प्राप्त हो हीनतम नरकमे गिरते है।

३—लगभग डेढ सौ वर्ष हुए, दक्षिण-भारतके त्रिचनापल्ली जिलेमे कारुर स्थानके समीप नेरुर-ग्राममे सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वती नामके एक बहुत ही प्रसिद्ध ज्ञानी योगी रहते थे। उन्होने ब्रह्म-सूत्रवृत्ति, आत्मविद्या-विलास तथा अन्य बहुतेरे ग्रन्थोका प्रणयन किया था तथा नाना प्रकारके चमत्कार दिखलाये थे। एक बार जब वे कावेरीके तटपर समाधिमग्न थे कि बाढसे बहकर किसी दूसरे स्थानमे चले गये और बालूके नीचे गड गये। मजदूर खेत जोतनेके लिये गये और उन्होने योगीके सिरपर आघात किया और उससे कुछ रक्त निकल आया। उन्होने वहाँ खोदना शुरू किया और एक योगीको समाधिस्थ दखकर वे अत्यन्त चकित हुए।

दूसरी बार एक समय वे अवधूतके रूपमे नगे ही एक मुसल्मान सरदारके जनाना खीमेमे घुस गये। वह सरदार महात्माके ऊपर बहुत ही गुस्सा हुआ और उसने क्रोधमे उनकी एक बाँह काट डाली। सदाशिव ब्राह्मण बिना ही कुछ कहे-सुने वहाँसे चल दिये। उनके ढगसे मालूम होता था कि उन्हे तनिक भी कष्ट नही है। सरदार महात्माकी इस अद्भुत अवस्थापर अत्यन्त ही चकित हुआ। उसने विचारा कि यह

मनुष्य अवश्य ही कोई महात्मा है। उसे बडा ही पश्चात्ताप हुआ और उसने महात्मासे क्षमा माँगनेके लिये उनका पीछा किया। सदाशिवको पता ही न था कि उनकी बाँह कटी हुई है। जब सरदारने कैम्पकी सारी घटना उनसे कह सुनायी, तब सदाशिवने कह दिया कि 'हमने तो क्षमा कर ही रखी है' और उन्होंने अपनी कटी हुई बाँहको छू दिया। वहाँ तत्काल नयी बाँह निकल आयी।

इस महात्माके जीवन-चरित्रको जाननेसे मेरे मनपर गहरा प्रभाव पडा। मुझे दृढ विश्वास हो गया कि मन और इन्द्रियोंकी क्रीडासे तथा विषयोंसे परे एक स्वतन्त्र दिव्य जीवन है। वे महात्मा जगत्से नितान्त अनजान रहते थे। जब उनकी बाँह कट गयी थी, तब उन्हे तनिक भी उसका अनुभव नहीं हुआ था। वे दिव्य चेतनामे तन्मय थे। साधारण पुरुष शरीरमे एक सूईके चुभनेसे भी चीत्कार कर उठता है। आप्त पुरुषोंके द्वारा जब महात्मा सदाशिवकी इस अद्भुत घटनाको मैंने सुना और जब मैंने इसे पुस्तकोंमें पढा, तब मेरे मनमें एक दृढ विश्वास हो गया कि एक दैवी सत्ता तथा दैवी शाश्वत जीवन है, जहाँ समस्त दु ख विलीन हो जाते हैं, समस्त कामनाएँ परितृप्त हो जाती हैं तथा मनुष्यको परम आनन्द, परम शान्ति तथा परम ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

ईश्वरकी दया

निम्नलिखित विचारोंसे मुझे सदा ईश्वरकी असीम दयाका अनुभव होता है।

माताके गर्भमें कलल और भ्रूणका पालन तथा दस मासतक उनकी रक्षा कौन करता है?—ईश्वर! शिशुके उत्पन्न होनेके पूर्व माताके स्तनोंमें दूधका प्रबन्ध कौन करता है?—ईश्वर! भोजनको

रस और रक्तके रूपमें कौन परिणत करता है?—ईश्वर! रक्तको हृदयसे धमनीमे कौन प्रवाहित करता है?—ईश्वर! मलको तमाम अँतड़ियोसे अधोभागमे कौन पहुँचाता है?—ईश्वर! उस मेढकको जो अखण्ड चट्टानके भीतर रहता है, भोजन कौन पहुँचाता है?—ईश्वर! वह शरीरके भीतर मेहतरका काम करता है, वह बाह्य जगत्मे सूअरका रूप धारणकर प्राकृतिक मेहतरका काम करता है। वह नारंगी-अंगूरका रूप धारणकर तुम्हारे सूखे गलेकी प्यास बुझाता है। वह एक सावधान नौकरके समान तुम्हारी आँखोकी पलकोको बंद कर देता है, जिससे उनमे धूल न पडने पावे। वह तुम्हारे लिये सब कुछ करता है। उसकी असीम अनुकम्पा प्रत्येक वस्तुमे, सृष्टिके प्रत्येक परमाणुमें दीख पड़ती है। एक छोटे-से अपराध करनेपर भी तुम्हे अपने नौकरको क्षमा करना बहुत कठिन जान पड़ता है। तुम कितना क्रोध प्रकट करते हो; परंतु परमात्मा असंख्य जन्मोंके तुम्हारे करोड़ो घोर अपराधोको क्षमा कर देता है। वह कैसा अद्भुत धैर्यवान् है? उसकी अपूर्व करुणाको तो देखो! उसका सतत चिन्तन करते रहो। उसे सदा स्मरण करो। श्रद्धा और भक्तिके साथ उसके हरि, राम, नारायण, शिव प्रभृति नामोका जप-कीर्तन करो।

★

भक्तराज श्रीयादवजी महाराज

१—भगवान्‌को इसलिये मानना चाहिये कि इस सारे नाशवान् जगत्मे एक वही अचल सत्य है। उसे मानना चाहिये अपूर्णसे पूर्णतामे पहुँचनेके लिये, असत्यसे निकलकर सत्यमे पहुँचनेके लिये, मृत्युमेंसे अमृतत्वकी प्राप्तिके लिये, देहसे छूटकर आत्माको पानेके लिये, मायाके पुराने बन्धनोसे छूटकर मुक्त होनेके लिये, अधोगतिके घोर अन्धकारमय गहरे गढेसे निकलकर देवताओकी उच्च भूमिकाका दर्शन करनेके लिये, तिमिरसे निकलकर दिव्य ज्योति प्राप्त करनेके लिये, पाप-पथको परित्यागकर पुण्य प्रदेशमे प्रवेश करनेके लिये, मायासे मुक्त होकर महापद पानेके लिये और शोक, मोह, क्लेश, सताप, रोग, जरा, मरण आदि दु खोसे छूटकर परमधाममे—परब्रह्मके अनन्तकालीन अलौकिक दिव्य सुख, शाश्वती शान्ति एव अखण्ड आनन्दमे विहरनेके लिये।

इस प्रकार अपने श्रेयके लिये, हितके लिये या कल्याणके लिये परमेश्वरको मानना पडता है।

२—मनुष्य अपने प्रत्येक कर्मका जिम्मेवार है, इन्साफके समय उसे प्रभुके सामने हिसाब पेश करना पडेगा। यही समझकर ससारमें सारे पापोको छोडकर मनुष्य पुण्यमार्गपर चलता है।

परतु जब मनुष्य भ्रमवश यह मान लेता है कि परमेश्वर ही नहीं है, अपने किसी भी कर्मका जवाब पूछनेवाला ही कोई नहीं है, तब उसके लिये पाप-पुण्य-जैसी कोई चीज रहती ही नहीं। उसके लिये पाप-पुण्य दोनों समान होते हैं। धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, सत्य-असत्य आदिमें

आस्तिकके मनमे जो भेद रहता है, वह नास्तिकके मनसे निकल जाता है। वह उच्छृङ्खल हो जाता है।

ऐसा मनुष्य, किस समय, किस मुहूर्तमें कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर बैठेगा, यह कहना असम्भव है। ऐसे मनुष्य देश, समाज और कुटुम्ब ही नहीं, अपने लिये भी भयंकर होते हैं।

क्योंकि ज्यो ही मनुष्य धर्मकी मर्यादा और बन्धनोंसे छूट जाता है, त्यो ही वह स्वेच्छाचारी हो जाता है, फिर मनमानी करनेको उसके लिये दसो दिशाएँ खुली हो जाती हैं।

उसे दोप तो लगता नहीं, उसके सिरपर कोई इन्साफ करनेवाला है, इस बातको वह मानता नहीं; अन्तमें अपने कृत्योंके लिये कहीं जवाव-तलब होगा—यह बात उसे स्वीकार नहीं। फिर किसीका धन हर लेनेमे क्या आपत्ति है ? किसीके पास कोई अच्छी चीज देखी और उसको लूट लिया, इसमें क्या खराबी है ? किसीकी स्त्रीको उड़ा लेनेमे क्या हर्ज है ? और यदि किसीके साथ झगड़ा हो जाय, वैमनस्य या वैर हो तो उसे सदाके लिये हटा देनेमें—मार डालनेमें, काट डालनेमें ही कौन-सा दोष है ? कुछ नहीं।

सचमुच, मनुष्य जव यह मानने लगता है कि 'परमेश्वर नहीं हैं', तव वह मनुष्य न रहकर राक्षस बन जाता है। ऐसे नास्तिक जहाँ बढ़ जाते हैं, उस स्थानमें और नरकमें कोई विशेष भेद नहीं होता।

परमेश्वरको न मानना सर्वनाशको निमन्त्रण देना है।

३—शून्य अव्यक्तमेंसे व्यक्त सृष्टि कहाँसे पैदा हो गयी ? मांस-मूत्र और विष्ठामें मनुष्य बन जाता है, उसमें जीव आ जाता है, फिर देखो तो वह अपार विचारवान्, अगाधबुद्धि और अत्यन्त चतुर होता है। ये सब बातें उसमें कहाँसे आयीं ?

एक ही वीर पुरुष रणक्षेत्रमे सहस्रो मनुष्योंको मार देता है, उसमें यह शक्ति कहाँसे उत्पन्न हो गयी ? फिर जब वही ढल पडता है, तब उसे श्मशानमें ले जानेके लिये उठानेको उलटे चार आदमी बुलाने पडते हैं; अब उसकी वह शक्ति कहाँ चली गयी ?

एक राजा लाखों मनुष्योंपर हुकूमत चलाता है, परंतु मरनेपर उसकी कीमत भी मिट्टी बराबर हो जाती है। उस समय वैद्योंको बुलाइये, वे कपालपर हाथ रखकर कहेगे—'मरे मनुष्यपर हमारी दवा कोई काम नहीं करती। जबतक जीव होता है, तभीतक दवाएँ कारगर होती हैं।' वैद्य यदि जिला सकते हो अथवा उनकी दवाओमें यदि जीवन देनेकी शक्ति हो तो मृत देहपर उनका असर क्यो नहीं होता ? क्या उस समय औषधका तत्त्व निकल जाता है ? क्या वैद्योकी होशियारी मारी जाती है ?

अन्धेरेमे दीपक झलमलाता है, वैसे ही शून्यमेसे एकाएक चेतन प्रकट होता है। जैसे दीपकके बुझते ही अन्धकार छा जाता है, वैसे ही चेतनके निकल जानेके साथ ही देहके लिये समस्त सार वस्तुएँ असार हो जाती हैं। ऐसा वह जीवन-तत्त्व क्या वस्तु है ?

पञ्चभूतोसे प्राणी बनते हैं, वैज्ञानिक कहते हैं कि हमने पाँच तत्त्वोपर विजय प्राप्त की है, उनको अपने वशमे कर लिया है। पवन, जल, अग्नि और आकाशी तत्त्व आज मनुष्यके दास बनकर नौकरोकी भाँति काम कर रहे हैं, यह हमारा प्रताप है।

इन वैज्ञानिकोसे पूछिये, क्या आप इन तत्त्वोसे प्राणियोकी रचना कर सकते हैं ? क्या आप मृत देहको जीवित कर सकते है ?

जीव क्या है ? कहाँसे आता है ? किस तरह आता है ? देहमें कब और कैसे प्रवेश करता है ? मरनेके समय वह देहसे निकलकर

कहाँ जाता है ? इन प्रश्नोका निश्चित उत्तर आप दे सकते हैं ? हमारी नजरके सामने मनुष्य मरते हैं, परंतु किसीने जीवको जाते देखा है ? उसे रोकनेकी शक्ति किसीमे है ? देहमेसे निकलनेके बाद कोई वापस उसी देहमे प्रवेश कर सकेगा ? दुनियामे बड़ी-बड़ी खोज हुई है, हजारों नये हुनर और सहस्रो गुप्त कलाएँ मनुष्यके हाथ लगी हैं, यह सत्य है; परतु बडी-बडी डींग हॉकनेवाले वैज्ञानिक, बहुमूल्यवान् ओषधियाँ रखनेवाले प्राणाचार्य वैद्यराज एवं चतुर कलाकार आदिसे यह प्रश्न है कि क्या आप जीवन-मरणके भेदका पता पा सके हैं ? उसका सचालन-सूत्र क्या आपके हाथमे है ? आप इस विषयमें अपने इच्छानुसार कर सकते हैं ? आप इसका उत्तर दे सकते हैं ? सभी सिर हिलाकर अपनी असमर्थता प्रकट करेंगे। सभी कबूल करेंगे कि हमारा ज्ञान अपूर्ण है, हम अपूर्ण हैं, हमारी समझ अभी अधूरी है।

इस प्रकार हार मानकर जहाँ मनुष्यमात्र अपनी असमर्थता घोपित करते हैं, वहाँ हमें यह निश्चय विश्वास होता है कि इस विश्वका संचालक और नियन्ता कोई है। जगत्मे नित्य होनेवाली अद्भुत घटनाएँ इस महासमर्थ प्रभुके अस्तित्वकी साक्षी दे रही हैं और दृश्यमे क्रीड़ा करनेवाला समस्त क्रीडाओका सूत्र उस सर्वशक्तिमान् महान् परमात्माके हाथमें है, इस बातको साबित कर रही हैं।

—★—

स्वामीजी श्रीभोलानाथजी महाराज

१ प्रश्न—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

उत्तर—रोटी क्यो खानी चाहिये ? पानी क्यों पीना चाहिये ? श्वास क्यो लेना चाहिये ? सोना क्यों चाहिये ? इन प्रश्नोका यही उत्तर मिलता है कि क्षुधाका कष्ट विवश करता है कि खाना खाओ। प्यास पानी पीनेको विवश करती है। जीवन श्वास लेनेको विवश करता है। थकावट सोनेको विवश करती है। इसी प्रकार कष्ट और दु खका ससारमें अनुभव और दु खका ससारमे होना विवश करता है कि ईश्वरको जानो। यदि ससारमें दु ख न होता अथवा ससारमें दु खका प्रतीकार होता तो अवश्य इस प्रश्नकी उपेक्षा कर दी जाती, परतु आजतक किसी दार्शनिक महात्मा या वैज्ञानिकने हमको यह नहीं बताया कि ससारमें कष्टको दूर करनेका क्या उपाय है।

इसमें सदेह नहीं कि विज्ञान (साइन्स) ने दु खको कम करनेकी बहुत-सी रीतियाँ समझायीं, अपितु शुद्धभावसे बहुत सीमातक इस दु खको दूर करनेका प्रयत्न किया, जिसके लिये हमारे हृदयमें असीम कृतज्ञता है, परतु शोक ! ऐसा करनेसे ससारका दु ख कम न हुआ। बाह्य उन्नतिसे हार्दिक उन्नति न मिली। विज्ञानने क्या किया—हवाई जहाज बनाये, रेलें बनायीं, तार बनाये, जहाज बनाये, बिजलियाँ निकालीं इत्यादि। इनसे मनुष्यको बहुत आराम मिला। दु ख कम हुआ, परतु क्यों इन बातोंसे हार्दिक शान्ति नहीं मिली ? सकल सुख-साधन-सम्पन्न व्यक्ति भी हैरान हैं और पूछते हैं कि शान्ति कहाँ है ?

पूर्वकालमें यदि युद्ध होते थे तो शस्त्र कम होनेके कारण लोगोंपर आक्रमण निर्बलरूपमे होता था और जीवन कम नष्ट होते थे। अब विज्ञानने इस प्रकारके शस्त्रास्त्र प्रत्येक देशमे तैयार कर दिये, जिनसे बहुत अधिक मनुष्योका सहार सामान्य-से प्रयत्नसे हो सकता है। यह मानव उन्नति मनुष्यकी ही हत्याके लिये हुई। विषय-भोगकी सामग्री जितनी बढी, उतनी ही ईर्ष्या, एक-दूसरेसे बढनेकी डाहभरी इच्छा बढती गयी। परिणाममें एक-दूसरेसे हार्दिक वैर हो गया। मेरा यह तात्पर्य नहीं कि यह सब व्यर्थ हुआ, पर हॉ, इससे चैन नहीं मिला।

जिस शान्तिकी खोजमें विज्ञान और ससारका प्रत्येक परमाणु लगा हुआ है, वह ससार और उसके पदार्थोमे विद्यमान नही है, परतु इस वैज्ञानिक उन्नतिने हमें वह शिक्षा दी, जिसकी प्राप्ति अन्य हर प्रकारसे कठिन थी। इसका कहना है कि तुमलोग जिन पदार्थोमे आराम चाहते हो, वह इनमे नहीं, देख लो, मैने ससारकी आत्यन्तिक उन्नतिका दृश्य तुमलोगोके सम्मुख ला रखा है, परतु फिर भी उस सुखका कोई पता ही नही मिला, जिसकी खोजमे स्वभावत ही प्रत्येक व्यक्ति है। यदि यह उन्नति न होती तो यह विचार बना रहता कि शायद इस प्रकारकी उन्नति होनेसे वह सुख मिल जाता। विज्ञानने बहुमूल्य अनुभव अपने सच्चे और न थकनेवाले प्रयत्नोसे हमारे समक्ष रखा है, जिसके लिये इस (विज्ञान) को अपार धन्यवाद है। लौकिक दृष्टिसे सुख-साधनमे जो उन्नति हो सकती है, वह इसने प्रस्तुत की, परतु फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इससे सुख मिल गया ?—जिसका उत्तर चारो ओरसे यही मिलता है कि 'नहीं।'

क्या आप इस दु खमे प्रसन्न रह सकते हैं ? नहीं। क्या आप सुखकी खोज और इच्छाको छोड सकते हैं ? नहीं।

अब ससारमें तो सुख नहीं और सुखकी खोज छूटती नहीं, फिर क्या करें ? इसका उत्तर यही मिलता है कि या तो भटक-भटककर उस मृगकी भाँति मर जायँ, जो प्यासका मारा मरुभूमिमें माया-मरीचिकाके पीछे दौडता है, पर वहाँ कहीं भी उसे पानी नहीं मिलता और इससे तडपकर प्राण त्याग देता है और या किसीसे पूछकर जलकी खोज करें।

अब इस प्रश्नका क्या उत्तर है ? क्या आप ससारमें सुखको पा सकते हैं ? या किसीने पाया है ? अथवा इस सुखकी खोजको छोड सकते हैं ? तो उत्तर केवल 'नहीं' मिलता है। हाँ ! इस उत्तरमे कितनी बेबसी और कितना दु ख है, परतु इसका यही एक उत्तर है कि कोई प्रश्न बिना उत्तरके नहीं हो सकता। जिसका उत्तर नहीं, वह प्रश्न ही नहीं। कोई आवश्यकता बिना पदार्थके उत्पन्न नहीं हो सकती। जिसके प्रति पदार्थ नहीं, वह आवश्यकता ही नहीं।

यह सिद्धान्त माना हुआ है, थोडे-से मननके पश्चात् समझमें आ सकता है।

फिर इस प्रश्नका उत्तर क्या है कि सुख कैसे मिले ? उत्तर केवल यही है कि ईश्वरको जानो। ईश्वर हमारी उस आवश्यकताकी पूर्ति है, जो ससारसे पूरी नहीं हो सकती। मेरे विचारमें अब तो समझमें आ गया होगा कि हमें ईश्वरको क्यो जानना चाहिये।

किसीने पूछा किसीसे जाकर हुसूले[1] वहदतमे लुत्फ[2] है कुछ ?
लगे वो कहने तलाशे[3] कतरामें बहर[4] मिलना मलाल[5] है क्या ?

१—एकत्वप्राप्ति। २—आनन्द। ३—बूँदकी खोज। ४—समुद्र। ५—रज।

२ प्रश्न—ईश्वरको न माननेसे क्या-क्या हानियाँ हैं ?

उत्तर—यह स्वयमेव विदित हो जायगा जब कि प्रथम उसके जाननेके लाभ ज्ञात हो जायँगे, परतु इस प्रश्नपर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि ईश्वर क्या वस्तु है ? ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, दयालु और मोक्षके देनेवाले हैं। अत ईश्वरसे मिलनेके लाभ हुए कि हमको वह आनन्द मिलेगा जिसकी हमको खोज है, और उस सर्वशक्तिमान्से सम्बन्ध जोडनेसे हमारी निर्बलताएँ दूर होंगी और सर्वव्यापक समझनेसे पाप कम होंगे, चित्त प्रसन्न रहेगा, दयालु समझनेसे धैर्य स्थिर रहेगा और न माननेसे इसके विपरीत सब बातें होंगी अर्थात् अशान्ति रहेगी जो कि सब दु खोकी जननी है।

३ प्रश्न—ईश्वरके अस्तित्वमे प्रमाण क्या है ?

उत्तर—ईश्वरकी सत्ताका मुख्य प्रमाण तो हमारी आवश्यकता तथा हमारी इच्छा है, जिसका उत्तर ससारमे नहीं मिलता। दृष्टान्तके रूपमें पतङ्गके हृदयमे दीपकके प्रति प्राकृतिक प्रेम है। वह प्रत्येक वस्तुके पास बैठा हुआ यह समझता है कि मैं इसके लिये नहीं और न यह मेरे लिये है, क्योंकि उसको उसमे शान्ति नहीं मिलती, परतु जिस समय वह दीपकको देखता है तो तत्क्षण समझ लेता है कि यह वही वस्तु है जिसके लिये मैं बेचैन था।

सक्षेपत जीवकी स्वाभाविक परमानन्दकी इच्छा ही ईश्वरके अस्तित्वका मुख्य प्रमाण है, क्योकि ससारकी कोई वस्तु पूर्ण आनन्द नहीं दे सकती।

दूसरे—ससारका दृश्य और उसका नियम ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण बनता है। बताइये, वह कौन शक्ति है जिसने शिशुके लिये जन्मते ही

स्तनोमे दूध उत्पन्न किया ? नेत्रोंके लिये सूर्य किसने बनाया ? जीवनके लिये वायु किसने उत्पन्न की ? इत्यादि।

वह शक्ति निर्जीव है या सजीव अर्थात् जड है या चेतन ? यदि निर्जीव या जड है तो उसने यह समझा क्योकर ? और यदि चेतन है तो वह अल्पशक्ति है या सर्वशक्ति ? पुन यदि अल्पशक्ति है तो उसने यह सब कुछ कैसे बनाया ? और यदि सर्वशक्ति है तो फिर वही ईश्वर है।

तीसरे—दूधमे माखन होता है, पर दिखायी नहीं देता, परतु बिलोनेसे मिल जाता है। इसी प्रकार ईश्वर हृदयमे विद्यमान है, परतु हृदयकी शुद्धिसे मिलता है। हम नेत्र बद करके सूर्यकी सत्ताका प्रमाण पूछते हैं। यदि कोई अधा सूर्यको उसके प्रकाशसे नहीं देख सकता तो फिर मोमबत्तीसे उसको कैसे देखेगा ?

चौथे—अच्छा ! जलके अस्तित्वका प्रमाण क्या है ? प्यास। और वायुकी सत्ताका प्रमाण ?—श्वास लेनेकी आवश्यकता। इसी प्रकार हमारी निर्बलताएँ और ससारमे आनन्दका अभाव उसकी सत्ताका बडा प्रमाण है। विन्दु समुद्रका प्राकृत प्रमाण है। किरण सूर्यको प्रकाशित करती है। व्यष्टि समष्टिका प्रमाण है। अत हमारा जीवतत्त्व ही ईश्वरत्वका प्रमाण है। यदि ईश्वर न होता तो हम ससार और उसके पदार्थोंमे ही प्रसन्न रहते, क्योंकि फिर हमारा मूलतत्त्व यह ससार ही होता और प्रत्येक मनुष्य अपने मूलसे मिलकर प्रसन्न होता, परतु यहाँ कोई प्रसन्न नहीं। वह किसी अन्य वस्तुको पाना चाहता है। राजा, महाराजा, महात्मा, दार्शनिक विद्वान्—सब किसी वस्तुकी खोजमें हैं। वह वस्तु क्या है ?—ईश्वर। यह आँखमिचौनीका खेल है। हम उसको बाहर ढूँढते हैं, वह हृदयमे छिपा बैठा है, क्योंकि वह यह जानता है कि यहाँ मुझे ढूँढने सहसा कोई आयेगा नहीं। कौन समझ सकता है

कि जिसको मुझे पकड़ना है, वह मेरे ही अंदर आकर छिप गया होगा ? यदि कोई ईश्वरके अस्तित्वको समझना चाहे तो वह प्रथम उसकी आवश्यकता प्रतीत करे, जिस प्रकार तृषार्तको जलकी होती है और क्षुधापीड़ितको भोजनकी। तत्पश्चात् एकान्तमें जाकर ईश्वरसे प्रार्थना करे—व्याकुलताके साथ—तड़पके साथ—आँसुओंके साथ करे और कहे कि हे ईश्वर ! मुझे आपकी आवश्यकता है; मेरी बुद्धि मुझे भ्रान्तिमें डालती है, मेरी निर्बलताकी ओर देखकर मुझे अपनी सत्ताका प्रमाण दो। मैं आपकी परीक्षा नहीं लेता, अपितु विश्वास चाहता हूँ—

माना कि तेरी दीदके[१] काबिल[२] नहीं हूँ मै,
तू मेरा शौक़[३] देख मेरा इन्तजार[४] देख।

इसके पश्चात् यदि आपको अपने जीवनमें इस प्रकारके वृत्तान्त मिलने लगें, जो आपको स्वयमेव विश्वास दिलाते जायँ तो आपको अपने-आप ही ज्ञात हो जायगा कि ईश्वर है और सच्चा विश्वास भी वही होता है जो अनुभवके आधारपर स्थापित हो। जो कहते हैं कि ईश्वर है, उनसे मिलो, और अतीव नम्रतापूर्वक याचना करो कि हमको भी दिखाओ—वह कहाँ है। फिर जिस प्रकार वे कहें, करो, और उसके पश्चात् परिणामको देखो। इन महानुभावोंके मिलनेसे पूर्व यदि आपको उसकी सत्ता स्वीकार करना कठिन होता हो तो नकार भी किस बलपर करते हैं ?

उसकी सत्ताका प्रबल प्रमाण उसकी सत्ताको न माननेवाले हैं, क्योंकि जिन शक्तियों—अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि आदिद्वारा वे अस्वीकार करते हैं, वे शक्तियाँ ही उसके अस्तित्वके प्रमाण हैं।

१—दर्शन। २—योग्य। ३—उत्सुकता। ४—प्रतीक्षा।

क्योंकि उनकी रचनामे पूर्ण रचयिता (ईश्वर) के स्पष्ट दर्शन होते हैं, और दूसरे, ये नास्तिक ही तो उसके लिये स्वीकृतके प्रमाण उत्पन्न करनेवाले हैं। यदि ये नकार न करे तो आपको अस्तित्वके लिये युक्तियाँ कहाँसे सूझे ? सच बात तो यह है कि ये नकार करनेवाले अपने नकारके तानेसे उसको प्रकट करते हैं। यदि ये नकार न करें तो उसको अपना आगा क्यो दिखाना पडे ? इसका ऐतिहासिक प्रमाण भी यह मिलता है कि जब-जब नास्तिकता प्रबल हुई, तब-तब आस्तिकताका भी बल बढा। वस्तुत ईश्वर भी तो इन्हींसे मिलने आते हैं। अज्ञान ज्ञानको उत्पन्न करता है, अन्धकार प्रकाशको और अविद्या विद्याको। यदि पहले न हो तो दूसरे क्यों आयें ?

वस्तुत ये न माननेवाले (नास्तिक) उन माननेवाले (आस्तिकों) से श्रेष्ठ हैं, जिनको उसकी सत्तामें विश्वास ही नहीं, क्योंकि पहले सच्चे हैं और दूसरे झूठे। पहले समझते नहीं, इसलिये अङ्गीकार नहीं करते, दूसरे जानते नहीं, किंतु स्वीकार करते हैं। झूठे दावेदार ईश्वरको मानते-मानते सत्का भी त्याग कर बैठते हैं। उनकी अपेक्षा ईश्वर न माननेवालों (नास्तिको) को शीघ्र मिलेगा, क्योंकि ये सच्चे तो हैं। झूठे दावेदार लोगोंको पहले नकार करना पडेगा अर्थात् सच्चे बनना पडेगा, फिर ईश्वर इनको मिलेगा।

(२) ये नकार करनेवाले किससे नकार करते हैं ? ईश्वरसे अर्थात् इनका नकार ईश्वरसे स्थिर होता है। नकार स्वय कुछ वस्तु नहीं। नकार किससे स्थिर होता है। 'ईश्वर नहीं' इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर 'नहीं' को स्थिर कर रहा है—नि सदेह 'नहीं' के रूपमें। अत जिससे 'नहीं' स्थिर हुआ, उस 'नहीं' से वह कैसे मिटा ? जब कि ईश्वर सत्तामात्र है, तब यह 'नहीं' भी तो बिना सत्ताके व्यक्त नहीं हो सकता। अत

जिसकी सत्तामात्रसे 'नही' कहते है, वही ईश्वर है।

नास्तिक कहता है, वह है नही। हम कहते है—कौन नही ? वह कहता है ईश्वर नहीं। हम कहते हैं ईश्वर सत् है, अत तुम सत्तासे क्योंकर नकार कर सकते हो जब कि तुम्हारा नकार भी अपने अस्तित्वके लिये सत्ताके अधीन है। अब या तो तुम्हारा नकार 'है' या 'नहीं' है। यदि नहीं है तो भी ईश्वर स्थिर रहा। यदि नकार 'है' तो भी स्थिर रहा, क्योकि 'है' से 'नही' और 'है' दोनो सिद्ध होते है।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है, अत 'सत्' उसका पहला गुण है। ससारमे प्रत्येक वस्तु अपने अस्तित्वकी सिद्धिके लिये उस सत्‌रूपी परमात्माकी अपेक्षा करती है। अँगूठी बनकर स्वर्णकी सत्ताका प्रमाण पूछती है तो क्या वह हास्यका विषय नही ! बुलबुला जलका प्रमाण पूछे। घडा मिट्टीका प्रमाण पूछे तो आप क्या कहेगे ! जब कि ये प्रथम उनको सिद्ध करके स्वयं सिद्ध होते है। पुत्र उत्पन्न होकर पितासे किस प्रकार नकार कर सकता है ?

सच्चा प्रमाण—ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण, उसके भक्त और उनके हृदय है, जहाँ वह बैठकर लोगोको अपने दर्शन देता है। जिन मनुष्योको कोई आस्तिक न बना सका, उनको इन (भक्तो) की एक दृष्टिने परिवर्तित कर दिया। विश्वास दिया, श्रद्धा-दान दिया—

अर्जो[१] समा कहाँ तेरी बुसअतको[२] पा सके।
मेरा ही दिल है वो कि जहाँ तू समा सके॥

ईश्वरके नामकी उन्नतिका कारण नास्तिकजन है, क्योकि जितना ही ये नकार करते है, उतना ही उसकी सत्ताकी चर्चा बढती जाती है अर्थात् न मानने और माननेवाले दोनो नाम लेने लगते है। ईश्वर सर्वव्यापक

१—भूमि, आकाश। २—विस्तार।

है, अत उसको सर्वत्र होना चाहिये—इस हेतुसे वह नास्तिकके साथ 'नहीं' मे और आस्तिकके साथ 'है' के रूपमे विद्यमान है। दृष्टिको सत्ताका प्रमाण अन्य वस्तुएँ है। यदि कोई वस्तु सम्मुख न हो तो दृष्टिका ज्ञान ही नहीं हो सकता। श्रोत्र (कानो) की सत्ताका प्रमाण शब्द है। यदि शब्द न हो तो कान (सुननेकी शक्ति) का ज्ञान कैसे हो। इसी प्रकार ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण नकार और अङ्गीकार करनेवाले है। यदि ये न हो तो उसका ज्ञान क्योकर हो ?

एक नास्तिकने प्रश्न किया कि आप मुझसे प्रेम क्यो करते हैं ? मैने कहा कि जिसकी सत्तासे आप 'नाही' करते है, मे उसीको आपमे देखकर प्यार करता हूँ।

वस्तुत ईश्वरकी सत्ता युक्तियोकी अपेक्षा नही करती, अपितु युक्तियाँ अपने अस्तित्वके लिये उनकी अपेक्षा करती हैं। युक्तियॉ मस्तिष्कसे निकलीं। मस्तिष्क शरीरसे सम्बन्ध रखता है। शरीर ससारसे और ससार ईश्वरसे। यदि ईश्वर न होता, ससार न होता, अत शरीर न होता और मस्तिष्क भी न होता तो फिर युक्तियॉ कहॉसे आती ? अत ईश्वरकी सत्ता युक्तियोके अधीन नही, अपितु ये सब वस्तुएँ उसकी सत्ताके अधीन है, वह ससारके प्रत्येक परमाणुमे बैठकर 'मे हूँ', 'में हूँ' कह रहा है, किंतु हम 'नाम-रूप' को देखकर उसको भूल जाते है। यदि आप चाहते है कि सिनेमाके पर्देपर चित्र आवे तो खिडकियॉ बद करके देखिये। जब बाह्य प्रकाश बद हो जायगा, चित्र प्रकट हो जायँगे।

इसी प्रकार जब इन्द्रियॉ बाह्य प्रकाश अर्थात् इच्छाओको लाकर मनपर फेकना बद कर देती है, तब उसकी सत्ताका प्रमाण मिल जाता है।

ईश्वरको पानेसे पूर्व उसकी इच्छाको उत्पन्न करना आवश्यक है। चक्षु सूर्यकी सत्ताका प्रमाण है, परतु उसके प्रकाशसे उसको देखता है।

नेत्रमें सुर्मा जिस दृष्टिको बढाता है, उसीसे छिप जाता है। वस्तुत ईश्वरकी सत्ताका बडा प्रमाण वे महात्मा है, जिन्होने अपने-आपको उसके मार्गमें मिटा दिया है। ये महात्मा कैसे मिले और उनकी पहचान क्या है ? इसका उत्तर यह है कि इच्छा होनेपर ये स्वय ही मिल जाते है और उनकी पहचान केवल यह है कि सम्मुख आते ही हृदय उन्हे मान लेता है, जिससे बडी गवाही कोई नही। किसी व्यक्तिने किसी महात्मासे प्रश्न किया कि 'महाराज ! ईश्वरकी सत्ताका बडा प्रमाण क्या है ? हम उसको क्योकर माने ? उन्होने कहा—'बेटा ! तुम मुझे अपने *जीवनकी कोई ऐसी घटना सुनाओ जब कि तुमपर कोई घोर कष्ट आया* हो।' उसने कहा—'महाराज ! एक बार मैं जहाजपर सवार था। जहाज नष्ट हो गया, मेरे सम्मुख एक तखता था, मैंने तैरकर उसको पकडना चाहा। उस समय मुझको बहुत कष्ट हुआ था।' महात्माजीने कहा—'बेटा ! उस समय तुम्हारे अदर क्या भाव उत्पन्न हो रहा था ?' उसने कहा—'महाराज ! यही कि कोई बचावे, कहीसे सहायता मिले, कोई हाथ पकडनेवाला प्रकट हो अर्थात् हर प्रकार हृदय सहायताको चाहता था और बार-बार किसीकी ओर सम्बोधित होता था।' महात्माने कहा—'बेटा ! वही ईश्वर है अर्थात् जिस समय तुम अपनी विवशताको अनुभव करते हो, उस समय जिसकी ओर तुम्हारा हृदय सम्बोधित होता है और सहायता माँगता है, वही ईश्वर है। यह सहायता मिलनेका विचार प्राकृतिक है, कल्पित और बुद्धिसम्बन्धी नही। अत इस स्वाभाविक इच्छाका जो प्रतीकार है, वही ईश्वर है। यदि कोई ईश्वर न होता तो मनुष्यमे अपनी विवशताके समय ईश्वरका विचार ही उत्पन्न न होता। तुम्हारी विवशता ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण है। दूसरे, जो तुम्हारे सकल्पोके विरुद्ध करता है, वही ईश्वर है। अर्थात् जिस समय तुम

विचार करते हो कि मैं यह अवश्य करूँगा और उसके लिये सब साधन भी विद्यमान होते हैं, ऐसे समयमे जो उस सारे सकल्पोको तोड देता है और परिणाम तुम्हारे विचारके विरुद्ध निकालता हे, वही ईश्वर है।'

देखिये तो आपके सम्मुख एक कुर्सी है। आपने उसके बनानेवालेको नही देखा, परतु उसकी रचना और निर्माणशैलीने तत्काल निर्णय कर दिया है कि इसका कोई कर्ता अवश्य है। फिर इतनी सुन्दर सृष्टिको देखनेसे क्या उसके बनानेवालेका ज्ञान नहीं होता ? कुछ लोग कहते है कि सृष्टि स्वयमेव बन गयी है। क्या कोई वस्तु स्वय बन सकती है ? अच्छा, यदि यह ठीक है तो मैं पूछता हूँ, सृष्टि इच्छासे बनी या बिना इच्छाके ? इसका बनना सिद्ध करता है कि वह पहले न थी। अर्थात् जब सृष्टि न थी, तब सृष्टि स्वय बन गयी। 'स्वयम्' शब्द सृष्टिके अभावमे किससे सम्बन्ध रखेगा ? सृष्टिने स्वय सृष्टिको बनाया या किसी अन्यने ! स्वय बनानेके ये अर्थ है कि मैं अपने कधेपर आप सवार हूँ। यदि किसी अन्यने बनाया तो वही ईश्वर है। यदि कोई यह कहे कि नही, अनादिकालसे सृष्टिका प्रवाह इसी प्रकार चला आ रहा है, इसलिये किसी कर्ताकी आवश्यकता नहीं, तो क्या मै पूछ सकता हूँ कि सृष्टि सावयव है या निरवयव ? यदि निरवयव है तो बनना असगत हो गया और यदि सावयव है तो इसके अर्थ ये हें कि कभी इसके अवयव मिले और कभी पृथक् हुए। अब वह मिलाने और पृथक् करनेवाली शक्ति कौन है ? जड प्रकृतिमे तो सकल्पका अभाव है। अमुक रूप इस प्रकार है और अमुक इस प्रकार, ऐसा कोई सकल्प जडमें नहीं हो सकता और यहाँ तो अखिल सृष्टि विधिपूर्वक बनी है। नेत्रके लिये सूर्य, श्रोत्रके लिये शब्द, जीवनके लिये वायु, प्यासके लिये पानी इत्यादि। दिनके लिये सूर्य, रात्रिके लिये चन्द्रमा। पुन आकर्षण

अर्थात् law of gravitaion के सिद्धान्त और ससारका इस प्रकार स्थिर रहना, ऋतुओका समयपर बदलना क्या जड प्रकृतिका खेल है ? अत सृष्टि अपना कारण आप नहीं बन सकती, इसलिये इसका कर्ता ईश्वर है।

(३) ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण वे महात्मा हैं, जो कहते है कि हमने उसको जाना है। नास्तिक तो केवल यही कहते हैं कि हमारे अनुभवमें कोई ईश्वर नहीं आये, पर इनसे बडे प्रेमसे केवल इतना ही पूछना है कि कभी उन्होने उसके मार्गपर चलकर उसके देखनेका प्रयत्न किया, जिसका वर्णन महात्माओंने अनुभव करके लिखा है ? जाइये और टुक उनसे पूछिये, फिर यदि समझ न आयी तो नकार कर देना।

तेरी नासिहा ! यह चुना ओ चुनी।
कि है खुदपसन्दी के ये सब करीं॥
न देगी दिखाई तुझे ये कहीं।
सुझाया किसीने कभी जो कहीं॥

अर्थात् हे उपदेशक ! तेरी ये युक्तियाँ और कुतर्क सब अहमानिताको अलकृत करनेवाली हैं। ये तुझे दिखायी भी न देगी, जो कभी किसी (गुरु) ने बोध करा दिया अर्थात् फिर तर्क-वितर्ककी आवश्यकता न रहेगी—सब सशय निवृत्त हो जायँगे।

यह आपके सम्मुख एक पुष्प है। आप नेत्रसे उसमे वर्ण, श्रोत्रसे शब्द, जिह्वासे रस, नासिकासे सुगन्ध, त्वचासे कोमलता (नरमी) आदिका अनुभव करते हैं, परतु चक्षुके लिये केवल वर्णका ससार है और कुछ नहीं। यदि उससे पूछा जाय कि इसमे सुगन्ध आदि भी है ? तो वह स्पष्ट नहीं कर सकेगा, क्योंकि उसके लिये तो केवल रग एव रूपका ही ससार है। इसी प्रकार अपनी इन्द्रियोकी अवस्था है, परतु

जैसे नेत्रके शब्दसे नकार करनेपर भी श्रोत्र उसे अङ्गीकार करते हैं, उसी प्रकार कौन कह सकता है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके अतिरिक्त भी पुष्पमे और कोई वस्तु विद्यमान नहीं है ? जिस प्रकार शब्दसे चक्षुने नकार किया था और श्रोत्रने उसको अङ्गीकार किया था,' उसी प्रकार इन्द्रियाँ उस छठी (६ वीं) सत्तासे नकार करती है, परतु हृदयके नेत्र अर्थात् पवित्र हृदय—प्रेमपूर्ण हृदय—उसको अङ्गीकार करता है। सभी महात्माओने लिखा है कि उसको पवित्र हृदयसे जानो।

प्रथम हृदयको पवित्र करो। हृदयकी पवित्रता क्या वस्तु है ? नम्रता (विनय), प्रेम, विश्वास, प्रार्थना, सहनशीलता, आत्मसमर्पण। इन बातोको प्रथम अन्धविश्वाससे मान लेनेपर हृदय शुद्ध हो जाता है। इसके उपरान्त जिसकी सत्तासे नकार किया जाता है, वह स्वय ही स्वीकृति (आस्तिकता) में परिवर्तित हो जाती है।

एक घटना सुनाता हूँ। एक बार लाहौरमे कुछ प्रेमी मुझको सैरके लिये नहरपर ले गये और वहाँ जाकर कुछ फल खानेको दिये। उन फलोको देखकर मेरे मनमे गन्नेका ध्यान उत्पन्न हुआ। वह स्थान नगरसे बहुत दूर था, इसलिये गन्नेका लाना बहुत कठिन था। मैने मनसे कहा—'भाई। एक गन्नेके लिये अपना साम्राज्य क्यों बेचते हो ? जबतक तुम्हारे अदर कोई इच्छा नहीं, तुम राजा हो, क्योकि इच्छाकी दासतासे जगत्‌की दासता करनी पडती है।' मैने उस इच्छाको बडी सरलतासे उठाकर फेक दिया या ईश्वरार्पण कर दिया। अब सुनिये—वह प्रेमी जो मुझे मोटरमे नहरपर लाये थे, अपनी टोपीको सिरसे उतारकर कहने लगे, 'महाराज। यह मेली हो गयी है, और झट नहरमें फेंक दी। मैंने उनसे कहा कि 'आपने यह क्या किया ? अच्छा होता यदि आप इसको किसी निर्धनको दे देते, क्योकि उसके लिये

यह मुकुटका काम देती। चाहे आपके लिये यह एक अनुपयोगी वस्तु थी।' उनको अपनी इस चेष्टापर अनुताप हुआ और उन्होने टोपी पकड़नी चाही, परंतु टोपी उनसे रुष्ट होकर दूसरे तटपर जा लगी। इनको यह ध्यान हो गया था कि मैने अच्छा नहीं किया जो टोपीको इस प्रकार उतारकर फेंक दिया। इसलिये दौड़े और टोपीको लानेका यत्न किया। पार जानेके लिये एक पुल था जो कि बहुत दूर था,किंतु ये दौड़े और पुलपर जा पहुँचे। क्या देखते है कि वहाँ एक गन्नेवाला खड़ा है। उन्होने उससे कहा कि 'क्या आप मुझे टोपी निकालनेके लिये गन्ना दे सकते हैं, इसके अनन्तर मैं वापस कर दूँगा।' उसने देखा कि भले आदमी है और गन्ना दे दिया। उन्होंने गन्नेसे टोपीको निकाला और मुझे पुकारा कि 'महाराज ! क्या गन्ना चूसेंगे ? मै ले आऊँ ?' मैंने कहा—'जैसे आपका मन चाहे।' अस्तु, वह गन्ना लाये और आकर गीली टोपीको अपने सिरपर रख लिया। मैंने कहा—'यह किसी दरिद्र-को दे दो, आप क्यो पहनते हैं ?' उन्होंने कहा—'मुझसे अधिक दरिद्र कौन है ? मै इसे अवश्य पहनूँगा।' इधर टोपी उनके सिरपर थी, उधर गन्ना उनके हाथमें था। मै इस घटनाको देखकर हँसने लगा। उन्होने कहा—'महाराज ! आप क्यों हँस रहे है ?' मैंने कहा—'क्या बताऊँ। अभी-अभी गन्नेका विचार उत्पन्न हुआ था। यहाँ गन्ना मिलना कठिन था। मैने उस विचारका त्याग कर दिया अर्थात् ईश्वरार्पण किया। भगवान्‌ने गन्ना मुझतक पहुँचानेके लिये आपके अंदर यह विचार उत्पन्न किया कि आपकी टोपी मैली है और उसको आपके सिरसे नहरमे फिंकवाया और मुझसे यह कहलवाया कि 'अच्छा होता यदि आप इस टोपीको किसी निर्धनको दे देते।' तदनन्तर आपको पश्चात्ताप हुआ और आप पकड़ने भागे; परंतु टोपी दूसरे तटपर जा लगी; आपको यहाँ भी

सतोष न हुआ, इसलिये आप दौडकर पुलपर गये, वहाँ गन्नेवाला खडा था। आपने उससे गन्ना लेकर अपनी टोपी निकाली और उसके साथ गन्ना भी मोल ले आये। अब टोपी फिर आपके सिरपर हैं और गन्ना मेरे सामने है।' वे हँसकर कहने लगे कि 'यदि आपको गन्ना चूसना था तो आपने मुझसे क्यो न कहा, मै बाजारसे ले आता। मेरी टोपी क्यों फिकवायी ?' और हँसने लगे। मैने कहा—'यही ईश्वर है, जो हमारे सकल्पोको इस प्रकार पूरा करता है। कतिपय मनुष्य इसको सयोग वा 'यदृच्छा' (chance) कहते है, परतु इतनी नियमितता क्या 'सयोग' से सम्बन्ध रख सकती है, फिर 'यदृच्छा' तो वह वस्तु है 'जिसका कोई कारण न हो—और जिसका कारण नही, वह वस्तु ही मिथ्या है, वहम (भ्रम) है, धोखा है।'

एक दिन मुझे प्यास लगी। मेरे पास सुराही और गिलास था। मैने गिलासमे पानी डालकर पीना चाहा, सब प्रेमी उस समय मुझको सुलाकर चले गये थे। पानी पीते समय ध्यान आया कि जब मैं बच्चा हूँ, तब अपने हाथसे क्योकर पानी पी सकता हूँ। बुद्धिने कहा—'तो फिर यहाँ कौन-सी माँ बैठी है, जो पानी पिलायेगी।' मैंने कहा—'क्या यही आस्तिकता है कि यहाँ कौन-सी माँ बैठी है ? मेरी माँ तो हर समय उपस्थित है।' मैं पानी अवश्य पी लेता, परतु उस समय मैं अपने-आपको नन्हा बच्चा कल्पना कर रहा था, इसलिये मैंने पानी न पिया और माँके हाथोसे पानी पीनेका विचार किया। उधर प्यास पानीके लिये बेचैन कर रही है, इधर बचपनका विचार पीने नहीं देता। बुद्धि हँसी उडा रही है और मे चुपकेसे लेटा पडा हूँ। माँकी प्रतीक्षा है। कुछ ही मिनटके पश्चात् एक प्रेमी श्री आर० आर० खन्ना आकर कहने लगे—'महाराज! क्या पानी पीयेंगे ?' मैं हँसने लगा। उन्होंने कहा—'आप हँसते क्यों हैं ?' मैंने कहा कि 'मेरी माँ मुझको पानी

पिलाने आयी है, क्या आप नहीं देखते ?' बुद्धि लज्जित और चकित थी और मैं हँस रहा था—यही ईश्वर था। इस प्रकारकी सहस्रों घटनाएँ जीवनमे प्राय आती रहती हैं और प्रत्येक मनुष्यके ही आती हैं, परतु हमारी बुद्धि या तो उनको भूल जाती है और या सयोग कहकर टाल देती है, परतु मैं पूछता हूँ कि जब हमारे प्रश्नोका उत्तर कोई निरन्तर देता रहे और स्वय दृष्टि न आये, तब क्या हम यह न समझेगे कि हमारे प्रश्नोका उत्तर देनेवाला अवश्य कोई है ?

एक छोटी-सी घटना सुनाता हूँ, जिसमे ईश्वरके दर्शनका प्रमाण तो नहीं मिलता, परतु उसके दर्शन करानेवालोका प्रमाण अवश्य मिलता है। जो दृष्टिसे काया पलट सकते हैं, उनमे ये शक्तियाँ यदि ईश्वरकी नहीं तो किसकी है ? जिस समय मै बालक था, मेरे मनमे एक दिन विचार उत्पन्न हुआ कि 'मुझे ईश्वरको जानना चाहिये जिसकी चर्चा कोने-कोनेमे हो रही है, क्योकि उसके जाननेसे बहुत आनन्द मिलता है। ससारके सब पदार्थ मिटनेवाले है, इनमे चैन कहाँ ?' मैं इस इच्छाको लेकर अपने श्रीमहाराजके चरणोमे उपस्थित हुआ और प्रार्थना की—'हे पिता ! हे गुरो !' लोग दूर-दूरसे आपके दर्शनोको आते हे और आनन्दित होकर जाते है। आपसे भगवान्का नाम पूछते है और आप बताते हैं। क्या मैं भी अपनी बाल्यावस्थामे यह प्रश्न कर सकता हूँ कि 'ईश्वर क्या वस्तु है ?' महाराज मेरी इस बातको सुनकर मुसकराये और आदेश किया—'बेटा ! तुम्हारा खेलना-कूदना ही इस समय तुम्हारा ईश्वर है।' मैंने निवेदन किया—'भगवन् ! इस इच्छासे पूर्व मैं इसीको सब कुछ समझता था, परतु जब उसके जाननेका ध्यान उत्पन्न हुआ, मेरा ईश्वर यह नहीं।' महाराजने आदेश किया—'तो क्या तुम ईश्वरको जानना चाहते हो ? अच्छा, यदि यह बात है तो अमुक-अमुक

वात किया करो, तुमको ईश्वर मिल जायगा।' मैंने विनती की—'भगवन्! मेरी उत्सुकता मुझे इस धैर्यका पाठ नहीं पढा सकती। भगवान् अपनी कृपासे उसको दिखाये, मेरी उपासनाकी ओर न देखें।' मैंने कहा—'भगवन्! अपनी ऐनक दे दीजिये, मैं देखकर लौटा दूँगा।' बोले—'मेरी ऐनक तुम्हे क्योकर लगेगी?' मैंने कहा—'पुत्र अपने पिताकी सम्पत्तिको ले सकता हे या नहीं? यदि यह सत्य है तो मुझे अपनी कमाईमेसे भाग दीजिये।' कहने लगे—'अपने ही स्वार्थकी बात करते हो।' मेरे हृदयमे उस समय ईश्वरके लिये अपार उत्सुकता थी। महाराजने आदेश किया—'बेटा! जाओ, एकान्तमें जा बेठो, जो होगा, स्वय ही ज्ञात हो जायगा।' मैं आज्ञानुसार अपना कमरा बद करके बैठ गया। में बालक था और यह समझता था कि शायद ईश्वर इस प्रकारका होगा या उस प्रकारका होगा। एक बालकके ईश्वरके सम्बन्धमे क्या विचार हो सकते है? परतु थोडे ही समयके पश्चात् बिना किसी उद्योगके सब वस्तुएँ वाहरकी लुप्त होने लगीं। मै क्या देखता हूँ कि सृष्टि अन्तर्हित हुई जा रही हे। मे चकित हुआ। इसके साथ-साथ शरीरका दृश्य भी लुप्त हो गया, केवल यह ध्यान रहा कि कुछ नहीं रहा। चिरकालके पश्चात् इससे भी पृथक्ता मिली। अब क्या अनुभव किया—किस प्रकार वर्णन करूँ! हाँ, इतना कह सकता हूँ कि आनन्दका अनन्त समुद्र लहरा रहा था। मे उस अवस्थामें गया ओर पुन लौट आया। किस प्रकार गया? किस प्रकार आया? विदित नहीं। हाँ, जो कुछ अनुभव किया, उसकी स्मृति शेप रही। पुन प्रयत्न किया—किस प्रकार पहुँचता? अन्तको महाराजकी सेवामे उपस्थित होकर कहा—**कदहे बलबम् बूदो शिकस्ती रब्बी'** अर्थात् अमृतका

प्याला मेरे मुखतक आया और तूने तोड उसे दिया। आदेश किया—'यथासमय मिल जायगा, तुम विश्वास चाहते थे सो तुमको दिया गया।' जो कुछ उस अवस्थामे अनुभव हुआ, वह ईश्वर था या कोई अन्य, इससे कोई सम्बन्ध नहीं, परंतु इतना अवश्य कहता हूँ कि वह अवस्था बालकका हृदय बदलनेके लिये अद्भुत प्रभाव रखती थी। इस दृष्टान्तसे यदि ईश्वरकी सत्ताका दर्शन नही प्रमाणित होता तो उसतक पहुँचनेके साधन तो ज्ञात होते हैं अथवा मार्गकी वस्तुएँ तो दृष्टि आती है, चाहे लक्ष्यस्थान न आता हो। इसमे पहली बात यह है कि इस प्रकारके महात्मा एक दृष्टिसे ईश्वरका विश्वास देते है, काया पलट देते है, तो क्या ये महात्मा ईश्वरकी सत्ताके लिये प्रमाण नहीं है ? लोग कहते है, प्रथम ईश्वर दिखाओ फिर विश्वास करेगे। महात्मा कहते है कि पहले इग्लैंड दिखाओ, फिर चलेगे। यदि इग्लैंड बिना गये देखा नहीं जाता तो ईश्वर बिना विश्वासके क्योकर मिलेगा ? महात्माओका वाक्य मानकर इतना मान लीजिये कि 'वह है' और इस धारणासे जीवन व्यतीत करना सीखिये। हर समय उसको स्मरण रखिये। उसको आवश्यकताके समय बुलाइये। आनन्दके समय उसको धन्यवाद दीजिये, अन्तमे अपने-आपको उसके अर्पित करके दु ख और सुखके विचारको छोड दीजिये। यदि आपकी पुकारोका उत्तर मिलने लगा तो फिर किसी प्रमाणकी क्या आवश्यकता रहेगी ? जिस मनुष्यने पानी पीकर प्यास बुझायी है, उसका विश्वास कौन खण्डित कर सकता है ? परतु जिसने केवल यह समझा है या सुना है, युक्तियोद्वारा सिद्ध किया है कि पानीमे प्यास बुझानेकी शक्ति है तो सम्भव है उसके इस विश्वासको कोई दूसरा उससे अधिक ज्ञान रखनेवाला तोड दे।

फल्सफी[१] को बहस[२] के अन्दर खुदा[३] मिलता नहीं।
डोर को सुलझा रहा है और सिरा मिलता नहीं ॥ १ ॥
मार[४] फत खालिक[५] की आलम[६] मे बहुत दुसवार[७] है।
शहरे[८]तनमे जब कि खुद[९] अपना पता मिलता नहीं ॥ २ ॥

वस्तुत यह खोज ही उसको गुप्त कर देती है, यथा—आप और आपकी 'मै' हर समय उपस्थित है, परतु जैसे ही आप इसको ढूँढना आरम्भ करते हैं तो उसका पता नहीं मिलता। सच बात तो यह प्रतीत होती है कि यह सृष्टि स्वय नही बनी। इसका बनानेवाला अवश्य कोई है, जिसकी आज्ञा या नियम इस ससारके अदर कार्य कर रहे हैं। इन सिद्धान्तोकी नियमितता उसकी सत्ताका प्रमाण है। जो अनियमितताएँ ससारमे प्रतीत होती हैं, वे हमारी बुद्धिकी निर्बलताएँ हैं। हम जिस समय सूर्यको किसी छिद्रद्वारा देखते हैं तो बहुत छोटा प्रतीत होता है। अत ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण अन्धविश्वास है अथवा थोडा विश्वास है। पहले विश्वास फिर सुना सुनाया स्मरण कीजिये। तत्पश्चात् परिणाम स्वय ही सामने आ जायगा।

अन्तमे मेरी ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह स्वय ही अपनी कृपासे हम सृष्टिके क्षुद्र जीवोको अपना विश्वास दे, नहीं तो जिस बुद्धिसे ससारका एक परमाणु भी समझमे नहीं आता, उससे उसके कर्ताका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

— × —

१—नैयायिक। २—विवाद। ३—ईश्वर। ४—वेदान्त। ५—ईश्वर। ६—ससार। ७—कठिन। ८—शरीररूपी नगरी। ९—स्वय।

पण्डितप्रवर श्रीपञ्चानन तर्करत्न

१—अपने मनुष्य-जन्मको सार्थक करनेके लिये ईश्वरको मानना चाहिये।

व्याख्या—

जीवमात्र ही त्रिगुणात्मिका मायाके अधीन है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। सत्त्वगुण ज्ञान और सुखप्रधान है, रजोगुण कर्म ओर दु खप्रधान है एव तमोगुण आवृतभाव और मोहप्रधान है। सभी जीवोमे न्यूनाधिकरूपसे ये तीनो गुण अपनी शक्तिको प्रकट करते है। अन्यान्य जीवोमे ज्ञानका विकास अल्प होनेके कारण वे तम प्रधान है, मनुष्य कर्मठ होनेके कारण साधारणत रज प्रधान होनेपर भी उसमे जाति-वर्ण-भेदसे सत्त्वादि गुणोंका आपेक्षिक तारतम्य रहता है। इन तीनो गुणोंकी त्रितन्त्रीरज्जुसे जीवमात्र बँधे हुए है। सत्त्वप्रधान मनुष्य ज्ञान और सुखके बन्धनमे, राजस मनुष्य कर्म और दु खके बन्धनमे और तामस मनुष्य निद्रा, प्रमाद, आलस्य और भयसे अभिभूत होनेके कारण इनके बन्धनमे बँधे हैं। इस बन्धनसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है—ईश्वरकृपा। भगवान्ने स्वय कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

'जो मेरी शरण होते है, वे मेरी मायासे तर जाते है।' इस प्रमाणसे ही नहीं, जरा-सा प्रयत्न करनेपर इस बातको प्रत्यक्ष भी किया जा सकता है। मनकी कैसी भी अवस्था हो, कुछ देरतक बलात् बैठ जाओ और मनको अपने हृदय-कमलपर स्थित इष्टदेवके चरणोंमें लगा दो, थोडी ही देर क्यो न हो, फिर देखो उस समय जो शान्ति मिलती है,

वह कितनी मधुर है । इस प्रकार जितनी अधिक देर बैठ सकोगे, उतना ही शान्तिका आस्वादन अधिक होगा। इस प्रशान्त भावके स्थायी होनेपर यदि इसी अवस्थामे देह-त्याग हो जायगा तो तुम सहज ही बन्धनसे मुक्त होनेके मार्गपर चले जाओगे। ईश्वरको न माननेपर यह शान्ति तुम्हे कभी नहीं मिल सकती। सम्भव है कि शराबके नशेकी भाँति तुम्हे कामिनी-काञ्चनमे उद्दाम आनन्दका अनुभव हो, किंतु वह शान्ति नहीं है, बन्धन-मुक्तिका मार्ग नहीं है। पता नहीं, ससार-नदीके प्रवाहमे बहते बहते तुम किस भयानक अथाह सागरमे जाकर गिर पडोगे। ईश्वर-भक्ति इस भव-नदीके बीचमे एक आनन्द-द्वीप है। इस द्वीपका आश्रय मिल जानेपर नदीमे बहना नहीं पडता। नही तो, इस बातका कोई निश्चय नहीं है कि इस जन्मका मनुष्य दूसरे जन्ममे किस योनिको प्राप्त होकर पुन भ्रमणके चक्रमें पड जायगा, ईश्वरका आश्रय लेनेपर ही मनुष्य-जन्म सार्थक होगा, तभी वह उलटा बहकर ससार-सरिताके मूलस्थानपर पहुँच सकेगा।

२—ऐसी कोई हानि ही नही है जो ईश्वरमे अविश्वास करनेपर न हो।

व्याख्या—

ईश्वरमे अविश्वासी मनुष्य नीतिके रूपमे सत्यनिष्ठताको ग्रहण कर सकता है, परतु ऐसी अवस्थामे गुह्यरूपसे उसका सत्यनिष्ठासे गिर जाना बहुत सम्भव है। जिसका ईश्वरमे विश्वास नहीं है, जिसके मनमे भगवत्कृपा प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं है, वह कितना ही समाजसेवक क्यो न हो, केवल नीतिका आश्रय लेकर वह काम-क्रोधादि रिपुओकी सामयिक उत्तेजनासे कभी नही बच सकता और उपर्युक्त शान्तिके मार्गकी ओर तो वह जा ही नहीं सकता। अतएव ईश्वरको न माननेमे सत्यसे गिरना, इन्द्रिय-सयमका अभाव और शान्तिपथके अनुसधानमे

असमर्थता आदि अनेक प्रकारकी हानियाँ होती है।

३—ईश्वर समस्त प्रमाणोसे अतीत है, ऐसा दार्शनिकगण कहते है, उनके इस कथनका क्या अर्थ है, इस विषयपर मैं कुछ भी नही कहना चाहता, पर मेरा अपना मत यह है कि ईश्वर सर्वप्रमाण-सिद्ध हैं। एक तृणसे लेकर बडे भारी ग्रहतक जिस ओर भी देखो, सभी ईश्वरका प्रमाण है। यह अनन्त विचित्रतामय विश्ववट कोई आकस्मिक नहीं है, अचेतनका विकास नहीं है, इसके अंदर जो निपुणता भरी है, उसको सर्वज्ञ और सर्वशक्तियोंके स्वामीके अतिरिक्त और कोई नहीं दिखला सकता। इसके सिवा, मै अपने विश्वासपर यह भी कहता हूँ कि भगवान् भक्तके दृष्टिगोचर और वाक्य-प्रयोगके द्वारा श्रुतिगोचर भी हुआ करते है। शास्त्रप्रमाण तो है ही; मै पुन. कहता हूँ कि ईश्वर सर्वप्रमाण-सिद्ध है। उनको प्रत्यक्ष किया जाता है, तत्त्वसे जाना जाता है और उनमे प्रवेश किया जाता है—**'ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप'**—ईश्वरकी सिद्धिके लिये प्रमाण नहीं ढूँढ़ना पड़ता।

४—प्राय. ३३-३४ वर्ष पहलेकी बात है। श्रावणके कृष्णपक्षकी रात्रि थी, आकाश बादलोसे आच्छादित था। मैं रातको आठ बजेकी ट्रेनसे, कलकत्तेसे अपने घर जा रहा था। हमारा मकान भट्टपल्ली गाँवमे कलकत्तेसे साढ़े बाईस मील उत्तरकी ओर है। बाईस मीलपर काँकनाड़ा स्टेशन है, स्टेशनसे उत्तर छः-सात मिनटके रास्तेपर हमारी पाठशाला है, उससे उत्तर तीन-चार मिनट चलनेपर हमारा घर मिलता है। रेलकी पटरीके नीचे इस समय स्टेशनसे लेकर हमारे घरके पासतक पक्की सडक बन गयी है; किंतु उस समय पक्की सड़क नहीं थी, बल्कि पाठशालाके सामने एक पुष्करिणी थी और पूर्वकी ओर रेलके तार लगे हुए थे। पुष्करिणीके पूर्वांश और तारोंके पश्चिमांशके बीचसे एक

छोटी-सी पगडडी थी। ट्रेन आनेके समय भगवत्कृपासे मेरा मन उनके नाम-कीर्तनमे लग गया। जिस समय ट्रेन बारकपुर स्टेशनपर पहुँची, उस समय थोडा-थोडा पानी बरस रहा था, बारकपुरमे सारी गाडी खाली हो गयी। उच्चस्वरसे नाम-कीर्तनका सुयोग देखकर मेरे मनमे अत्यन्त आनन्द हुआ, परतु वर्षा और अन्धकार देखकर कुछ क्षणोके लिये मन जरा चञ्चल हो गया। रेलके किनारे रास्तेकी फिसलाहट और अँधेरेमे पुष्करिणीके बीचसे होकर जानेमे क्लेशकी बात याद आ गयी, मनमे स्फुरणा हुई कि कहाँ तो यह आनन्द और कहाँ ट्रेनसे उतरते ही उतना क्लेश, परतु दूसरे ही क्षण यह विचार जाता रहा और मै नाम-कीर्तनके आनन्दमे निमग्न हो गया। इससे यह नही समझना चाहिये कि उस समय मुझे बाह्य ज्ञान नहीं था, क्योकि कॉकनाडा स्टेशन आते ही मुझे पता लग गया और मै गाडीसे उतर पडा। अब नाम-कीर्तन बद हो गया। सब ओर अन्धकार छा रहा था, सीधे रास्तेमे बडी फिसलान है और दूरके राज-पथपर शराबियोका उपद्रव है। अन्तमे मैने सीधे रास्तेसे ही जाना स्थिर किया और धीरे-धीरे चल पडा। कुछ ही दूर चला था कि मैने देखा, लालटेन लिये कोई आ रहा है और दक्षिणकी ओर जोरसे आगे बढ रहा है। रास्तेके बगलमे आते ही मैने देखा, मेरे ही दो विद्यार्थी है। मैने विस्मित होकर उनसे पूछा—'तुमलोग कहाँ जा रहे हो ?' उन्होने कहा—'आपको लेने।' मैने फिर पूछा, 'तुमलोगोको कैसे पता लगा कि मैं इसी ट्रेनसे आ रहा हूँ ?' विद्यार्थियोने उत्तर दिया—'अभी जो ट्रेन स्टेशनसे निकल गयी, उसमेसे आप ही तो बडे जोरसे हमलोगोका नाम लेकर पुकारते हुए कह रहे थे कि रोशनी लेकर जल्दी स्टेशनपर आओ, इसीसे हमलोग दौडे आये हैं।' मैने छात्रोसे पूछा—'ट्रेन स्टेशनसे उत्तरकी ओर गयी, फिर तुम दक्षिणकी ओर क्यो आये ?' उन्होने कहा—'ठीक तो नहीं कह सकते कि ऐसा क्यो

किया, परतु यह सोचा कि पहले कॉकनाडा स्टेशन देखकर तब उत्तरके नैहाटी स्टेशन जायँगे, इसीसे इधर चले आये।' मैने सोचा—'मे कितना हतभाग्य हूँ, मुझे इस सामान्य क्लेशका स्मरण न होता, तो पता नही कितनी भगवत्कृपा प्राप्त होती।' उस समयकी मनकी स्थितिका क्या वर्णन करूँ। मेरी ऑखोसे ऑसुओंकी धारा बह रही थी। मैंने गद्गद-कण्ठ होकर दोनों छात्रोसे कहा—'अरे, तुम बडे भाग्यवान् हो, तुमने आज भगवान्के शब्द श्रवण किये, मैंने तुम्हे नहीं पुकारा था, यह पुकार तो उन्होकी थी।' वे दोनो ही छात्र अध्यापक हुए। दोनोंने ही उपाधियाँ प्राप्त कीं। इनमेसे मथुरेश तर्कतीर्थ तो सिमलपाल राज्यके सभा-पण्डित हुए, अब इनका परलोकवास हो गया है और दूसरे श्रीमान् रामरक्ष तर्कतीर्थ इस समय मेदिनीपुर जिलेकी प्रधान चतुष्पाठीके प्रधान अध्यापक है।

उस समय मुझे इस प्रकारकी कृपाके और भी अनुभव होते,किंतु वयोवृद्धके साथ-ही-साथ मेरी अवनति होती गयी। इस समय मैं प्रभुसे दूर हूँ। उनका परित्यक्त अपराधी भृत्य हूँ। ये सब बाते खोलनेकी नहीं थीं, किंतु बहुत दिनोसे मैं उन्हे भूल रहा हूँ, उनकी कृपाका अनुभव नहीं कर पाता हूँ, इसीसे निराश होकर आज यह लिख रहा हूँ।

चौथे प्रश्नका उपसहार यह है कि मैं अपनी दस वर्षकी उम्रमे ही, केवल बाईस घटेके अदर पहले पितृहीन और फिर मातृहीन हो गया था। तबसे वही—'**पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।**'—भगवान् मेरे पिता-माता बन गये और उन्होंने ही मेरी रक्षा और शिक्षादिकी सारी व्यवस्थाएँ कीं। इस सम्बन्धकी प्रत्येक घटना मेरे लिये उनके माता-पिता होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है, किंतु इन बातोका केवल मुझको ही पता है, दूसरा कोई साक्षी नहीं, इसीसे मैंने इनका उल्लेख न करके केवल एक

उसी घटनाका वर्णन किया है, जिसका एक अप्रमादी साक्षी अभीतक जीवित है। लालटेन लेकर स्टेशनपर छात्रोको बुलाना मेरे उन माता-पिताका ही कार्य था, इसमे कोई सदेह नहीं। कारण, छात्र मेरी पाठशालामे पढ रहे थे, अनेक छात्र थे, चलती हुई गाडीसे मनुष्यके पुकारनेपर उसका बाहरके लोगोद्वारा सुना जाना असम्भव है। यद्यपि हमारी पाठशाला रेलसे ५०-६० फुटकी दूरीपर ही थी, किंतु चलती गाडीसे और मेरे ही स्वरसे पुन -पुन पुकारना भगवान्‌की लीलाके सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता। छात्रोने मुझसे कहा था कि 'हमलोग नि सदेह आपकी ही आवाज सुनकर दोडे आये हैं, कॉकनाडासे उत्तर डेढ मीलकी दूरीपर नैहाटी स्टेशन ह, आप यहॉ न मिलते तो हमलोग नैहाटी जाते, परतु यहाँसे छूटकर नैहाटीको जाती हुई गाडीसे आपकी आवाज सुनकर भी हम यहाँ क्यो आये, इस बातका ठीक उत्तर हम नहीं दे सकते, प्रबल इच्छा हुई कि पहले यही स्टेशन देख चले।

कृपाकी यह घटना अति क्षुद्र होनेपर भी उन माता-पिताने यह सोचकर कि इस अँधेरी बरसातकी रातमे हमारा बच्चा क्लेशकर मार्गसे कैसे जायगा, उसका उपाय किया था। मेरे घर लौटनेका कोई समय निश्चित न होनेके कारण मैं पहलेसे कोई व्यवस्था न कर सका, किंतु मेरे माँ-बापने वह व्यवस्था—प्रकाश लेकर सामने जानेवालेकी व्यवस्था कर दी।

इस समय मैं भक्तिशून्य कठिन हृदय होनेपर भी उनकी कृपाकी बातका स्मरण कर सचमुच मुग्ध हो जाता हूँ और भी कितनी ही बाते हे, पर उन्हे कह नहीं सकता।

पोद्दारजी! आप चिरजीवी हों। आपके इस प्रश्नसे उस समयके भावने जाग्रत् होकर क्षणकालके लिये मेरे हृदयको शीतल कर दिया।

═★═

श्रीपरमहंस बाबा श्रीअवधविहारीदासजी महाराज, त्रिवेणीबाँध

१—ईश्वरको दो कारणोसे माना जाता है। पहला कारण यह है कि जीव ईश्वरका अश है और अशका धर्म है अशीको मानना, क्योकि अशीके बिना अशका निर्वाह ही नही हो सकता। अत अश यदि अपने धर्मका पालन करनेके लिये ईश्वरको (अशीको) न मानेगा तो उसे नाना प्रकारके दु ख उठाने पडेगे। जीव ईश्वरका अश है, इसमे ये प्रमाण है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत. सनातनः।

(गीता १५।७)

ईस्वर अस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रामचरितमानस)

दूसरा कारण है कि ईश्वरको माननेवाले ही त्रियोग कर सकते है। त्रियोग अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन्हीमेसे किसीके द्वारा साधन करता हुआ जीव अपने जीवनके चरम लक्ष्य ईश्वरको प्राप्त होकर जन्म-मरणके चक्रसे छूटकर अचल हो जाता है। ईश्वरके न माननेसे मनुष्यका उद्धार कभी नही हो सकता है। प्रमाण यह है—

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

अत ईश्वरको अवश्य मानना चाहिये।

२—ईश्वरको न माननेवालेको त्रियोग दुर्लभ है और योगसे

श्रेष्ठ दूसरा कोई लाभ नहीं, इसमे प्रमाण है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

(गीता ६। २२-२३)

लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा। × × × ॥
लाभु कि किछु हरि भगति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥

(रामचरितमानस)

ईश्वरको न माननेवाले इस प्रकारके भक्तियोगसे वञ्चित रह जाते हैं। भक्तियोगसे रहित होनेके समान दूसरी कोई हानि नहीं है। इसका प्रमाण यह है—

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

साराश यह है कि ईश्वरको न माननेवाला अधोगतिको प्राप्त होता है और इससे बढकर कोई हानि नहीं हो सकती।

३—पुराणोमे यह बात स्पष्टरूपसे लिखी मिलती है कि समुद्रके मन्थन करते समय जब हलाहल विष निकला और उसकी ज्वालासे देवता-दैत्य सब जलने लगे, तब शिवजीने भगवान्‌का नाम लेकर उसको पान कर लिया। भगवान्‌ने उनकी रक्षा की। उस हलाहल विषसे मृत्युके स्थानमे अमृतका फल उन्हें प्रदान किया। इससे ईश्वरका होना सिद्ध होता है। दूसरी एक कथा सबको विदित ही है। दुर्योधनकी सभामें दु शासनने द्रौपदीका चीर खींचकर उसे नगी करना चाहा।

द्रौपदीने ईश्वरका स्मरण किया, दु शासन चीर खींचते-खींचते हार गया, उसकी एक ओर चीरका पहाड-सा लग गया, परतु द्रौपदीको वह नगी न कर सका। द्रौपदी वैसी ही चीर पहने खडी रही। यह ईश्वरकी रक्षाका सुन्दर उदाहरण है, इससे ईश्वरके होनेमे कोई सदेह नहीं रह जाता।

ईश्वरके होनेका तीसरा प्रमाण यह है कि गर्भगत शरीरमे प्राण-वायुका प्रवेश करना और पुन शरीरसे उसका बाहर निकलना किसका खेल है ? सिवा ईश्वरके ऐसी सामर्थ्य और किसमे है, इससे भी ईश्वरका होना सिद्ध है।

——★——

महात्मा श्रीबालकराम विनायकजी

प्रश्न—ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

उत्तर—एक सुप्रसिद्ध महात्माने शरीर त्यागते हुए अपने सुयोग्य शिष्यसे कह दिया था कि अमुक प्रान्त एव ग्राममें अमुक व्यक्तिके यहाँ जन्म लूँगा। तुम वहाँ आना, वही कुटी बनाकर रहना और जब-तब रामरक्षाका पाठ सुनाया करना। उस शिष्यने वैसा ही किया। सतका जन्म एक पठित वैष्णवकुलमे हुआ था। कुछ सयाने होनेपर उस समयकी प्रथाके अनुसार (मुसलमानी जमानेमे) वे फारसी पढनेके लिये 'मकतब' मे बैठाये गये। वह शिष्य भी अपनी कुटीपरसे आकर मकतबमे बैठा करता था। बाल सतने थोडे ही समयमे फारसी भाषामे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। अध्यापक (मौलवी) प्रसन्न होकर उन्हे चावसे पढाते थे। एक दिन पठन-पाठनमे यह पद्य आया—

दर हर दरो-दीवार व दिले हर कसो-नाकस।
खुद जिलवए दारद ब-अदब बायद बूदन॥

अर्थात्—

अग-जग सुजन-अजानमे, बसत बरद श्रुति नीत।
ताते परुष न बोलिए, सबसो रहिय बिनीत॥

. प्रत्येक द्वार और दीवारमे एव प्रत्येक चर और अचरमे वह (ईश्वर) स्वय विराजमान है, (इसलिये) अदबके साथ रहना चाहिये।

इस पद्यकी व्याख्या उस मौलवी आलिम फाजिलने ऐसी की कि उस बाल सतके हृदयमें वे बातें सदाके लिये खचित हो गयीं। उसका

जो प्रभाव पड़ा था, उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—'मेरे हृदयमें आतङ्क समा गया। मुझे मालूम होने लगा कि कोई हर घड़ी मेरे पास खड़ा है और मेरी सब करतूत देख रहा है, मेरी बातें सुन रहा है। क्या रात्रिके एकान्तमें और क्या दिनके प्रकाशमें, वह ईश्वर सदाके लिये मेरा साथी बन गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं कोई खेल भी न खेल सका, न किसीसे मित्रता करके उससे खुलकर बातें कर सका। झूठ बोलना और कुकर्मोंमें प्रवृत्त होना तो मेरे लिये एकदम असम्भव हो गया। सदा शान्त और गम्भीर बना रहना मेरा स्वभाव हो गया।' इस प्रत्यक्ष घटनासे इतना तो स्पष्ट ही है कि ईश्वरको क्यों मानना चाहिये और माननेसे कितना लाभ है। मनुष्यका जीवन सुधर जाता है, सब पाप-तापसे बचाव हो जाता है और संसारमें रहते हुए भी निर्लिप्त जीवन बना रहता है।

प्रश्न—ईश्वरको न माननेसे क्या हानि है?

उत्तर—ईश्वरको न माननेवाले दो प्रकारके हैं—(१) कथनीसे और (२) करनीसे। कथनीसे ईश्वरको अस्वीकार करनेवाले मूर्ख नहीं होते, बड़े-बड़े बुद्धिमान् होते हैं। बुद्धिरूपी शरीरमें ज्ञानरूपी भोजनका अच्छी तरह परिपाक न होनेसे अफरा अथवा अजीर्ण दोषके रूपमें अनीश्वरवाद उत्पन्न होता है। अथवा बुद्धि-शरीरके संचालक तर्क, युक्ति और वादके रूपमें कफ-पित्त-वातके एकीकरणसे उत्पन्न सन्निपातका बक-झक ही अनीश्वरवाद है। कथनीसे अनीश्वरवादी यों तो बहुत मिले, परंतु उनमेंसे दो, अर्थात् एक संस्कृतके विद्वान् और दूसरे अंग्रेजीके विद्वान्से तो मुठभेड़ हो गयी थी। गोंड़े-शरीफमें संत जगजीवनसाहबकी बेटीकी समाधि-भूमिपर, सागर नामक पोखरेपर, हिंदुस्तानी क्लबघरके पास नित्य संध्या-समय सत्सङ्ग हुआ करता था।

एक पण्डित उस सत्सङ्गरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेके लिये राहुके रूपमे नित्य धावा करने लगे और ईश्वर-खण्डनरूप वाग्बाणसे सब सत्सङ्गियोको व्यथित करने लगे। बात बढने न पावे और शान्ति-भङ्ग न हो, इसलिये मै उनके किसी तर्कका उत्तर नहीं देता था, चुपचाप सुन लेता था और मुसकरा देता था। मेरा रुख देखकर और सत्सङ्गी भी चुप रहते थे। पॉच-सात दिन लगातार ऐसा होनेपर एक दिन पण्डितने कहा—'कुछ तो उत्तर दीजिये, समाधान कीजिये।' मैंने कहा—'क्या आपकी सब दलीले खत्म हो गयीं?' उन्होने कहा—'हॉ, अब उत्तर चाहता हूँ।' मैंने कहा—'अच्छा, आज जाइये, कल रातभरमे और भी नयी-नयी युक्तियॉ निकालिये, कल उन्हे भी सुना दीजिये, तब समाधान करूँगा।' दूसरे दिन जब वे फिर आये तब चुपचाप बैठे रहे और लोगोके चले जानेपर भी बैठे रहे। एकान्त पाकर उन्होंने कहा—'रात जब मैं सोया, तब एक विचित्र स्वप्न देखा। उसे ही कहनेके लिये आया हूँ।' मैंने कहा—'पण्डितजी! आप स्वप्नके पचडेमें क्यों पडे हैं। ईश्वरके खण्डनकी नयी दलील, नयी सूझ सुनाइये। आप-जैसे ज्ञानी पुरुषोको मिथ्या वस्तुके पीछे नहीं पडना चाहिये।'

पण्डितजी—'नहीं, नहीं, ऐसा मत समझिये। जागनेपर भी उसका प्रभाव बना हुआ है। अब भी मेरी छाती धडक रही है, वह स्वप्न त्रिकालमें मिथ्या नहीं हो सकता।'

मै—'यह भी आपकी अनोखी सूझ है। सारा ससार स्वप्नको मिथ्या समझता है, परतु आप कह रहे है कि वह स्वप्न त्रिकालमे मिथ्या नहीं हो सकता। इस विरोधाभासको आप हीं समझिये। अच्छा कहिये, क्या कहते थे। मैं ध्यान देकर सुनूँगा।'

पण्डितजी—'रात दस बजे जब आँख लगी, तब मेंने एक

भयंकर स्वप्न देखा। सुनसान जंगलमें एक कुण्डमे आग धधक रही थी। कापालिक परिक्रमा कर रहा था। मुझे देखते ही उसने अपने शिष्योको आज्ञा दी—'बलिप्रदानके लिये निर्दोष जीव चाहिये, यह वैसा नहीं है। इसकी जीभ काट लो और छोड़ दो।' फौरन मेरे हाथ-पैर पुष्ट रस्सीसे बाँध दिये गये और एकने मेरी जीभ पकड़कर उसे काटना आरम्भ किया। मैं बहुत चिल्लाया, रोया, परंतु उन्हे दया नहीं आयी। सारा शरीर रक्तरञ्जित हो गया। मैं मूर्च्छित हो पड़ गया। उस बेहोशीकी दशामें मैने देखा कि काशीकी गलियोमे विचर रहा हूँ और एक कोठेपर बैठी हुई सुन्दरी मुझे देख-देखकर लुभा रही है। मैं तुरंत कोठेपर चढ़ गया। दरवानने मेरा हाथ पकड़ लिया और लगा जूतोंसे पीटने। वह सुखसे बैठी हुई सुन्दरी मेरी दशाको देख-देखकर खूब हँस रही थी। चपरासीने मार-पीटकर मुझे नालीमे गिरा दिया, जिसमे असंख्य कीड़े रेंग रहे थे। मुर्देकी तरह शक्तिहीन मैं वहाँ पड़ा-पड़ा अपनी दुर्दशापर आँसू बहा रहा था। जो कोई उस रास्ते जाता, मुझे दो लात और जमा देता था। किसीका हृदय मेरी कारुणिक दशापर द्रवीभूत नहीं होता था। लात खाते-खाते मैं बेहोश हो गया। तब, मैने देखा कि मैं ससुरालमे हूँ। भोजन करके रातमे अपनी स्त्रीके साथ पलंगपर सोया हुआ हूँ। इतनेमें खिड़कीपर उसका जार आया। संकेत पाकर वह उठकर चली गयी। थोड़ी देर बाद वह खड्गहस्ता होकर और क्रुद्ध होकर मेरे पास आयी और मेरा सिर काटकर चली गयी। फिर कुछ देरमे लौटकर उसने सिर धड़से जोड़ दिया और विलाप करने लगी। सूक्ष्म शरीरसे मैं यह सब देख रहा था। उस कुलटाको समुचित दण्ड देनेके लिये मैंने फिर उस शरीरमें प्रवेश किया या किसीने बलात् मुझे उसमें प्रविष्ट कर दिया—यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता।

उसकी चिल्लाहटसे जब लोग वहाँ एकत्र हुए, तब मैं चारपाईपर उठ बैठा था। गर्दनमे पट्टी बाँध ली थी। मैंने सब वृत्तान्त लोगोंसे धीरे-धीरे कह दिया। मेरी स्त्री उसी समय भाग गयी और फिर मेरे सामने नहीं आयी। घाव अच्छा होनेपर मैंने ससारको असार समझकर जगलका रास्ता लिया। सुन्दर वनमें पहुँचा। एक गुफा बनाकर रहने लगा और फल-मूल खाने लगा। रातमे पाँच बडे-बडे सर्प मेरी गुफाके सामने कुछ दूरपर आकर बैठे। मैं भयभीत होकर चुपचाप बैठा रहा। बचावकी सूरत दिखायी नहीं पडती थी। इतनेमें एक सिह आकर सामने ही गुर्राने लगा। मेरे होश उड गये। बडी बेबसी और करुणाके साथ एकबारगी स्वत मेरे मुखसे निकल पडा—'हे राम। इस घोर विपत्तिसे मुझे उबारो।' बस, तुरत आँखें खुल गयीं और स्वप्नका सब दृश्य बिला गया। देखा, घडीमें पाँच बजे हैं। केवल सात घटेमें ये सब लीलाएँ हुई हैं, परतु स्वप्न-ससारमें वर्षोंका लेखा हो गया। इस विचित्र घटनापूर्ण स्वप्नका रहस्य मुझे बतलाइये। अब मैं ईश्वरका खण्डन कभी न करूँगा। ईश्वरकी ईश्वरता मुझपर प्रकट हो गयी। रामके नामने मेरी रक्षा की।'मेरी सम्मतिमे ईश्वरकी सबसे अच्छी परिभाषा यही हो सकती है कि दीन-दु खियोकी सुनता है, उनकी रक्षा करता है। ऐसे कठिन समयमें सुध लेता है, ऐसी विकट परिस्थितिमें काम आता है जब किसी प्रकार भी उनकी रक्षा होना सम्भव नहीं। ऐसे दयानिधान ईश्वरके खण्डन करनेवालेकी जबान अवश्य काटी जाती है।" पण्डितजीकी वार्ता हो चुकी। अब अगरेजीके एक विद्वान्‌की वार्ता भी सुन लीजिये—

प्रयागजी, युनिवर्सिटी कालिजमें पढनेवाले छात्रोंमें एक सज्जन फिलासफीमें एम्० ए० की परीक्षाकी तैयारी करते थे। दुर्भाग्यसे यहाँके

विश्वविद्यालयमें अनीश्वरवादी दर्शन ही कोर्समे हैं। अंगरेजी भाषामे आध्यात्मिक दर्शन भी है, परतु अधिकारी लोग किसी कारणविशेषसे उन्हे यहाँके छात्रोंको पढाना नहीं चाहते। उक्त सज्जन पढते तो म्योर कालिजमे, परतु रहते थे 'ऑक्सफोर्ड ऐण्ड केम्ब्रिज होस्टल' मे जो ईसाइयोकी सस्था है। वहाँके सुपरिटेडेंट मिस्टर होलैंडसे उनकी खूब छनती थी। ईश्वर और ईश्वरके एकलौते पुत्र ईसामसीहपर तरह-तरहके आक्षेप करना ही वहाँ उनका उद्देश्य रहता था। इसी तरह मौलवी और पण्डितसे भी वह भिड जाते थे। सब लोग उनसे तग आ गये थे। यहाँतक कि लोगोने उनके कुतर्कोंका उत्तर देना भी बद कर दिया। उन दिनो राधास्वामी-सम्प्रदायके आचार्य स्वर्गीय प० ब्रह्मशकर मिश्रजी, महाराज साहब वही रहते थे और नित्य अतुरसुहिया मुहालमे उनके निवासस्थानपर सत्सङ्ग हुआ करता था। कभी-कभी उक्त सज्जन वहाँ भी पहुँच जाते थे और आक्षेपोकी झडी लगा देते थे। महाराज साहब उनकी सुन लेते थे और यह कहकर टाल देते थे कि हमलोग बहस नहीं करते।

छुट्टियोमे हम आलफ्रेड पार्कमें बैठे हुए कुछ रामचर्चा किया करते थे। धीरे धीरे हमारे सत्सङ्गमे भी बहुत लोग आने लगे। उक्त अनीश्वरवादी और विवादप्रिय सज्जनको पता लग गया और वह भी आने लगे। पहले तो दो चार दिनोतक चुपचाप बैठे हुए सत्सङ्ग-वार्ता सुना करते थे। एक दिन विसर्जनके समय उन्होने मुझसे कहा कि 'आपसे मैं ईश्वर-सम्बन्धी जिज्ञासा करना चाहता हूँ, समय मिलना चाहिये।' मैंने कहा—'हम-आप तो छात्र ही हैं, एक ही कालिजमे पढते हैं, अबोध हैं, अभी सीख रहे हैं, किसी लब्धप्रतिष्ठ महान् पुरुषसे जिज्ञासा कीजिये।' परतु उन्होने बडा हठ किया और अन्तमें

महाशिवरात्रिकी छुट्टीमे तेरह जनवरीको वार्ता होना निश्चित हुआ। उस दिन दो बजेसे ही आल्थेड पार्कमे सब लोग एकत्र हुए। मानसजीका पाठ हुआ और उसके अनन्तर उनको समय दिया गया। पहले तो उन्होने ईश्वरपरक अपने सदेहोको स्पष्टरूपसे प्रकट किया, फिर हिंदू-धर्मपर जितने आक्षेप वे कर सकते थे, कर गये। सयोगसे 'हिंदी-प्रदीप' के सम्पादक भट्टजी किसी कार्यवश वहाँ आ गये थे और लोग तो चुप रहे, परतु उनके आक्षेपोको सुनकर भट्टजीसे नहीं रहा गया। उन्होने उक्त सज्जनको खूब फटकारा और उनके प्रश्नोका समुचित उत्तर भी दिया, परतु उनको सतोप नही हुआ। उन्होने भट्टजीसे कहा—'आप बडे है, इसलिये आपकी बात दबी जबानसे मान लेता हूँ, परतु मेरा दिल आपकी बात माननेको तैयार नही है।' इसपर भट्टजी उठकर चले गये। अब मेरी बारी आयी। मैने कहा कि हिंदूधर्मपर जो आपने अनर्गल आक्षेप किये हैं, उन्हे तो वापस लीजिये और ईश्वरपरक जो आपका सन्देह है, उसका समाधान सुनिये।' इसपर वह राजी हो गये। मैने कहा—'क्या आप कोई वैज्ञानिक कारण बता सकते है कि चमगादुरको दिनमे क्यो नही सूझता ?'

उन्होने कहा—'मैंने इसपर कभी विचार नहीं किया।'

मै—'अच्छा, यह तो बताइये कि सूर्यके उदय होते ही कमल क्यो खिल जाता है और सूर्यास्तपर क्यो सम्पुटित हो जाता है ?' आकाशचारी सूर्य एव जलविहारी कमलमे घनिष्ठता क्यो है ?'

अनीश्वरवादी—'मेने तो कह दिया कि मैने इन बातोपर कभी विचार ही नहीं किया है।'

मैं—'जब आप प्राकृतिक नियमोको समझनेमे असमर्थ हैं, तब मन, बुद्धि, वाणी—इन सबसे परे ईश्वरसम्बन्धी सूक्ष्म बाते कैसे

समझ सकेगे ? सुनिये, ईश्वरको समझनेके लिये ईश्वरीय बुद्धि चाहिये—'**तुलसी रघुपतिसे नयन रघुपति देखनहारि।**' यदि आप सच्चे दिलसे ईश्वरको जानना चाहते है तो ईश्वरीय बुद्धि प्राप्त कीजिये।'

अनीश्वरवादी—'हॉ, मै सच्चे दिलसे चाहता हूँ। आप ईश्वरीय बुद्धि प्राप्त करनेका उपाय बताइये।'

मैं—'अच्छा, तो आप एक घटेतक प्रतिदिन एकटक दृष्टिसे ध्रुवताराको देखे और अगले रविवारको फिर यही मुझसे मिले। हॉ, जब आप यह साधन करे, तब आपके साथ और कोई न हो।' वह मान गये, सभा भङ्ग हुई, सब अपने-अपने स्थानको चले गये।

दूसरे रविवारको जब वह महाशय सत्सङ्गमे उपस्थित हुए, तब उन्होने मुझे एक पत्र दिया, जो उन्हींका लिखा हुआ था। पत्र अग्रेजी भाषामें था। उसके हाशियेपर लिखा हुआ था 'प्राइवेट ऐण्ड कौन्फिडेशियल (Private and confidential)। इसलिये उस पत्रको पढकर सबको सुनाना मैने उचित नही समझा। उसमें लिखा हुआ था—महाशय! आपके निर्देशानुसार मैं लगातार चार दिनोतक, प्रतिनिशि, एक घटेतक ध्रुवको टकटकी लगाकर देखता रहा। पहले दिन तो कुछ मालूम नहीं हुआ। दृष्टि जमानेमे ही सारा समय निकल गया। दूसरे दिन ध्यान स्थिर हो गया और अनेक रगोके अनेक दृश्य दिखायी पडे, जिनका रहस्य कुछ समझमे नहीं आया, परतु जब मैं अपने रूम (घर) मे चारपाईपर उत्तान लेट गया और देखे हुए दृश्यपर विचार करने लगा, तब एकाएक मेरा प्यारा कुत्ता आकर मेरी छातीपर खडा हो गया और कानसे झुककर मनुष्यकी भाषामें बोला—'क्या ईश्वरमे अब भी अविश्वास करोगे ?' यह कहकर गरजकर और तडपकर वह कूद गया। दूर जाकर बैठा और आँखोंसे ऑसू बहाता हुआ तुरत शरीर त्यागकर परलोकको सिधारा। इस अलौकिक घटनाका गहरा प्रभाव

मेरे दिलपर पडा। मेरा सब सन्देह काफूर हो गया। मुझे निश्चय हो गया कि कुत्तेके मुखसे निकली हुई नर-वाणी ईश्वरकी ही थी। तीसरे दिन जब मैं फिर ध्रुवको देखने बैठा, तब न जाने किसने मेरी जबान ऐंठ दी और तबसे मैं मूक हो गया हूँ। मैं कुछ नहीं बोल सकता। यही कारण है कि आज सब वृत्तान्त लिखकर लाया हूँ। अब मैं आपको शतश धन्यवाद देता हुआ यही प्रार्थना करता हूँ कि अब कोई ऐसी तदबीर बताइये जिससे मेरा मूकपन दूर हो। मैं आपका आजन्म आभारी रहूँगा।

आपका स्नेहभाजन—

सैमुअल सैक्सन

इस पत्रको बाँचकर मैं सन्न रह गया। मेरे नेत्रोंसे आँसू निकल पडे। मैं भी कुछ देरतक मूक हो गया। सब साथी चकित हो गये। मेरे अनन्य मित्र मिस्टर त्रिपाठीने मेरे हाथसे पत्र ले लिया और पढने लगे। पत्र लेखक महाशयने उनके हाथसे पत्र छीन लिया और तुरत उसे फाडकर फेंक दिया। मिस्टर मजीदने सब टुकडे चुनकर अपनी जेबमे रख लिये और यह कहते हुए वे चले गये कि इन टुकडोको जोडकर मैं पढूँगा।

कुछ देरमें जब मेरा चित्त सावधान हुआ, तब मैंने सैमुअल महाशयसे कहा कि 'यदि आप प्रतिज्ञा करे कि अबसे ईश्वरका खण्डन व्याजसे भी नहीं करूँगा और प्रतिज्ञाका साक्षी ध्रुवको बनावे तो बहुत सम्भव है कि आपकी जबान खुल जाय।' उन्होने ऐसा ही किया। दूसरे दिन उनकी जबान खुल गयी और वह फिर एक बार मुझसे मिले। तबसे पता नहीं चला कि कहाँ गये। यहाँ एक बात और बता देना आवश्यक है कि उनका असली नाम 'श्यामलाल सक्सेना' था, परतु ईसाइयोंके सङ्गमें रहनेके कारण और अंग्रेजीकी उच्च शिक्षा पानेके कारण उन्होंने अपना नाम 'सैमुअल सैक्सन' रख लिया था, जिस तरह आक्सफोर्ड प्रोफेसर मैकडोल्ने सस्कृत पढनेके प्रभावसे अपना नाम

'श्रीमुग्धानलाचार्य' और स्वर्गीया डाक्टर ऐनी बेसेटने हिंदूधर्मसे प्रेम होनेके कारण अपना नाम 'वासन्ती देवी' रख लिया था।

करनीसे अनीश्वरवादी

मनुष्यका स्वभाव है कि वह पापकर्म छिप-छिपाकर करता है। आँख पसारकर देख लेता है कि मुझे ऐसा करते हुए कोई देखता तो नहीं, परतु उस समय उसे यह मोटी बात याद नहीं रहती कि सर्वत्र व्यापी ईश्वर तो देखता है और एक-न-एक दिन वह मेरे पापोंका भण्डाफोड अवश्य करेगा। यह बात भी सच है कि आजतक जितने पाप हुए हैं, चाहे कितना भी छिपाकर किये गये हैं, सब-के-सब प्रकाशमें आये हैं। कातिलने स्वयं बर्राहटमे कत्लके मामलेको प्रकट कर दिया है और वह पकड़ लिया गया है। कर्मानुसार जिस समय हम पाप करते हैं, उस समय जरूर ईश्वरको भूल जाते हैं और 'करनीसे' निरीश्वरवादी बन जाते है। आठों पहर आस्तिक बने रहना केवल संतके लिये ही सुलभ है।

प्रश्न—ईश्वरके अस्तित्वमे क्या प्रमाण है ?

उत्तर—ईश्वरके अस्तित्वके पक्के प्रमाण—

(१) अवतार-पुरुषके रूपमे अथवा संत, आचार्य, पीरपैगम्बर, औलियाके रूपमे ईश्वरका इस पृथ्वीपर प्रादुर्भूत होकर धर्मकी संस्थापना करना, सभी मानवीय भावोको विकसित करके सबकी मर्यादा बॉधना और अपने अलौकिक चरित्रसे इतिहासकी महत्ता बढ़ाना—यह ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण है जिसको नास्तिक लोग भी मानते हैं। एक सज्जनने क्या ही अच्छा कहा है—

> **वजूद भगवतकी है निशानी, सनेह आचार्यकी कहानी।**
> **यही तो है शक्ले आसमानी, सिवाय इसके पता नहीं है॥**

(२) जो बात हम चाहते हैं, वह नही होती और जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी, वही घटना घटित होती है। कोई भी मनुष्य दु ख नहीं चाहता, परतु तरह-तरहके दु ख मनुष्यको घेरे रहते हैं। **'अन इच्छित आवहि बरिआई।'** यह कार्य जड प्रकृतिका नहीं है, किसी चेतन सत्ताधारीका है, जो न्यायपूर्वक निरपेक्षता, किंतु सावधानतापूर्वक इस विश्वका शासन कर रहा है। प्रत्येक शासितको अर्थात् दु खग्रस्त प्राणीको अपने शासककी अनुभूति हुए बिना नहीं रह सकती। दु खी जीव नास्तिक और निरीश्वरवादी नहीं हो सकता। यह ध्रुव सिद्धान्त है। बडे-बडे तार्किक, नास्तिक और अनीश्वरवादी भी विपन्नावस्थामे प्राप्त होते ही सब तर्कवाद भूल गये हैं और उन्होने उस चेतन सत्ताधारीका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ससारमे दु खकी मात्रा विशेष होनेसे ही यह आशा की जा सकती है कि ऐसा समय कभी नहीं आवेगा, जब ससारमे ईश्वरके माननेवालोका अभाव हो जाय।

(३) ससारकी अद्भुत घटनाएँ भी किसी अद्भुत चेतन सत्ताधारीका पूरा पता देती है। ससारका इतिहास ही इसका पुष्ट प्रमाण है।

(४) प्रसिद्ध मेधावी पुरुषोने भी मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया है कि अप्रतिहत इच्छा एव शक्तिका चैतन्य आधार ही ईश्वर है।

(५) समुद्रमे वायुके झोकेसे तरङ्गे उठती ही रहती हैं, उसी तरह स्वभावकी प्रेरणासे जिस चेतन सत्तासे इच्छामयी शक्तिकी प्रादुर्भावना होती है और उस इच्छाके द्वारा कार्यका विकास होता है उसी चेतन सत्ताको ईश्वर कहते हैं।

(६) सृष्टि-विकास तथा क्रमबद्ध सचालनके अटल एव अखण्ड नियम, जिस अखण्ड एकरस-विहारी चेतन सत्ताधारीके भ्रूविक्षेपपर निर्भर हैं, वही ईश्वर है।

(७) वेद-शास्त्रोमे शुद्ध आधारमे प्रतिष्ठित ज्ञान-क्रियासम्पन्न चेतन्यको ही ईश्वर कहा है।

(८) स्थूल, सूक्ष्म एव कारण—इन तीनो लोकोमे एकरस विहार करनेवाला यह जीवात्मा ही सर्वशक्तिमान् ईश्वरके अस्तित्वका सिद्ध प्रमाण है, क्योंकि यह जीवात्मा ईश्वरका ही अश है। जीव अल्पशक्तिसम्पन्न है और ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, एक अणु (जुज) है, दूसरा विभु (कुल) है। भेद इतना ही है। यह अल्पशक्ति-भाजन जीव सदा पूर्णत्वको प्राप्त होनेके लिये चेष्टा किया करता है। कारण, लोकमें जहाँ भूत, भविष्य, वर्तमानके रूपमे कालका विभाग नहीं है अर्थात् सदा वर्तमान-ही-वर्तमान है, जहाँ भाव ओर क्रिया पृथक्-पृथक् नहीं हैं, यह जीव जब अज्ञानका परिधान फेंककर अपने स्वरूपका अनुभव करता है, तब जिस ज्योतिमे वह तन्मयताको प्राप्त होता है, वही ज्योति ईश्वर है।

(९) ससारमे विश्वास और प्रेम ईश्वरके ही प्रतीक हैं। हर एक मनुष्यको इसका बोध है। विश्वासरूप हर और प्रेमरूप हरि हैं—इस बातको अनुभवी सत कहते हैं। विश्वासमूलक ही सब धर्म-सम्प्रदाय हैं। इनका दार्शनिक आधार काल्पनिक ही है, वास्तविक नहीं। प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है, कहते हुए लोग अघाते नहीं। बिना विश्वास और प्रेमके सासारिक व्यवहारका सचालन भी असम्भव ही है। इसीलिये यदि स्त्रीका निष्कपट प्रेम उसके पतिमें है तो उसके लिये उसका पति ही ईश्वर है। पुत्रका सच्चा प्रेम यदि पितामे है तो उसका पिता ही उसका ईश्वर है।

प्रश्न—आप अपना कोई निजी अनुभव बतला सकते हैं ?

उत्तर—निजी अनुभवकी बातें अत्यन्त गोपनीय हैं, वे लिपिबद्ध

नहीं की जा सकतीं। उनका प्रकाशन तो बहुत दूरकी बात है। हाँ, ऐसी घटनाएँ जो अबोधावस्थामे किसी-किसीसे कह दी गयी हैं, कुछ लोगोंको विदित हैं, उन्हें प्रकाशित कर देनेसे यदि पाठकोंके हृदयपर कुछ प्रभाव पडे तो उन्हें प्रकट कर देनेमें कोई हानि नहीं है। उनमेसे एक विशिष्ट घटना यहाँ दी जाती है—

जन्मभूमि खेढाय ग्राममे एक ठाकुरद्वारा है। वहाँ उस समय एक पण्डितजी वाल्मीकीय रामायणकी कथा कहते थे। ठाकुरजीके दर्शन और कथाश्रवणके लिये मैं नित्य जाने लगा। जिस दिन कथाकी समाप्ति हुई, मैं यह सोचकर रोने लगा कि अब कलसे यह कथा सुननेको नहीं मिलेगी। लोगोने बहुत समझाया-बुझाया, पण्डितजीने अच्छे-अच्छे श्लोक और **'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन'** वाली स्तुति लिखकर दी, किसीने फल, किसीने मिठाई देकर फुसलाया, बडोने डाँटा-फटकारा भी, परतु रोना बद नहीं हुआ। लोग पकडकर घर लाये। माताजीने गोदमें लेकर बहुत प्यार किया, परतु सब व्यर्थ। रुलाई बद नहीं हुई। रात बीत गयी। इस प्रकार तीन दिनोतक एक-सी दशा बनी रही। कोठेपर अकेला पडा रहता और कथाकी बाते याद करके बिलख-बिलखकर रोया करता। पिछली रातमे अँधेरा कमरा एकबारगी प्रकाशित हो गया और एक मुकुटधारी महापुरुषने प्रकट होकर, कभी लुक-छिपकर, जीवन-यात्रा-निर्वाहके लिये, छन्दोबद्ध भाषामे ऐसे उपदेश दिये कि वे ज्यो के त्यो हृत्पटलपर खचित हो गये।

सबेरे उन्हे लिपिबद्ध कर लिया और नित्य पाठ करने लगा। वह कविता 'पयामे यार' के नामसे स० १९६५ में एक पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित भी हो चुकी है। इस आध्यात्मिक जीवनका आधार वही कविता है। इस अधम जीवपर जैसी कृपा भगवान्ने उस समय की थी, वैसी ही कृपा श्रीहरि सबपर करें।

═★═

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीहाथीभाई शास्त्री

१—ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

इस प्रश्नका उत्तर पूज्यपाद भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने शारीरक-मीमासा प्रथम अध्यायके प्रथमपाद **'जन्माद्यस्य यतः'** नामक द्वितीय-अधिकरण भाष्यमे बडी युक्तिके साथ दिया है। वे लिखते हैं—

'प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे निश्चित होनेवाला यह जगत् नाम और रूपसे व्याकृत अर्थात् प्रकट भावापन्न, अनेक तरहके कर्ता-भोक्ता आदिसे युक्त और प्रतिनियत देश, काल, निमित्त, क्रिया तथा फलका आश्रय है।'

इस कथनका तात्पर्य यह है कि इस जगत्मे कितने ऐसे हैं जो कर्ता हैं, पर भोक्ता नहीं, और कोई भोक्ता है पर कर्ता नहीं। जैसे रसोइया और ऋत्विक् आदि केवल कर्ता हैं तथा श्राद्धीय ब्राह्मण आदि केवल भोक्ता हैं। इसके अतिरिक्त इस जगत्के सभी पदार्थ ऐसे हैं जो किसी नियत देश, काल, निमित्त और क्रियादिके अधीन हैं, जैसे स्वर्गरूप क्रियाफलका मेरुपृष्ठ 'देश' है, देहपातानन्तर काल है और उत्तरायण-मरणरूपी निमित्त है। कोई पदार्थ किसी देशविशेषमे ही मिलते है, जैसे—कस्तूरीमृग केवल हिमालयमे ही होता है। कई एक ऐसे हैं जो नियतकालमे ही होते है, जैसे कोकिलाका शब्द केवल वसन्त ऋतुमे ही सुनायी पडता है और कितने ऐसे हैं जो किसी नियत निमित्तसे ही होते है, जैसे नवीन मेघकी ही गर्जना बलाकाके गर्भधारणका कारण बनती है। इसी तरह इस ससारकी कितनी ही क्रियाएँ भी नियत हैं, जैसे याजन तथा अध्यापनकी क्रियाएँ केवल

ब्राह्मणोंके लिये ही हैं और कितने ही फल भी नियत हैं, जैसे कोई दु खी है तो कोई सुखी है अथवा जो सुखी हैं, वे ही फिर दु खी हो जाते हैं। अस्तु।

ऐसी परिस्थितिमें यह निश्चय होता है कि इस प्रकारका यह जगत् यादृच्छिक, आकस्मिक या स्वाभाविक नहीं है, प्रत्युत किसी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्द्वारा प्रणीत है, क्योंकि ऐसी निर्माणशक्ति किसी परिमित ज्ञान या शक्तिधारीमें नहीं हो सकती। इसी बातको श्रीशङ्कराचार्य भगवान्ने भी कहा है कि 'यह जगत् ऐसा है कि मनुष्यके मनमें इसकी रचनाकी कल्पना भी नहीं हो सकती।' वास्तवमें यदि हम अपने शरीरकी रचनापर ही विचार करे तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। लौकिक दर्जी यदि एक बिना बदका भी कुरता बनाता है तो उसको सीनेमें सैकडो धागे लगाता है, परतु हमारे शरीरकी रचना जिसमें अनेकों अवयव हैं, ऐसी कुशलतासे हुई है कि अङ्गुल्यादि किसी भी स्थानपर एक भी सधान दृष्टिगोचर नहीं होता। और तो जाने दीजिये, अपनी टॉगकी ही ओर निगाह दौडाइये तो मालूम होता है कि डेढ फुटकी हड्डीका एक नल न जाने किस मार्गसे अदरसे जाकर कितनी खूबीके साथ घुटनेमें जोडा गया है। क्या इसमें किसी महाकारीगरीकी भी दाल गल सकती है ? यदि नहीं, तो ऐसी अतर्क्य रचनाओंसे भरा हुआ यह सारा जगत् अवश्य किसी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् कर्ताके बिना नहीं बन सकता। यही कारण है कि सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वरको इस जगत्‌का कारण मानना पडता है। जिस प्रकार कुम्भकार पहले कुम्भका नाम और रूप (जैसे शङ्खके समान कण्ठ और विशाल उदर आदि) अपने हृदयमें लिख लेता है। तदनन्तर दण्ड-चक्रादि साधनोंद्वारा वैसा ही घडा बनाता है, उसी प्रकार ईश्वर सर्वत्र होनेके कारण सब कुछ

जानता है तथा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सर्वनामरूपसम्पन्न पदार्थो और प्राणियोका सृजन करता है। अतएव **'जगत्कारणत्वेन'** ईश्वरको मानना अत्यावश्यक है; क्योंकि परमाणु, प्रधान अथवा अन्य कोई भी इस जगत्‌का कारण नहीं बन सकता।

यदि स्वभावको जगत्‌का कारण माना जाय तो इसका यह अर्थ होता है कि 'स्वभावसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है।' इसमे दो विकल्प हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि जगत् अपना निमित्त स्वयं बनता है, दूसरे यह कि यह जगत् किसी निमित्तकी अपेक्षा नहीं रखता; परंतु ऐसा माननेसे पहले विकल्पमे तो आत्माश्रय दोष आता है, दूसरे पक्षका विचार करते हैं तो वह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि लोकमें कार्यार्थी पुरुषोंद्वारा विशिष्ट (असाधारण) देश-काल-निमित्तादिका ग्रहण किया जाता है। ऐसी अवस्थामे उनका कोई निमित्त न मानना सर्वथा अयोग्य ही है। अस्तु, यह जगत् अपने कारणरूप ईश्वरका उसी तरह ज्ञापन करता है, जिस तरह सूर्यकी देशान्तर-प्राप्ति उसकी गतिको ज्ञापित करती है। इस कार्यलिङ्गक अनुमानसे ईश्वर अवश्य मान्य हो जाता है।

ईश्वरको माननेमें कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण हैं, इस तीसरे प्रश्नका उत्तर भी यहीं मिल जाता है; क्योंकि जब **'जगत्कर्तृत्वेन'** ईश्वरकी सिद्धि हो गयी तब यही ईश्वरके अस्तित्वमें भी प्रमाण बन जाता है।

कुसुमाञ्जलिकार महात्मा उदयनाचार्यने पञ्चम स्तबककी—

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविषेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः॥

—इस कारिकामें नौ अनुमानोंसे ईश्वरकी सिद्धि की है; परंतु इसका पूर्ण विवेचन करनेसे लेखके लम्बा हो जानेका भय है, अतः संक्षेपतः तात्पर्य बतलाया जाता है। पहला कार्यानुमान है—जैसे, यह

पृथ्वी और अङ्कुरादि सभी कर्तृजन्य है, अतएव 'कार्य' होनेके कारण 'घटवत्' हुए और इससे कर्ताकी सिद्धि हुई। इस अनुमानमे प्रतिपक्षी (नास्तिक) इनको शरीराजन्यत्व प्रतिपादन करते हुए आपत्ति कर सकते है, परतु उनको यह याद रखना चाहिये कि जिस तरह कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, ओष्ठ आदि अवयवोके बिना क, च, ट, त, प आदि वर्णोका उच्चारण नहीं हो सकता—इस असम्भवको भी डाक्टर एडीसन-जैसे साधारण मनुष्यने फोनोग्राफका आविष्कार कर सम्भव कर दिया तो सर्वशक्तिमान् ईश्वरने बिना शरीरके सृष्टि-रचना कर दी, इस बातको माननेमे सदेह ही क्या है ? किंतु श्रुतिने तो **'स वै शरीरी प्रथम', स वै पुरुष उच्यते'** आदि सदर्भोंद्वारा ईश्वरके अलौकिक शरीरका भी बोध कराया है।

उदाहरणमे एक किंवदन्ती है कि महात्मा उदयनाचार्य एक बार भगवान् जगदीशके दर्शनार्थ पुरीधाममे गये और मूर्तिके सामने खडे होकर स्तुति करने लगे। स्तुति करते-करते घटो बीत गये फिर भी भगवान्के दर्शन न हुए तो उन्होने भक्तिके उद्रेकसे चिल्लाकर कहा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि　मामवज्ञाय　तिष्ठसि।
पराक्रान्तेपु　बौद्धेपु　मदधीना　तव　स्थिति.॥

'हे जगदीश ! ईश्वरत्वके ऐश्वर्यसे मद-मत्त होकर मेरी अवज्ञा कर रहे हो, परतु तुमको उन दिनोकी याद नहीं आती, जब बौद्धोने तुम्हे समूचा उडा देनेका होहल्ला मचाया था ? उस समय तुम्हारी स्थिति मेरे ही अधीन थी। यदि मै कुसुमाञ्जलि आदि ग्रन्थोका निर्माण करके तुम्हारी स्थिति दृढ नहीं करता तो बौद्धोके 'निरीश्वरवाद' का भयकर झझावात तुम्हारे नाम-स्मरणको भी उडा ले जाता।' यह कहते-कहते उदयनाचार्यजीकी आँखोमे आँसू आ गये और भगवान्ने तत्काल ही

दर्शन देकर उनको कृतार्थ किया।

दूसरा धृतिहेतुक अनुमान है। यह भी बड़ा विचित्र है। जब पाषाण-खण्ड-जैसे साधारण पदार्थकी धृति (धारणा) के लिये भी हस्तादि धारककी अपेक्षा होती है, तब इस भूगोलका भी—जिसका मान पंद्रह सौ परार्द्ध टन बतलाया जाता है, कोई-न-कोई धारयिता (धारण करनेवाला) अवश्य है। केवल पृथ्वी ही क्यो, इसका व्यास तो सिर्फ एक हजार योजनका है; सूर्य जो पृथ्वीसे एक करोड़ चौबीस लाख योजनकी दूरीपर और पृथ्वीकी अपेक्षा १३४१ गुना बडा है, एवं जिसका वजन यदि दोके बाद सत्ताईस शून्य रखे जायँ तो उतने टन माना जाता है, उसको और उससे भी दूर शनैश्चर तथा उसके बीचके मगल, बुध, शुक्र आदि समस्त ग्रहोका धारणकर्ता कोई है ही। इतना ही क्यो, अभी हालहीमें एक शोधकने सूर्यसे भी बड़े ग्रहका पता लगाया है—जिसका प्रकाश पृथ्वीपर चार वर्षोमे पहुँचता है। विचार करनेकी बात है कि प्रकाशकी गति एक सेकेंडमे १५,७०० मीलकी मानी गयी है और इस हिसाबसे सूर्यके प्रकाशको पृथ्वीतक पहुँचनेमे आठ मिनट लगते हैं, परंतु जिस ग्रहका प्रकाश पृथ्वीतक चार वर्षोंमें पहुँचता है, उस ग्रहकी दूरी और उसके पिण्डग्रहका माप तो सर्वथा कल्पनातीत ही है। अतः इस तरहके अनन्त ग्रह नक्षत्र-तारकादिको जो धारण करनेवाला है, ईश्वर वही है; क्योकि वह महान् कार्य किसी अन्य प्रयत्नवान्से साध्य नहीं हो सकता। धृति होनेसे आकाशस्थित पक्षिकर्तृक फल धृतिवत् अनुमानसे सारे ब्रह्माण्डका धारक ईश्वर ही है, यही सिद्ध होता है।

भूत अर्थात् प्राणी आदि पदार्थोंका जो अपनी-अपनी मर्यादाका अनुल्लङ्घन दिखायी देता है, वह किसी नियामकके अधीन है। अतएव

नियतिबद्ध होने अर्थात् जिस प्रकार सैनिक अपने स्वामीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करता, उसी प्रकार कभी नियमका अतिक्रमण न करनारूप अनुमानसे और 'भीषाऽस्माद्वात· पवते' अर्थात् उसके भयसे वायु सर्वदा अपने नियमित गतिसे चलता है, आदि श्रुतिवचनोसे इस जगत्का नियन्ता ईश्वर ही सिद्ध होता है।

ससारमे रेखादि चिह्नोसे अक्षरोका बोध होना, नदीमें प्रवाहवृद्धिको देखकर ऊपर वृष्टि हुई है, ऐसा ज्ञान होना एव किसी दूर देशस्थ बान्धवके दु खपूर्ण समाचारसे दु ख और सुखपूर्ण समाचारसे सुख होना—ये सब अनुमान प्रमाणके प्रामाण्यको अनुपेक्षणीय सिद्ध करते हैं। अतएव अनुमानसिद्ध विषयको अवश्य अङ्गीकार करना और मानना पडता है।

जीवोको जो दु खादिका तारतम्य अथवा न्यूनाधिक भाव जान पडता है, वह तरतम-भावापन्न अर्थात् उनके कर्मोके परिणामभूत हैं, जिस तरह लोकमें मनुष्योकी विद्या, शौर्य, बल आदिके तारतम्यके अनुसार उनके पारितोषिकमें तारतम्य होता है, उसी तरह सुख-दु खादिका तारतम्य मनुष्योके प्राक्तन कर्मोकी सिद्धि करता है और इतना मान लेनेपर कर्मोके फलोका तारतम्य किसी विचारक या दाताके अभावमे घटित नहीं हो सकता। अत कर्म-फलनियामकके रूपमें ईश्वरकी सिद्धि बहुत सरलतासे हो जाती है।

पाठशालाका कोई विद्यार्थी यदि अपने पाठ्यग्रन्थका पहलेसे अभ्यास किया रहता है तो उसको दूसरी बारके अध्ययनमे पहलेकी अपेक्षा शीघ्र अर्थबोध हो जाता है—जो उसके पूर्वाभ्यासका सस्कार होता है। इसी तरह जिस विद्यार्थीमे पहले-पहले अध्ययन करनेके समय ही ग्रहण और धारणकी विलक्षण सामर्थ्य है, उसे उसके

पूर्वसंस्कारकी अपेक्षासे ही मानना पड़ेगा और इतना मान लेनेपर पूर्वजन्मकी सिद्धि अपने-आप हो जायगी।

बछड़ेको जो जन्म लेते ही बिना किसीकी प्रेरणाके स्तनपानमे प्रवृत्तिरूप इष्ट भान होता है, वह भी इस विषयमें गमक या साधक बनता है। उसमे इस प्रकारके संस्कारका उद्‌बोधन करानेवाली क्षुधा होती है। किसी अन्य उद्‌बोधकके बिना पूर्वजन्मानुभूत संस्कारका उद्‌बोधन नहीं होता।

पाकादि कर्मोका नियतरूपसे सफलत्व देखनेसे यह विदित होता है कि इस जन्ममे किये गये उस कर्मोका अवश्यम्भावी फल, जो कि इस जन्ममे नहीं भोगा गया, भोगनेके लिये भावी जन्म निश्चित है। इसलिये जीव भी इस शरीरके अतिरिक्त जन्मान्तरमें जानेवाला सिद्ध होता है।

प्राण आदिसे युक्त होनेके कारण यह शरीर सात्मक कहा जाता है और जो प्राणादिसे युक्त नहीं है, वे पाषाणादि सात्मक नहीं हैं। यहाॅ यह शङ्का होती है कि जब प्राणादिकी स्थितिमें ही सात्मकत्व और निर्गतिमे निरात्मकत्व दीखता है, तब प्राणादिको ही आत्मा क्यो न कहा जाय ? इसका समाधान यह है कि प्राण तो प्रतिक्षण शरीरसे निकलते रहते हैं, किंतु फिर भी शरीर निर्जीव नहीं देखा जाता; अतः प्राण कदापि आत्मा नहीं हो सकता। दूसरी शङ्का यह होती है कि जिस तरह घड़ीमें उसके अवयवोंकी रचना और योजनाविशेषसे उसकी गतिक्रिया प्रतीत होती है, उसी तरह शरीरमें भी अवयवोके सन्निवेशसे सात्मकता न मानी जाय ? इसका भी यही समाधान है कि पार्थिव और क्यों अचेतन पदार्थोका व्यापार अर्थात् उनकी नियमित गत्यादि चेष्टाएँ किसी चेतन प्रेरकके ही अधीन होती हैं, जैसे पंखेका पवन। यदि इसी शङ्काको

यो कहा जाय कि जिस प्रकार द्राक्षादिका किसी विधिविशेषसे सयोग होनेपर मद-शक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार भूतोका विशिष्ट रीतिसे सयोग होनेपर चैतन्यकी सृष्टि होती है—तो यह कथन भी समीचीन नहीं जान पडता, क्योंकि इससे मृत-शरीरोमे भी चैतन्य होनेकी आपत्ति खडी हो जायगी। कदाचित् यह कहा जाय कि प्राण-सहकारी कारणोके अभावसे मृत-शरीरमे चैतन्य होनेकी आपत्ति न होगी, तो इस अवस्थामे भी सुषुप्तिमे विज्ञानधाराके अनुच्छेदका प्रसग आ जायगा। अतएव यह सिद्ध होता है कि इस देहके अतिरिक्त देहाधिष्ठाता कोई चेतन आत्मा अवश्य है।

अध्ययनकालमें आद्य अध्ययन उपदेशमूलक ही होना चाहिये। आधुनिक युगमें जैसा अध्ययन होता है, उससे आदिविद्वान् सर्वथा ईश्वर ही सिद्ध होता है। यहाँ यदि कोई कहे कि 'इस सारे जगत्का कारण स्वभाव मान लिया जाय तो बीचमे ईश्वरकी कोई जरूरत नहीं पडेगी' तो इसके उत्तरमें यह पूछना है कि यदि जगत्का कारण स्वभाव है तो वह स्वभाव एक है या अनेक ? यदि एक है तो आम्रफलमे निम्बफलकी उत्पत्ति होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि स्वभावको अनेक माना जाय तो वे नित्य हैं या अनित्य ? नित्य हें तो सहकारिकारण सापेक्ष हैं या निरपेक्ष ? यदि वे स्वभाव अन्य सहकारी कारणोकी अपेक्षावाले और कार्यारम्भक हैं तो सहकारी नित्य होनेके कारण सर्वदा कार्यारम्भकी आपत्ति आवेगी, और यदि सहकारी अनित्य होगे तो फिर उनका भी आरम्भ कोई दूसरा स्वभाव माना जायगा और तब अनवस्था उत्पन्न हो जायगी जो सर्वथा अनिष्ट ही है। अथवा यदि सहकारी कारणोंकी अपेक्षा अवश्य है ही और उन सहकारी कारणोंसे ही कार्यारम्भ होना सम्भव है तो फिर स्वभावको कारण मानना सर्वथा

व्यर्थ हो जाता है एव सहकारीकी भी अपेक्षा न करनेपर सर्वथा कार्यारम्भके प्रसगकी आपत्ति खडी रहेगी। यदि स्वभावको अनित्य माना जाय तो उसको किसी अन्य स्वभावकी अपेक्षा रहेगी और उस स्वभावान्तरके विषयमे फिर नित्यत्व तथा अनित्यत्वके विकल्पोका झझट उठानेपर निरुत्तर हो जाना पडेगा।

एक बात और भी विचारणीय है। यदि स्वभावको जगत्का आरम्भ माना जायगा तो उसको सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् भी मानना ही पडेगा, क्योकि जिस वस्तुका निर्माण होता है, उसका निर्माता उस वस्तुसम्बन्धी सारी ज्ञातव्य बातोकी जानकारी रखता है और उस वस्तुको पूरी तरहसे तैयारी करनेकी शक्ति रखता है, ऐसा नियम है। ऐसी अवस्थामे दूसरे जिसको 'सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् स्वभाव' कहेंगे, उसीको हम 'ईश्वर' कहते है, परतु ऐसी स्थितिमें उसे 'स्वभाव' नहीं कह सकते। हॉ, एक बात यह शेष रहती है कि स्वभावका अर्थ किसी हेतुका अभाव माना जाय तो काम चल सकता है, किंतु इस अर्थसे भी बिना भोजनकी तृप्ति या बिना बीजके अङ्कुरादिकी उत्पत्ति आदि होनेका प्रश्न उपस्थित हो जायगा और जगत्के कार्य-कारणभावको जलाञ्जलि दे देनी पडेगी। अस्तु। यही समझकर मैं तो श्रुतिकी लकीरोका ही फकीर हूँ। मेरी दृष्टिमे—

'आत्मा नारायणः परः' (नारायणोपनिषद् १२। १)
'उमां हैमवतीम्' (तलवकारोपनिषद् ३। २५)

उमासहायं परमेश्वरं विभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिन्तमसः परस्तात्॥

अर्थात् आत्मा ही परम नारायण है, उमा हैं सहाय (अर्द्धाङ्गिनी) जिनकी, उन तीन नेत्रोवाले, नीलकण्ठ, प्रशान्तमूर्ति, व्यापक, सम्पूर्ण भूतोके उत्पादक, समस्त प्राणियोके अन्तर्यामी श्रीसदाशिवका ध्यान करनेसे उपासक अज्ञान (ससार) से पार हो जाता है, इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे नारायण, पराशक्ति और महेश्वर आदि ईश्वर-विग्रहोकी नि सदेह सिद्धि हो जाती है। अतएव और प्रमाणोके झझटसे क्या दरकार है ?

२—ईश्वरको न माननेमें कौन-कौन-सी हानियाँ हैं ? यह देखा जाता है कि जो बालक अपना हिताहित समझनेमें सर्वथा असमर्थ है, उसको सीढीपरसे गिर जानेसे मरणान्त दु ख होगा, इसका जरा भी खयाल नहीं होता, परतु कोई दयालु पुरुष यदि खडा होकर उसको देखता है तो वह झट दौडकर बालकको गिरनेसे बचानेका प्रयत्न करता है। इसी तरह इस मृत्युलोकमे अज्ञ और प्राकृत पामरजनोंको तो अपने घरके लकडी, तैल, नमक, मिर्च आदिके प्रपञ्चोसे ही फुरसत नहीं मिलती। उसीमे वे अपनी सारी उम्र बिता देते हैं और उनके सामने कभी ईश्वरको मानने न माननेका प्रसग भी नहीं आता, परतु विश्व-हितैषी अनुग्रहमूर्ति महात्मा लोगोने डकेकी चोट कह दिया है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

अर्थात् इस मनुष्य-जन्ममे ही 'सत्य-परमात्मा है' ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये। यदि प्रकृष्ट-पुण्य-परिपाकलभ्य इस अमूल्य मानवजन्ममे परमात्माको जाननेका यत्न नहीं किया गया—मौका नहीं मिला तो **'महती विनष्टि'**—बहुत बडी हानि हुई, क्योकि बार-बार मनुष्य-जन्मकी प्राप्ति कठिन है।

एक अधा घरसे बाहर निकलनेके लिये द्वार खोजने लगा। घूमते-घूमते—हाथोसे घरकी दीवारको टटोलते-टटोलते जब द्वारके

पास पहुँचा, तब उसके सिरमे खुजली मालूम हुई और दोनों हाथोसे सिरको खुजलाते-खुजलाते द्वारसे बहुत दूर चला गया। इसी प्रकार उसने न जाने कितने चक्कर लगाये, परंतु जब दरवाजेके समीप पहुँचता तभी सिर खुजलाने लगता और दोनो हाथ उसीमे रुक जानेसे द्वार न पाता तथा आगे बढ़ जाता। इसी तरह अज्ञानान्ध जन मनुष्य-जन्मरूपी मुक्तिका द्वार सामने पाकर भी यदि परमात्माको जाननेकी चेष्टा नहीं करते तो सासारिक प्रपञ्चरूपी खुजलीमें फँस जाते हैं और उससे उनको कदापि मुक्ति नहीं मिल पाती। वे बार-बार जन्म-मरणके चक्करमे घूमते रहते हैं। इस हानिसे बढ़कर दूसरी और कौन-सी हानि हो सकती है ? इसीसे कहा गया है कि '**महती विनष्टिः**'; अर्थात् ईश्वरको न माननेसे केवल हानि ही नहीं, जिसका प्रतीकार न हो सके, प्रत्युत ऐसा महान् विनाश होता है।

चौथे प्रश्नके सम्बन्धमे मेरा यह निवेदन है कि यदि मै कोई महात्मा, सिद्ध, योगी अथवा तपस्वी होता तो ईश्वरसाक्षात्कारका दावा रख सकता और तत्सम्बन्धी कुछ बाते भी बतलाता, परतु यहाँ तो एक सामान्य ब्राह्मण कहलानेका ही अधिकार है। अतएव मेरे लिये ईश्वरानुग्रहाकाङ्क्षी ही बना रहना गनीमत है। इसमे आगे फलातिशयका कुछ निश्चित लाभ नहीं दिखायी देता।

आजसे करीब दो सौ वर्ष पहले काठियावाड़ प्रान्तके मोरवी नगरमें एक महाराज कायॉजी थे। उसी नगरमे मॉडण नामक एक वृद्ध भक्त कुम्हार भी निवास करता था। वह अपने घरका सब उद्योग-धंधा अपने बाल-बच्चोको सौंपकर स्वयं भगवान्‌का भजन करता था। एक दिन किसीने राजाको खबर दी कि 'आपके नगरमे मॉडण नामका एक कुम्हार भक्त रहता है, जिसकी सहायता भगवान् करते हैं।' इसपर

राजाने घोडा-गाडी भेजकर भक्त मॉडणको अपने राजमहलमें बुलवाया। जब वह सामने पहुँचा, तब राजाने बडे स्वागतके साथ 'आइये भगतजी।' कहकर अपने सामने गद्दीपर बिठाया, फिर हाथ जोडकर वे कहने लगे कि 'आपको भगवान्‌की सहायता प्राप्त है, हमको भी थोडा-सा उनका परिचय कराइये।' इसके उत्तरमे मॉडण भगतने कहा कि "महाराज मैं जो कुछ हूँ, उसको आप जानते ही हैं। कुम्हारकी जातिका पेशा मिट्टीके बरतन बनाना और उसको भाडमें पकाकर बेचना होता है। भाडके लिये घास-फूसकी जरूरत होती है, जिनको जुटानेमें हमारे कुम्हार लोगोको बडी मुसीबत उठानी पडती है। यहाँतक कि उनको आपकी घुडसालामे भी आना पडता है। वहाँ उन्हें आपके सईसोकी अवाच्य गालियाँ और चाबुकोकी मार सहनी पडती है, फिर भी गरजबस वे गालियाँ और मार सहकर घोडोके मूत्रसे गीली और सडी हुई घासको उठा ही ले जाते हैं। अब आपको मेरी जातिका कुछ खयाल आया होगा। ऐसी हीन जातिमे पैदा होनेवाले मुझ-जैसे एक गरीब आदमीको जब आप-जैसे राजाने दूत भेजकर इतने सम्मानके साथ बुलवाया, बडी नम्रतासे 'आइये भगतजी।' कहा और अपने समक्ष गद्दीपर बिठाया, तब इससे अधिक और क्या चमत्कार आप देखना चाहते हैं। यह सब भगवान्‌के नाम लेनेका ही फल है। यदि आप भी सच्चे दिलसे भगवत्स्मरण करेगे तो इस राजवैभवसे कई गुना सुख आपको मिलेगा।"

वास्तवमें यही बात सच्ची है। जो सच्चे भक्त होते हैं, वे ईश्वर-साक्षात्कारका ढिंढोरा नहीं पीटते और सासारिक सम्मानकी भी उनमें कमी नहीं रहती।

★

सर श्रीआनन्दस्वरूपजी 'साहबजी महाराज'

१—हमे ईश्वरमे विश्वास करना चाहिये, क्योंकि ईश्वर आत्मतत्त्वके लिये सम्भवनीय आध्यात्मिक विकासकी सर्वोच्च अवस्था है।

२—यदि हम ईश्वरमे विश्वास न करेंगे तो या तो निरुद्देश्य जीवन बिताते रहेंगे या किसी तुच्छ विषयकी प्राप्तिमें इसे लगा देगे, जिससे हमे जीवनकी सर्वोच्च अवस्थाका आनन्द प्राप्त नही हो सकेगा।

३—ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें मेरे पास दो प्रमाण हैं—व्यक्तिगत अनुभव और भगवत्प्राप्त महात्माओके अखण्डनीय आप्तवाक्य।

४—सन् १८५७ ई० में मैं अम्बालासे मैट्रिक्यूलेशनकी परीक्षामे सम्मिलित हुआ था। सभी कहा करते थे कि मैं अनुत्तीर्ण हो जाऊँगा; क्योंकि मैं क्लासमे कमजोर था। मैं बहुत ही खिन्न रहा करता था और किंकर्त्तव्यविमूढ-सा हो गया था। मैं एक मिशन हाई स्कूलसे परीक्षामे बैठा था। उस स्कूलमे पढ़ाई आरम्भ होनेके पहले प्रतिदिन प्रातः ईश्वर-प्रार्थना हुआ करती थी, परंतु कोई भी विद्यार्थी उसमे दिलचस्पी नहीं रखता था। परीक्षाफलके प्रकाशित होनेके एक दिन पहले, जो नियमत लाहौरसे प्रकाशित होनेको था, जब मैं अत्यन्त खिन्न-सा हो रहा था, तब मेरे मनमे आया कि मैं भी तनिक प्रार्थना करनेकी चेष्टा करूँ। अपने अबोध बालभावसे मैं पाँच मिनटतक ईश्वरकी प्रार्थना करता रहा और तत्काल ही मुझे एक ऐसा आन्तरिक भान हुआ, जिससे मुझे निश्चय हो गया कि मेरा परीक्षाफल सर्वथा अनुकूल होगा, तब मुझे बहुत ही आश्चर्य और आनन्द हुआ। इस अनुभवसे मुझे स्वभावतः

सान्त्वना मिली और मैं तमाम चिन्ताओसे मुक्त हो गया। दूसरे दिन प्रात काल मै पुन प्रार्थनाके लिये बैठा तब फिर मुझे वही अनुभव हुआ, परतु जिस समय मैं आसनपर बैठा इसका आनन्द ले रहा था, मेरी उस कोठरीकी खिडकीके नीचेसे किसीने पुकारकर कहा कि 'तुम अनुत्तीर्ण हो गये।' लाहौरसे मेरे एक सम्बन्धीका इसी आशयका तार आया था। मैं इस समाचारको सुनकर अवाक् रह गया। मैं धीरेसे अपनी कोठरीके दरवाजेपर पहुँचा और बडी आशङ्कासे उसे खोला, परतु एक अन्तर्ध्वनि बलात् मुझे शान्त और निर्भय रहनेके लिये प्रेरित करने लगी। मै सडकपर गया और तारको अपने हाथमें ले लिया। उसे एक, दो, तीन बार पढा और भीतर-ही-भीतर बहुत दु खी हुआ। मेरी दादी, जो वहाँ आ गयी थीं, मुझे सान्त्वना देने लगीं, परतु मैंने उसे यह कहकर चुप करा दिया कि मैं फेल नहीं हो सकता। मैं पोस्ट-आफिस गया, जो मेरे घरसे दो फर्लांगकी दूरीपर था और वहाँ मैने अपने सहपाठियों और उनके सम्बन्धियोंका जमघट देखा, जो अनुत्तीर्ण छात्रोकी नामावलीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। करीब साढे नौ बजे पोस्टमास्टरने हमारे हाई स्कूलके एक प्रतिनिधिको एक बद लिफाफा दिया। लिफाफा खोलकर नामावली निकाली गयी। उसके देखनेपर यह पता लगा कि मैं भी अनुत्तीर्ण नहीं हुआ हूँ, बल्कि विचाराधीन (under-consideration)रखा गया हूँ।इस 'विचाराधीन' शब्दका अर्थ कोई भी नहीं समझा सका, क्योकि यह शब्द प्रथम बार ही अनुत्तीर्ण छात्रोकी सूचीमे आया था। एक ही सप्ताहमे जब मुझे उत्तीर्ण होनेकी सूचना मिल गयी, तब इस शब्दका अर्थ स्पष्ट हो गया।

यही मेरे जीवनकी पहली घटना हे, जिससे भगवान्के अस्तित्व और उसकी दयामे मेरा विश्वास दृढ हुआ।

═★═

पण्डित श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, काशी

(१)

यह उस समयकी घटना है, जब मैं चौदह वर्षका था। पजाब गया था। वहाँ मेरे ननिहालके लोग आये और मुझे घोडेपर सवार कराकर ले चले। मैंने अपने ठाकुरजीको भी साथ ले लिया था। रास्तेमें मेरे अन्य साथियोने अपने-अपने घोडे दौडाये। मेरा घोडा भी उनके पीछे दौडने लगा। मुझे सवारी करनेका पूरा अभ्यास न था, इससे मैं थोडी दूर जाकर घोडेसे गिर पडा। पास ही एक नहर बडे वेगसे बह रही थी, मेरे ठाकुरजी उसमे जा गिरे।

उठनेके बाद मैंने सबसे पहले ठाकुरजीको खोजा। बहुत छान-बीन की, पर पता न लगा। फिर तो मैं अधीर हो उठा। मेरे साथियोने मुझे बहुतेरा समझाया-बुझाया, पर मेरी अधीरता बढती ही गयी। वे लोग मुझे समझा-बुझाकर अपने घर गये और मैं अपने मामाके घर गया, परतु ठाकुरजीका वियोग मुझे असह्य था। मैं अनाथके समान व्याकुल होकर रोता रहा। मुझे खाने-पीनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। मेरे मामाके घरमें सब लोग मेरी इस अवस्थासे बहुत ही उदास हो गये। भोजनके लिये जब उन लोगोने आग्रह किया, तब मैंने कह दिया कि अब तो जबतक ठाकुरजी न मिलेंगे अन्न ग्रहण न करूँगा।

सध्याको मेरे माता-पिता भी आ गये। मुझे रोता हुआ देखकर उन्होने मुझे आश्वासन दिया और जबरन् दूध पिलाया। दूधके घूँट

बडी कठिनाईसे मेरे गलेके नीचे उतरे। रोते-रोते सध्या हो आयी और रोते-ही-रोते मै रातको सो गया।

सोनेपर मुझे एक स्वप्न दीख पडा। एक सुन्दर पुरुष मेरे ठाकुरजीको हाथमें लिये हुए आया और उसने मुझसे कहा—'लो अपने ठाकुरजीको! पहचानो तो, यही न है तुम्हारे ठाकुरजी?' मैंने उनके हाथसे अपने ठाकुरजीको ले लिया और मैं मन-ही-मन आनन्दित हो उठा, परतु नींदके टूटते ही न तो वह मनुष्य ही रहा और न ठाकुरजी ही मेरे पास रहे। मै पछताने लगा और फिर मुझे निराशाने आ घेरा।

दूसरे दिन प्रात काल दो घटे दिन चढनेपर खबर मिली कि ठाकुरजी मिल गये। घटना इस प्रकार हुई कि जिस समय मेरे ठाकुरजी नहरमें गिरे थे, उस समय उसमें बाढ आयी थी। फिर पीछे पानी कम हो गया। वहाँ एक स्त्री अपने एक लडकेको साथ लेकर वस्त्र धोनेके लिये गयी। ठाकुरजीके खोने और मेरे रोनेकी खबर तो फैल ही रही थी। बालकने ठाकुरजीको किनारे पाया और उस स्त्रीने उससे उन्हे लेकर एक आदमीके द्वारा शीघ्र ही मेरे पास भेजवा दिया।

अपने खोये हुए ठाकुरजीको पुन पाकर मुझे जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर तो ठाकुरजीकी पूजा करके और उनका प्रसाद पाकर मैं कृतार्थ हो गया। मुझे इस घटनाका वर्णन भेजते समय डर लग रहा है कि कहीं मैं दण्डनीय न बनूँ।

(२)

करीब साठ वर्षकी बात है। बाबू शिवदयालजी अपनी पत्नीको साथ ले पजाबसे काशी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने यह निश्चय किया कि परमात्मा जैसे रखेंगे वैसे ही रहकर निर्वाह करेंगे, पर मोक्षदायिनी काशीको न छोडेंगे। महल्ला नीची ब्रह्मपुरीमें उन्होंने एक छोटा-सा

मकान खरीदा। साधारण कारोबार शुरू किया और सदाचारपूर्वक सरलतासे भगवान्का भजन करते हुए भगवत्-शरण होकर जीवन बिताने लगे।

एक दिन रात्रिको उन्हें एक स्वप्न हुआ। आनन्दकन्द नन्दनन्दन मुरलीमनोहर श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन्हे दर्शन देकर कहा—'भाई। मै तुम्हारे मकानकी दीवालमें हूँ। पास ही नाली बह रही है। उससे बडी दुर्गन्ध आती है। मुझे यहाँसे निकालो।' इस स्वप्नके देखते ही शिवदयालजीकी आँखें खुल गयीं। सामने देखा तो वह परम मनोहर मूर्ति गायब है। इस विचित्र स्वप्नसे उन्हें बडा ही कुतूहल हुआ। नाना प्रकारके सकल्प-विकल्प मनमें उठने लगे। सबेरा होते ही उन्होने कुछ विद्वानोसे इस विषयपर सम्मति माँगी। एक विद्वान्ने कहा—'भाई। स्वप्नकी बात हे, इसमें क्या कहा जाय ? हाँ, आज भगवान्की प्रार्थना करके सोना। यदि पुन वैसा ही स्वप्न हुआ तो कल विचार किया जायगा।' पण्डितजीको विश्वास नहीं हुआ, उन्होने यह कहकर सरल शिवदयालजीको टाल दिया।

उन्होने वैसा ही किया। सोनेके पूर्व पवित्रतापूर्वक शुद्ध हृदयसे भगवान्की प्रार्थना करके सोनेपर पुन वैसा ही स्वप्न हुआ। भगवान्ने पुन उसी मनोहर मूर्तिसे दर्शन दिया और बोले—'तुम दूसरे लोगोसे क्यो पूछते हो ? क्या मैं तुम्हे व्यर्थ ही आदेश देता हूँ ?'

बस, क्या था। शिवदयालजी चौंककर उठ बेठे और भगवत्-स्मरण करते हुए उन्होंने ज्यों-त्यो रात बितायी। प्रात होते ही राजोको बुलाकर मकान खुदवाना शुरू कर दिया। उनके इस कामको देखकर पडोसी लोग तरह-तरहकी बातें करने और हँसने लगे। इतनेमे एक मजदूरने जैसे ही दीवालमें एक झटका मारा, वैसे ही चूनेके एक ढेलेमे

सटी हुई भगवान् वृन्दावन-विहारीलालकी एक मनोहर स्वर्ण-मूर्ति एकाएक नीचे गिरी। उस समय वहाँ कितने ही स्त्री-पुरुष-बच्चे खड़े थे। श्रीशिवदयालजीकी छोटी कन्या भी, जिसका नाम मुन्नादेवी था, वहाँ खड़ी थी। उसकी निगाह उस ढेलेमें चिपकी हुई मूर्तिके ऊपर पड़ी और उसने शीघ्र ही कहा—'देखिये बाबूजी, यह क्या चीज है ?'

शिवदयालजीने जो भगवान्‌की उस स्वर्णमयी मनोहर मूर्तिको देखा वे आनन्दसे उछल पड़े। उनके हर्षका पारावार न रहा। वे प्रेम-गद्‌गद हो उठे, आँखोंसे अश्रुधारा बह चली। भगवान्‌की उस मूर्तिको ढेलेसे अलग करके विद्वानोंको बुलाकर उन्होने विधिपूर्वक पूजा करके एक घरमें स्थापित किया। उसी दिनसे दम्पति श्रीभगवान्‌की सेवामें तन-मन-धनसे लग गये। दिन-रात ठाकुरजीकी चर्चा और अर्चामें बीतने लगे।

अब भगवान्‌की कृपासे उनके व्यवहारमें भी उन्नति होने लगी। कुछ ही दिनोंमें उनके पास काफी सम्पत्ति हो गयी। उन्होने उस मकानको नये ढंगसे बनाया। चौमासा, सर्दी, गरमीके लिये ठाकुरजीके निमित्त भाँति-भाँतिके सामान शृङ्गार आदिके समारोहमें ही उनके दिन बीतने लगे। अब तो उनकी निष्ठा इतनी बढ़ी कि जो कुछ करना होता, सब भगवान्‌के आगे निवेदन करते और उनसे जो आदेश होता उसीके अनुसार आचरण करते।

सुख-दुःख, शादी-गमी सब प्रकारके व्यवहारमें ठाकुरजीकी आज्ञाका पालन करते हुए उन्होने अपने जीवनमें अन्त समयतक भगवान्‌की सेवामें ही शान्ति-लाभ किया।*

═══ ★ ═══

* पूज्य शास्त्रीजी महाराजने कृपा करके काशीमें मुझे भगवान्‌की इस मूर्तिके दर्शन कराये थे।—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीक्षितीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रश्न—ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

उत्तर—इसलिये मानना चाहिये कि इससे हमारा सब प्रकारसे कल्याण होता है और सब प्रकारकी उन्नतिके लिये हम सरल-से-सरल मार्ग पा जाते हैं। यही कारण है कि गत शताब्दिके सुप्रसिद्ध उपयोगितावादी दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिलने भी यह कहकर इसकी उपयोगिताको स्वीकार किया है कि कम-से-कम यह कल्याण साधन करनेवाली कल्पना है (At least this is a good working hypothesis)। ईश्वरमे जो अचल श्रद्धा रखते है, उनके मनमे अगाध शान्ति प्राप्त होती है, क्योकि वह एक ऐसे 'अजेय चट्टान' के समान है, जो शरणमें आनेवालोकी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहता है। ईश्वरमे विश्वास करनेसे ही हम दृढतापूर्वक कर्तव्य-पालनमे लग सकते हैं। इस विश्वाससे यह ससाररूपी मरुभूमि असख्य सुगन्धपूर्ण सुमन राशिकी सुरभिसे आमोदित उद्यान बन जाती है। इससे भगवान्को प्रिय लगनेवाले सत्कर्मोंके करनेमे मनुष्यकी स्वाभाविक प्रेरणा होती है तथा उसकी क्षमता भी बढती जाती है। सक्षेपमें कहा जा सकता है कि ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास करनेसे ही हम अपने उच्चतम भावो और आदर्शोंकी पूर्णताको प्राप्त हो सकते हैं और इसीसे पापके ऊपर पुण्य विजयी हो सकता है। प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुषका यही आन्तरिक विश्वास है।

प्रश्न २—ईश्वरमे विश्वास न करनेसे हानि ही क्या है ?

उत्तर—यदि कोई मनुष्य ईश्वरके अस्तित्व तथा इसके ऊपर अवलम्बित आत्मा और मरणोपरान्त जीवनमे विश्वास नही करता, किंतु प्रकृतिके नियमोका दृढतापूर्वक पालन करता है तो कदाचित् उसकी कोई प्रत्यक्ष हानि नही होगी, क्योकि प्राकृतिक नियम मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोके हितके लिये इस जगत् तथा प्रकृतिके 'स्रष्टा' के द्वारा बनाये गये है, जिसे भगवान्, ईश्वरादि अनेको नामोसे पुकारा जाता है, परतु जो परमात्मा तथा इसपर अवलम्बित आत्मा और मरणोपरान्त जीवनमे भी विश्वास नही करता, उसकी अप्रत्यक्षरूपसे तो हानि होती ही है। साथ ही इससे प्रत्यक्ष हानिका मार्ग भी खुल जाता है। वह सत्य बोलना, माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना आदि कर्तव्योके पालन करनेमे अपनेको परतन्त्र नहीं मानता और न वह ऊँचे-से-ऊँचे भावो और आदर्शोंको प्राप्त करनेकी मनुष्यकी लालसामे तथा उन सारे विषयोमे ही कोई तथ्य देखता है, जिसके लिये ससारमे मानव-जीवनकी उपयोगिता होती है। वह ससारमे प्रत्येक वस्तुके पीछे मृत्युको घात लगाये हुए देखता है और अपनेको भी मृत्युके हाथका खिलौना समझता हे। यदि वह अपनी तर्क-बुद्धिको काममे लावे तो असत्यके ऊपर सत्य, पापके ऊपर पुण्य और अन्यायके ऊपर न्यायकी महत्ता निश्चित करनेमे उसे ऍडी और चोटीका पसीना एक करनेकी आवश्यकता ही नहीं हो सकती है, क्योकि यह सारे भाव उसके लिये स्वप्नमात्र है। ज्ञान, प्रेम और श्रद्धाके सुन्दर भावोंको अपने भीतर उठते हुए वह देखता अवश्य है, परतु उसके हृदयमे किसने और क्यो उन भावोका आरोपण किया है, इस विचारके उठते ही वह किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। न तो समाज और न कोई व्यक्ति ही निरी नास्तिक

विचारधाराका अवलम्बन कर यथार्थ कल्याण और उन्नतिके पथकी ओर अग्रसर हो सकता है।

मनकी शान्ति और आनन्दमें तथा नास्तिकतामें पूर्व और पश्चिमका अन्तर है। जगत्‌की सृष्टि और पालन करनेवाले प्रेममय प्रभुके अस्तित्वमे जो दृढ विश्वास रखते हैं, वे समझते हैं कि उनके बन्धु-बान्धव अथवा प्रियजन अपने-अपने कर्मफलके अनुसार इहलोक या परलोकमे जहाँ-कहीं रहे, भगवान्‌के आनन्दपूर्ण प्रेमकी ज्योतिसे वञ्चित नही हो सकते। किसी भी बुद्धिमान्‌के लिये यह बिलकुल समझके बाहरकी बात है कि एक मनुष्य जो अपनेको और दूसरोको केवल अणु-परमाणुओंके पुञ्जीभूत अथवा भावो और वेदनाओकी राशिके रूपमे निर्जीव वस्तु मानता है, किसीसे प्रेम कर सकता है अथवा प्रेमकी आशा कर सकता है या विपत्तिमे उसकी सहानुभूतिकी आशा कर सकता है। मनकी वह शान्ति और आनन्द नास्तिकको सहज ही नही प्राप्त हो सकती, इस बातको अपने समयके नास्तिकताके जबरदस्त समर्थक श्रीडेविड ह्यूम (David Hume) ने अपने सुप्रसिद्ध 'Treatise on Human Nature नामक ग्रन्थमे भलीभाँति व्यक्त किया है। वे कहते हैं—

'The intense view of these manifold contradictions and imperfections in human reason has so wrought upon me and heated my brain that I am ready to reject all belief and reasoning, and can look upon no opinion as more probable or likely than another Where am I or what? From what causes do I derive my existence, and to what condition shall I return? Whose favour shall I covet ? And whose anger must I bread ? What beings

surround me ? And on whom have I any influence, or who has any influence on me? I am confounded with all these questions, and begin to fancy myself in the most deplorable condition imaginable, environed with the deepest darkness, and utterly deprived of the use of every member and faculty '

'मनुष्यकी युक्तियोकी अपूर्णता और उनमें अनेकों विरोधकी जटिलताको देखकर मैं इतना प्रभावित हुआ हूँ और इसने मेरे मस्तिष्कको इतना अस्त-व्यस्त कर दिया है कि मैं सब प्रकारके विश्वास और युक्तिको न माननेके लिये तैयार हूँ और किसी भी विचारको दूसरोंसे अधिक सम्भव और समर्थन योग्य नहीं मान सकता। मैं कहाँ हूँ और क्या हूँ? किस स्रोतसे मेरा जीवन प्रवाहित होता है और यह कहाँ जायगा ? किसकी कृपाकी मैं लालसा करता हूँ और किसके कोपसे मैं डरता हूँ ? मेरे चारो ओर यह क्या है ? किसके ऊपर मैं प्रभाव रखता हूँ और कौन मेरे ऊपर प्रभाव रखता है ? मेरे चारों ओर यह प्रश्न उठने लगते है और मैं अत्यन्त ही नैराश्यपूर्ण अवस्थामें— विचारमे पड जाता हूँ। मेरे चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता है और मेरी मानसिक शक्ति और सारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं।'

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें साररूपसे इसी तथ्यका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**' तथा '**संशयात्मा विनश्यति**।' भगवान्मे पूरी श्रद्धा होनेसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है, उनके अस्तित्वमे सशय करनेवाला विनाशको प्राप्त होता है।

प्रश्न ३—ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें आप कौन-सी युक्तियाँ देते हैं ?

उत्तर—प्राच्य और पाश्चात्त्य देशोके सतों और महात्माओं तथा

गम्भीर विचारकोकी ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमे लिखी हुई सहस्रो पुस्तके पायी जाती है। मैं तो एक तुच्छ सत्यका खोजी हूँ, ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करनेमे मैं अपनेको बहुत ही असमर्थ मानता हूँ, तथापि मेरे प्राणोके भी प्राण अकिञ्चन गुरुने मेरे प्राणोमे जिस सत्यको अभिव्यक्त किया है, उसे ही व्यक्त करनेकी मैं चेष्टा करूँगा।

सबसे पहली बात यह है कि वह सबके लिये स्वत प्रत्यक्ष है। सत और महात्मा कहते हैं कि वे बाह्य भौतिक जगत्की अपेक्षा उसे अधिक स्पष्टरूपमें देखते हैं, परतु जो ईश्वरमे श्रद्धा और विश्वास नहीं रखते है, उनके लिये सक्षेपमे चार प्रकारकी युक्तियॉ कदाचित् उपयुक्त होगी।

पहला प्रमाण कार्य और कारणके सम्बन्धपर अवलम्बित है। प्रत्येक कार्यका कोई-न-कोई कारण होता ही है—इसे सभी बुद्धिवादी मानते हैं। यह भावना कहॉसे उत्पन्न हुई ? इस भावनाका कारण क्या है ? यह कारण जड पदार्थ नहीं हो सकता, बल्कि वह कोई चेतन है, जिसे किसी दूसरे चेतनके भीतर इस भावके आरोपित करनेकी शक्ति है। इस विश्वासको अन्तर्ज्ञान कहते हैं, क्योकि इस विश्वासको किसी बाह्य हेतुके द्वारा या तार्किक युक्तिके द्वारा सिद्ध नही किया जा सकता। यह अन्तर्ज्ञान बतलाता है कि इस जगत्का एक स्रष्टा और पालक है, जिसकी आज्ञासे जगत् अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो रहा है। साथ ही यह भी बतलाता है कि मनुष्यके कर्म उसकी इच्छाओके परिणामस्वरूप है। यदि पूर्व क्षणकी घटनाको उत्तर क्षणकी घटनाका कारण कहा जाय तो बुद्धिमान् मनुष्य इससे सतुष्ट नहीं हो सकता, क्योकि वह तो पीछे ऐसी घटनातक जाना चाहता है, जिसे यथार्थ कारण या आत्माकी इच्छा कह सकें। यह विषय इतना महान् है कि इस थोडे-से स्थानमे उन सब बातोका, जिन्हें मैं कहना चाहता हूँ, वर्णन करना असम्भव है।

दूसरा दृष्टिकोण वह है, जिसमे प्रयोजन (Design) के द्वारा युक्ति दी जाती है। अन्तर्ज्ञानसे यह भी ज्ञात हो जाता है कि इस जगत्के स्रष्टाने जिस वस्तुका जहाँ प्रयोजन हुआ, वहाँ ही उस वस्तुको बनाया है। जहाँ कही और जब कभी हम किसी ऐसे कामको देखते है, जिसमें उस कामके करनेवालेकी पटुता दीख पडती है तो हम तुरत समझ जाते हैं कि इसे किसी बुद्धिमान्ने किसी-न-किसी प्रयोजनसे ही बनाया है। यदि कोई अपनी आँखे खोलकर देखे तो नि सदेह वह अपने चारों ओर पद-पदपर बहुत ही उच्चकोटिकी चातुरी और प्रयोजनको देखेगा। सूर्यका क्रमश उदय और अस्त होना, उसके चतुर्दिक् नक्षत्रोका भ्रमण करना, जीवनका विकास, हमारे मस्तिष्ककी भौतिक क्रियाके साथ मानसिक क्रियाका सम्बन्ध आदि ससारका नियम करनेवाले उस उच्चकोटिके ज्ञानकी ओर सकेत करते हैं, जिसे ईश्वर कहते हैं। जो कहते हैं कि आकर्षणशक्ति, विकास तथा प्रकृतिकी अन्य शक्तियाँ जगत्के अस्तित्वका कारण हैं, वे भ्रममे हैं, क्योकि ये केवल विधान या कार्यविधि अथवा नियम हैं, जिनके द्वारा उन्नतिकी ओर क्रमश अग्रसर होनेका मौका मिलता है और इस विधान या नियमका निर्माता ईश्वरके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं हे। डेविड ह्यूमको भी एक दिन सायकाल घर आते समय अपने एक मित्रसे कहना पडा था कि 'When one looks at the sky studded with stars, he can not but feel that it is all the work of an Intelligent Being 'जब कोई मनुष्य ताराजटित आकाशकी ओर देखता है, तब उसके मनमे यही उठता है कि यह सब कार्य किसी चेतनके हैं।' सर विलियम टामसनने अपने 'Recent Advances in Physical Science'नामक ग्रन्थमें स्पष्टाक्षरोमें अपनी सम्मति दी है कि 'Let on one imagine that, should we ever penetrate this mystery

(what is life in reality) we shall thereby be enabled to produce, except from life, even the lowest form of life 'किसीको यह कल्पना भी नहीं करनी चाहिये कि हम कभी इस रहस्य (वस्तुत जीवन क्या है ?) के तहतक पहुँच सकेंगे। हम जीवनके अतिरिक्त किसी भी उपादानसे छोटे-से-छोटे प्राणीको भी उत्पन्न करनेमें कभी समर्थ न होंगे।'

यहाँ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक टिंडल (Tyndal) की सम्मतिका अवतरण देना अनुपयुक्त न होगा—

'The passage from the physics of the brain to the corresponding facts of consciousness is unthinkable Granted that a definite thought and a definite molecular action occur in the brain simultaneously, we do not possess the intellectual organ nor apparently any rudiment of the organ, which would enable us to pass by a process of reasoning from the one phenomenon to the other They appear together, but we do not know why Were our minds and senses as expanded streng thened, and illuminated, as to enable us to see and feel the very molecules of the brain, were we capable of follwing all their motions, all their groupings, all their electric disdcharges, if such they be and were we intimately aquainted with the corresponding states of thought and feeling, we should be as far as ever from the solution of the problem How are these physical processes connected with the facts of consciousness The chasm between the two classes of phenomena would still remain intellectually impassible '

मस्तिष्कके भौतिक तत्त्वोंसे किस प्रकार चेतनाका उदय होता है, यह विषय अचिन्त्य है। यदि इस बातको मान भी ले कि मस्तिष्कमें एक विशेष विचारका उदय एक विशेष पारमाणविक क्रियाके साथ होता है तो भी हमे कोई मन -इन्द्रिय अथवा प्रत्यक्ष भौतिक साधन नहीं प्राप्त होता, जिससे हम इनमेंसे एक घटनासे दूसरी घटनाकी ओर युक्तित अग्रसर हो सके। ये दोनों एक साथ उपस्थित होती हैं, परतु इनका कारण हम नहीं जानते। यदि हमारा मन और इन्द्रियॉ इतनी व्यापक, बलवती और प्रकाशित होतीं कि हम मस्तिष्कके परमाणुओको देखने और अनुभव करनेमे समर्थ हो सकते, हम उनकी गति, उनके सगठन और उनके वैद्युत प्रभावका अनुगमन कर सकते, यदि ऐसा होता और विचार तथा सवेदनाकी तत्कालीन अवस्थाओसे हम पूर्णत अभिज्ञ होते, तो भी हम इस प्रश्नको हल करनेमें उतना ही असमर्थ होते जितना पहले थे। हमारे सामने यह प्रश्न रह ही जाता कि भौतिक क्रियाओंका चेतनासे क्या सम्बन्ध है ? और इन दो प्रकारकी परिस्थितियोंके बीचका मार्ग हमारे लिये अगम्य ही रह जाता।'

अब जगत्में अभिव्यक्त होनेवाले चातुर्य और प्रयोजनके आधारपर ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करते हुए अन्तमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सलेकी सम्मति मैं यहॉ देना चाहता हूँ— 'No doubt it is quite true, that the doctrine of evolution is the most formidable opponent of all the coarser form of teleology (argument from desing) The teleology which imagines that the eye, such as we find it in man or one of the higher animals, was made, with the precise structure it exhibits, for the purpose of enabling the animal who possesses it to see, has undoubtedly received its deathblow But it is necessary to

remember that there is wider teleology, which is not touched by the doctrine of evolution, but actually based upon the fundamental proposition of evolution The teleological and mechanical views of nature are not necessarily mutually exclusive On the contratry, the more purely a mechanist the speculator is, the more firmly does he assume the primordial molecular arrangement of which all the phenomena of the universe are the consiquences, and the more completely is he thereby at the mercy of the teleologist who can always defy him to prove that this primordial moleculararrangement was not intended to evolve the phenomena of the universe '

(The Academy,Oct 1868)

'नि सदेह यह बिलकुल सच बात है कि विकासवादका सिद्धान्त सृष्टि-प्रयोजनवाद (Teleology) की छोटी-बडी सारी बातोका पूर्ण विरोधी है? सृष्टि-प्रयोजनवाद यह जो कल्पना करता है कि मनुष्य या किसी बडे प्राणीकी आँख जिस उपयुक्त आकार-प्रकारमे दीख पडती है, वह उसको देखने योग्य बनानेके प्रयोजनसे बनी हुई है, इस कल्पनाका नि सदेह अब अन्त हो गया है, परतु यह स्मरण रखना होगा कि सृष्टि-प्रयोजनवादका कुछ और विस्तृत क्षेत्र है, जहाँ विकासवादकी पहुँच नहीं है, तथापि वह वस्तुत विकासवादके मौलिक सिद्धान्तोंके आधारपर अवलम्बित है। प्रकृतिके विषयमे सृष्टि-प्रयोजनवाद और यन्त्रविद्यासम्बन्धी विचार अवश्य ही परस्परविरोधी नहीं हैं। इसके विपरीत, यन्त्रविद्या (Mechanism) का अनुगामी जितना ही अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक विचारता है, उतना ही दृढतापूर्वक वह

प्रारम्भिक परमाणुओके गठनको स्वीकार करता है, जिसके जगत्के सारे दृश्य परिणाम हैं, और उतना ही अधिक वह सृष्टि-प्रयोजनवादकी कृपाका पात्र बन जाता है; क्योकि वह इसके सामने यह सिद्ध करनेमे समर्थ नही होता है कि इन प्रारम्भिक परमाणुओके संगठनका प्रयोजन जागतिक दृश्योको विकसित करना नहीं है।'

इस विषयमें हमारा तीसरा दृष्टिकोण सदाचारसे सम्बन्ध रखता है हम सभी जानते हैं कि वस्तुतः सत्य और असत्यकी भावनाने हमारे भीतर दृढ़ संस्कार जमा लिया है, मानो हमलोगोके हृदयमें कोई चुपके-से कहता है कि 'यह सत्य है, इसे ग्रहण करो और वह असत्य है, उससे दूर रहो।' सत्यको ग्रहण करना और असत्यसे बचना हमारा कर्तव्य है और इसमें सदा उत्तरदायित्वका भाव भरा रहता है। इन सदाचारकी भावनाओका बुद्धिकी व्यवस्थासे मूलतः विरोध होता है क्योकि कर्ताके लिये सत्य स्वयमेव स्वीकृत और असत्य स्वयं ही निन्दनीय होता है। इन सदाचारसम्बन्धी भावोके लिये हमें बाहरसे नहीं बल्कि अन्त.करणसे ध्यानके द्वारा सामग्री मिलती है। हमारे सदाचारका सम्बन्ध सीधे आत्मासे होता है। हृदयको शुद्ध रखने और सत्पथपर अग्रसर होनेके लिये जो हमारे भीतर नित्य आदेश होता रहता है, वह हमें परम नियन्ताकी ओर ही ले जाता है। हमें पूर्ण शुद्ध और पापसे नितान्त रहित—'**शुद्धमपापविद्धम्**'—होना चाहिये। वह अपनी प्रकृतिपूर्ण सत्यशीलतासे अलग नहीं हो सकता। यहाँ इस बातके खोजनेकी आवश्यकता नहीं है कि किन कारणोंसे और किस प्रकार हमारा सदाचार विकसित और प्रफुल्लित होकर इस पूर्णताको प्राप्त हुआ है। सच तो यह है कि हम अपने भीतर इस सदाचारको देखते हैं, उसका संस्कार हमारे द्वारा नहीं, बल्कि अवश्य ही उसके द्वारा होता

है, जिसका हमारे ऊपर पूर्ण नियन्त्रण है। अपने समयके सुप्रसिद्ध विकासवादी आल्फ्रेड रसल वालेस (Alfred Russel Wallace) ने अपनी Natural Selection नामक पुस्तकमे लिखा है कि—

'Although the practice of benevolence honesty or truth may have been useful to the tribe possessing those virtues that does not at all account for the peculiar sanctity attached to actions which each tribe considers right and moral as contrasted with the very different feelings with which they regard what is merely useful (Page 352)

When the human spirit bows down in reverence before one who is infinite righteousness and truth it surely is not to the idealised opinion of society that the worship is offered'

'उदारता, ईमानदारी और सत्यताके गुण जिन जातियोमे है, इनका अभ्यास उनके लिये लाभदायक हो सकता है, परतु इनसे उस पवित्रताविशेषसे कोई मतलब नहीं है, जो उन कर्मोपर निर्भर करती है, जिसे प्रत्येक जाति सत्य और सदाचारके रूपमे ग्रहण करती है, क्योकि ये गुण अपने विपरीत भावोके विरोधमे ही उपयोगी समझे जाते है।'

'जब मनुष्यकी आत्मा उसके सामने श्रद्धासे प्रणिपात करती है, जो निखिल धर्म और सत्यस्वरूप है, तब यह कहना असगत है कि समाजमें आदर्शवादके कारण ही ईश्वरकी आराधना प्रचलित है।'

हमारे समस्त कर्मोंके ऊपर हमारा सदाचार ही सत्यतापूर्वक शासन करता है, हमारी विभिन्न कामनाओ, वासनाओ और शक्तियोंमे वही

न्यायपूर्ण शासनकर्ताके रूपमे है। प्रारम्भिक आन्तरिक विश्वासके रूपमें यह ईश्वरके अस्तित्वका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

साराश यह है कि मनुष्यमे सदाचार ईश्वरीय व्यवस्थाके एक मुख्य अशके रूपमे अवस्थित है और अन्त करणकी ध्वनि, उत्तरदायित्व और पश्चात्तापमें, सत्य और असत्यके बीच नित्य विभिन्नताको प्रदर्शित करते हुए अपनेको अभिव्यक्त करता है और इस प्रकार हमे परम नियन्ताके रूपमे ईश्वरमें विश्वास करनेके लिये प्रेरित करता है, जिसके प्रति हम उत्तरदायी है, जो प्रारम्भिक आन्तरिक विश्वासोमेसे ही एक विश्वास है।

अन्तमे एक आस्तिकके लिये ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास करनेका सुदृढ आधार उसकी आध्यात्मिक चेतना है। वस्तुत हम जानते हैं कि हमारे अदर एक ऐसी वस्तु है, जिसे हम आध्यात्मिक चेतना या श्रद्धा कहते हैं, जो हमारे सदाचार या कार्य-कारणसम्बन्धी भावो या प्रयोजनके लिये प्रयोजककी आवश्यकतासे बिलकुल ही भिन्न है, यद्यपि ये सब श्रद्धाके पूर्ण विकासमे बहुत ही सहायक होते हैं। इसी आध्यात्मिक चेतनाके कारण हम इस जगत्की किसी भी वस्तु, किसी भी ज्ञान या किसी भी प्रेरणासे सतुष्ट नहीं होते, बल्कि अपने परम प्रभुको प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं, जो सबका आश्रय है और जो अनन्त और पूर्ण है। यह चेतना या श्रद्धा ही हमारी सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। यह हमे निश्चय करा देती है कि हम सब उसकी सतान हैं, जो निष्पाप है शुद्धस्वरूप है, सर्वज्ञ और पूर्ण मुक्त है। हमारे भीतर इसी चेतनाके कारण हमारी आत्मामे ईश्वरकी शुद्ध मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है। यही चेतना निश्चयपूर्वक बतलाती है कि हम केवल इस लोकके ही नहीं हैं, और लोक-लोकान्तरमे भ्रमण करते हुए जितना ही हम ज्ञान और आध्यात्मिकताके आगे बढते हैं, उतना ही हमें भगवान्के ऐश्वर्यका

गुणगान करनेकी अधिकाधिक शक्ति ओर सौभाग्य प्राप्त होता है। जब हम अनुभव करते हे कि हम उसकी सतान हैं, तब कहनेकी आवश्यकता नही कि हम साथ ही उसे पिताके रूपमें अनुभव करने लगते हे। तभी हम उसे पितृरूपमे, अपनी करुणामयी मॉके रूपमे, अपने प्रिय सखाके रूपमे पुकारते है। तभी हम असीम प्रेमके नित्य स्रोतके रूपमें अनुभव करते है। मनुष्यकी आत्माकी यह अवस्था इसकी उच्चतम अवस्था है। आध्यात्मिक धर्मका विस्तृत आधार यही अवस्था है। यह अवस्था क्षणिक परिवर्तनशील नहीं है, बल्कि स्थिर *और नित्य है। इसी अवस्थाको प्राप्त होनेपर कहा जा सकता है कि* आत्मा अपने सर्वोच्च लक्ष्यको पहुँच गया है। तभी मनुष्यके आत्माकी परमात्माके साथ आध्यात्मिक एकता पूर्णत स्थापित हो जाती हे। वस्तुत हमारी आध्यात्मिक चेतना सकुचित-सीमित क्षेत्रमे सतुष्ट नही हो सकती, बल्कि वह असीम ईश्वरके चरणोमे ही आश्रय पानेकी कामना करती हे। इस चेतनाके द्वारा हम उसे कल्याणस्वरूपमे अनुभव करते हे ओर अपने सामने पद-पदपर जब हम उसे सभी कल्याणप्रद अवस्थाओमे अभिव्यक्त देखते है, तब हमारा सिर श्रद्धासे अवनत हो जाता है। उसकी कृपा ही मनुष्यको उन्नति-पथमें अग्रसर करती हे और उसे दिव्यभावसे भरपूर कर देती है। दयामय ईश्वरने ही हमारे भीतर यह दृढ सस्कार जमा दिया है कि अन्तमे धर्मकी ही विजय होती है तथा सतोंके प्रति बिना ननु-नच किये हमें श्रद्धा रखनी चाहिये। कोई केवल विश्लेषणके द्वारा इसका खण्डन नही कर सकता, क्योकि यह ध्रुव सत्य है कि शतश और सहस्रश सतो और महात्माओने आध्यात्मिक चेतनाके अस्तित्वकी साक्षी दी है और दे रहे हैं। इसीके द्वारा आस्तिकको जब वह लौकिक दु ख और शोकसे अत्यन्त पीडित होता

है, तब भी ईश्वरमे पूर्ण शान्तिका स्थान प्राप्त होता है और वह ईश्वरको इस जगत्की अखिल सम्पत्तिकी अपेक्षा, अपने स्त्री, पुत्र तथा सबसे प्रिय वस्तुकी अपेक्षा भी अधिक प्रिय समझता है। उसके लिये समस्त सुख ओर आनन्दका स्रोत वही अनन्त और असीम तत्त्व है, न कि जगत्की सान्त वस्तुएँ।

हमारे सान्त आन्तरिक विश्वासका अन्तिम आश्रय वह अनन्त पुरुष अर्थात् ईश्वर है। उसीका अटल विधान, जो सतत परिवर्तित दृश्योके साथ इस जगत्की सृष्टि करता है, सब प्रकारके कल्याण और उन्नतिके लक्ष्यकी ओर विकसित और अग्रसर होता है।

अब सारे ससारको बिना किसी हिचकिचाहटके मेरे साथ यह घोषित कर देना चाहिये कि हमारी इच्छा, हमारा ज्ञान, हमारा सदाचार और आध्यात्मिक चेतना सभी उस स्वयप्रकाश परब्रह्मकी प्रत्यक्ष साक्षी देते है, जिसके श्वाससे इस जगत्का अस्तित्व है।

प्रश्न ४—क्या आप अपने जीवनकी किसी ऐसी घटनाका वर्णन करेगे, जिससे ईश्वरकी दया और उसके अस्तित्वमे हमारा विश्वास दृढ हो ?

उत्तर—नि सदेह ऐसी अनेकों घटनाओंका वर्णन किया जा सकता है। वस्तुत अपने जीवनके प्रत्येक क्षणमे जब कभी मैंने प्राणपणसे उसको पुकारा, तभी उसने उस पुकारको सुना। पद-पदपर उसके पितृवत् आशीर्वाद और मातृ-वात्सल्य ओर प्रेमका अनुभव कर, यह सम्भव नहीं जान पडता कि इस प्रकारके प्रत्येक अनुभवोंका वर्णन किया जाय। उसने जो असीम कृपा मेरे ऊपर की है, उसे दिखलानेके लिये अपने जीवनकी किसी घटनाका वर्णन करनेको जब कोई कहता है, तब मेरी ऑखोसे आनन्दकी अश्रुधारा बहने लगती है। चाहे जिस

घटनाका हम वर्णन करे, बाहरके लोग उसकी सचाईमे विश्वास नहीं करेंगे, बल्कि इसे मेरा भ्रम या कम-से-कम मेरी निरी कल्पना मानेगे। इसके अतिरिक्त जो घटना मेरे लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, वह औरोके लिये बिलकुल ही तुच्छ जान पडेगी। ईश्वरकी कृपाका जिन्होने अनुभव किया है, ऐसी घटनाएँ उनके लिये पवित्रतासे आवृत होती हैं और इन घटनाओको वे सशयवादके उच्छ्वाससे कलुषित नही करना चाहते। इसलिये क्षमा-याचना करते हुए मैं अपने जीवनकी इस प्रकारकी घटनाका वर्णन करनेसे वञ्चित रहना चाहता हूँ। मै इतना और भी कह देना चाहता हूँ कि ईश्वरकी कृपाको प्रमाणित करनेके लिये ऐसी घटनाएँ न हुई होतीं तो मैं ईश्वरको पूज्य पिता, दयालु माता और मित्रोके भी मित्रके रूपमे अनुभव नही कर सकता, जैसा कि ईश्वरकी कृपासे मै कुछ भी अनुभव करनेमे समर्थ हुआ हूँ।

—★—

श्रीएड्वीन ग्रीव्स

१—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

उत्तर—(अ) बौद्धिक दृष्टिसे—

इसलिये कि इस विश्वमे जो व्यवस्था देखनेमें आती है, उससे यह मानना पडता है कि इस सृष्टिका निर्माण और उसकी व्यवस्थाका सरक्षण करनेवाली कोई बुद्धि है और बुद्धिके होनेका यह मतलब है कि उस बुद्धिका प्रयोग करनेवाला भी कोई है। हम किसी ऐसी बुद्धिका होना माननेमें असमर्थ हैं, जो किसी बुद्धिमान् नियन्ताके बिना स्वय ही गतिशील हो।

(आ) नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे—

इसलिये कि हमारी प्रकृतिकी सहजवृत्तिमें ऐसा निश्चय हे कि कोई ऐसी शक्ति विद्यमान है, जो इस सम्पूर्ण जगत्का नियन्त्रण करती है और वह हमारे साथ तथा हम उसके साथ सम्बद्ध हें। इस शक्तिके सम्बन्धमें जो भावनाएँ की जा सकती हैं, उनमें ईश्वरभावना सबसे श्रेष्ठ है।

२—ईश्वरको न माननेसे कौन-कौन-सी हानि है ?

इससे जगत्में किये जानेवाले कर्ममें कोई उद्देश्यमूलक उत्साह नहीं रह जाता, न उस उद्देश्यकी पूर्तिकी कोई आशा रह जाती ह। इससे जीवन शून्य-सा हो जाता है, अभिलाषाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, हमलोगोंके प्रियतम सम्बन्ध निराधार हो जाते हैं और जीवन एक मायिक दृश्यमात्र रह जाता है, जिसका कोई आनन्ददायक फल नहीं।

३—ईश्वरके होनेमें कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण है ?

ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करनेमें आध्यात्मिक या तार्किक युक्तियोका विशेष महत्त्व नहीं है। स्काटलैंडवासी एक लेखकने अपनी पुस्तकमें ईश्वरकी सत्ताको ऐसी-ऐसी युक्तियोसे सिद्ध किया है कि उन्हे कोई काट नही सकता, बरबस उसे युक्तियोके सामने ईश्वरको मानना ही पडेगा, परतु इस पुस्तकको पढकर मुझे तो ऐसा लगा कि आस्तिकको सशयात्मा बनानेका भी यही रास्ता है।

मेरे ध्यानमे एकमात्र युक्ति यही है कि हमारा आत्मा जब भगवान्‌का सङ्ग चाहता है, तब भगवान्‌से सहायता, पथनिर्देश और बल प्राप्त करने चलता है, तब भगवान् उसे मिलते हैं और उसकी इच्छा पूर्ण करते हैं। आपत्कालमें जिन भगवान्‌की ओर मुड सकते और इस विश्वाससे निश्चिन्त हो सकते है कि वे हमारी सब आवश्यकताओको पूर्ण करेगे, उन भगवान्‌के प्रति हमारे हृदय और मन-बुद्धिमे जो लालसा है, उस लालसाको पूर्ण करनेवाली जो दया है, वही भगवान्‌का स्वरूप है। भगवान् हमारी केवल भौतिक आवश्यकताओको ही पूर्ण नहीं करते, प्रत्युत यह आश्वासन देकर निश्चिन्त कर देते हैं कि अभी हमे उनकी जिस कृपाकी आवश्यकता है, वह कृपा वे हमारे ऊपर करेगे और भविष्यमें हमारी सब उलझनोको सुलझाकर सब रहस्योको खोल देगे। वे भगवान् ईसारूपमे जो हमारे इतने समीप आ गये और मानुषी तनुकी बद्धता स्वीकार कर हमलोगोकी मुक्तिके लिये जो आत्मबलिदान कर गये और मृत्युके पश्चात् फिर उठकर जो स्वर्गको सिधारे, यही बात हमे उनके प्रेमका पूर्ण आश्वासन दिलाती है। वे प्रत्येक आपत्कालमे हमारी सहायता करनेको तैयार रहते हैं, इस विश्वास और इसकी प्रत्यक्ष अनुभूतिमे बडा आनन्द है, फिर मृत्युके पश्चात् उनके चिरत्तन सख्यका आनन्द हमलोगोको अवश्य ही प्राप्त होनेवाला है।

४—क्या आप अपने जीवनकी ऐसी कोई घटना वर्णन कर सकते हैं कि जिससे ईश्वरके अस्तित्व और उसकी दयामें हमारा विश्वास बढे ?

आजसे करीब इकसठ वर्ष पहले मुझे इस बातका अनुभव हुआ कि ईश्वरका सजीव विश्वास और भरोसा होनेसे जीवनमे कितना बडा अन्तर हो जाता है। उसके पूर्वमें नास्तिक तो नहीं था, पर उस समय यह मानना कि ईश्वर है और वह सारे जगत्‌के और सब मनुष्योंके प्रपञ्चोका शासक है, एक परम्परासे सुनी हुई शिष्टसम्मत बातको ही केवल मान लेना था। बहुत कालतक मैं इस आवश्यकताका अनुभव करता रहा कि मुझे उसका सामीप्य और सम्पर्क प्राप्त होना चाहिये, पर इसके लिये मैंने उतना प्रयत्न नहीं किया। बहुत-सी बातें ऐसी थीं, जो मैं करता था, पर मन यह कहता था कि तुम्हे नहीं करनी चाहिये और उन बातोंको नहीं करता था जो मन कहता था कि तुम्हें करनी चाहिये। मेरी उन्नीस-बीस वर्षकी अवस्थातक यह क्रम जारी रहा, तब धीरे-धीरे मेरा अद्भुत परिवर्तन होने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि प्रभु ईसा मेरे बहुत निकट हैं, बल्कि यह कहिये कि मैं उनके निकट हूँ। मुझे अब बुराइयोंसे बचने और भलाईका रास्ता पकडनेमें उनकी सहायता अनुभूत होने लगी। तबसे अबतक प्रभु ईसाके रूपमें मिलनेवाला भगवान्‌का वह सङ्ग कभी भङ्ग नहीं हुआ। अपने उच्चतम विचारके अनुसार बननेमे मैंने प्राय गलतियाँ की हे और अनेक बार निराश भी हुआ हूँ, पर मेरा भरोसा भगवान्‌पर ही सदा रहा है और अब मेरी अवस्था करीब एकासी वर्षकी हो गयी है। मुझे भगवान्‌की वह दया प्राप्त हे, जिससे में सब कठिनाइयो और जीवनको सब समस्याओं और जटिलताओंका सामना कर सकता हूँ, उन्हें हल तो नहीं कर

सकता, पर उस दयाके बलसे यह विश्वास बनाये रह सकता हूँ कि भगवान् सबके ऊपर हैं और अन्तमे उन्हींकी विजय होगी। यह पूर्ण विश्वास है कि जीवनमें और मृत्युमें जो कुछ होगा, कल्याण ही होगा।

══ ★ ══

रेवरेंड आर्थर ई० मैसी

प्रश्न १—ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

उत्तर—इसलिये मानना चाहिये कि ईश्वरके सिवा और कोई है नही, 'उसीमें हम जीते है, उसीमे चलते-फिरते हे और उसीमे रहते हैं।'

प्रश्न२—*ईश्वरको न माननेमे क्या हानि है ?*

उत्तर—हानि यही अहंकाररूप बन्धन है, जिसके फलस्वरूप यह आधिदैविक और आधिभौतिक दु खभोग है।

प्रश्न३—ईश्वरके होनेमे कौन-कौन-से प्रमाण है ?

उत्तर—ईश्वरके होनेमे किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। यह जो कुछ है, सब ईश्वरका प्राकट्य है। 'वह तो मूर्ख है, जो अपने हृदयमे कहता है कि ईश्वर कोई है नहीं।'

प्रश्न४—अपने जीवनकी कोई ऐसी सच्ची घटनाएँ लिखिये, जिनसे ईश्वरकी सत्ता और दयामे आपका विश्वास बहुत बढा हो ?

उत्तर—मेरे समस्त जीवनका अनुभव यही बतलाता है कि भगवान् हैं और प्रेमस्वरूप हैं। किसी विशेप घटनाको ही विशेष मानना मेरे लिये असम्भव है। मुझे तो प्रतिदिन ही भगवान् पथप्रदर्शक और रक्षकरूपसे अनुभूत होते है।

—★—

डा० श्रीमहम्मद हाफ़िज सय्यद, एम्० ए०

१—क्योंकि ईश्वरमे विश्वास करना अक्षय शान्ति और सुखका ध्रुव मार्ग है। जिन लोगोको इस बातका ज्ञान है कि शरीर मन और बुद्धि ही नहीं है, बल्कि इनकी अपेक्षा कोई एक महान् वस्तु है, उन्हे अनुभव होने लगता है कि उनके पास मन और बुद्धिकी अपेक्षा कोई अधिक स्थायी वस्तु है, जो उनके अंदर निवास करती है। यह आत्मा है, जो विकार, क्षय अथवा मृत्युको नहीं प्राप्त होता। यह सदा सम रहता है। इस आत्माके ज्ञान तथा अनुभवसे मनुष्य कालान्तरमें भगवत्प्राप्ति करता है। जब भगवत्प्राप्ति हो जाती है, तब मनुष्य शान्ति, विभूति और आनन्द—सब कुछ पा जाता है—जो मानवी प्रयत्नका प्रधान लक्ष्य है। हम इन्द्रियोके विषयरूपी जंगलमे इसीलिये भटकते रहते हैं, क्षणिक और तुच्छ वस्तुओके पीछे दौड़ते रहते हैं कि कही क्षणभरके लिये भी हमे सुख मिल जाय; परंतु जब हमको उनसे संतोष नहीं होता, तब हम उनकी अपेक्षा अधिक स्थायी वस्तुकी खोज करते हैं। तब हमारा ध्यान अन्तर्मुख होता है और हम देखते है कि हमारे अन्वेषणका विषय हमारा अपना ही आत्मा है। आत्माका वास्तविक स्वभाव आनन्द है। इसलिये जो मनुष्य अपने आत्मामे ही रममाण रहना सीखते हैं, वे स्वभावतः महान् आनन्दको प्राप्त करते हैं। हमारा ही आत्मा सबका आत्मा है। आत्मा एक ही है, जो समानरूपसे सबके हृदयमे निवास करता है। यही आत्माओंका आत्मा और प्राणोका प्राण है। यही जीवन है और आभ्यन्तरिक प्रकाश है। इस एक आत्माको जानना ही सबको,

ब्रह्मको, परमात्माको जानना है। आत्मा जीवात्माके रूपमें तबतक कदापि यथार्थ शान्ति और सुखका अनुभव नहीं कर सकता, जबतक उसे परमात्माका प्रत्यक्ष नहीं होता। जब मनुष्य अपने दैनिक जीवनमें अपनी वास्तविक सत्ता अर्थात् आत्माका अनुभव करता है, तभी उसे परमात्माका प्रत्यक्ष ज्ञान, विश्वास और निष्ठा होती है।

२—इस प्रश्नका उत्तर भी पहले प्रश्नके उत्तरमें ही आभासित हो चुका है। ऊँचे दृष्टिकोणसे ईश्वरमे विश्वास नहीं करनेसे ईश्वरका कुछ नहीं बिगडता, बल्कि उस मनुष्यकी ही हानि होती है जो विश्वास न रखनेके कारण अपनी सत्ताके शाश्वत स्रोतके साथ सम्बन्ध रखने तथा उसके ज्ञानके द्वारा प्राप्त होनेवाली शक्ति, शान्ति और आनन्दसे वञ्चित रह जाता है। निम्न तथा विकासके दृष्टि-कोणसे कोई हानि नहीं है, मनुष्यके विश्वास या अविश्वासके द्वारा ईश्वरकी वास्तविकता अथवा शाश्वत सत्ताका ह्रास या विकास नहीं होता।

ईश्वरकी सत्ताका चाहे कितना ही खण्डन अथवा निषेध किया जाय, इससे उसमें किञ्चित् भी कमी नहीं आ सकती। वह सदा ही विद्यमान रहता है। आज जो ईश्वरमें विश्वास नहीं करते, वे कल या दूसरे जीवनमें अपना मत बदल सकते हैं। समय आनेपर सबको विकसित, प्रसरित और उन्नत होना पडेगा। मनुष्य जैसे ही विकसित होता जाता है, वैसे ही क्रमानुसार ईश्वरकी सत्तामें उसका विश्वास भी बढता जाता है।

३—कोई नहीं; क्योंकि ईश्वरके अस्तित्वके समर्थनमे जो हेतु या प्रमाण सामान्यतः उपस्थित किये जाते हैं, वे सतोषप्रद नहीं होते। कार्य-कारण-भाव, कर्तृत्व, नियामकता तथा पाप-पुण्यसम्बन्धी हेतु ईश्वरमें निष्ठा लानेके लिये पर्याप्त नहीं होते। इनपर गम्भीर आक्षेप हो

सकते हैं। उनका यहाँ विस्तृत विवेचन नहीं किया जा सकता। एकमात्र और अत्यन्त निश्चित प्रमाणका आविर्भाव मनुष्यके मनमे तब होता है जब वह उस आत्मानुभवके मार्गपर चलने लगता है, जिसका उल्लेख उपर्युक्त पंक्तियोंमें किया जा चुका है।

४—ईश्वरकी दयासे सम्बन्ध रखनेवाली अपने जीवनकी किसी घटनाका वर्णन मैं नहीं करना चाहता, इस प्रकारकी घटनाएँ मेरे लिये सदासे प्रचुर परिमाणमे होती आयी हैं।

═══ ★ ═══

दीवानबहादुर के० एस्० रामस्वामी शास्त्री

दूसरोकी ईश्वरविषयक आवश्यकतासे मुझे उतना प्रयोजन नहीं है जितना कि अपनी ही ईश्वरसम्बन्धिनी लालसासे है। फिर भी मैं इस बातको अच्छी तरह समझता हूँ कि हमारे आस-पासका श्रद्धामय वायुमण्डल हमारे अपने विश्वासको दृढ बनानेका बडा ही अमोघ साधन है। इसीलिये मैं यह चाहता हूँ और इसके लिये प्रयत्न करता हूँ कि इस आनन्दका सर्वसाधारणमे प्रसार हो। इस जडवाद और भोगवादके युगमे व्याप्त नास्तिकता (ईश्वरमे अविश्वास) का नाश करनेमे मै जितना ही समर्थ होता हूँ उतना ही मै यह समझता हूँ कि मेरा विश्वास अधिक दृढ और उन्नत हुआ।

सभी कालों और देशोके मनुष्योने परमात्मसत्ताको प्राय माना है। ऋषियों और साधु-महात्माओने ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सर्वत्र उसकी सत्ताका साक्षात् किया है। मानवबुद्धिका यथासाध्य प्रयोग करनेवाले दार्शनिको, तार्किकों और वेदान्तियोने उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है। योगियोंने उस अन्तर्ज्योतिका अनुभव किया है, जिसके प्रकाशमे प्रियतमका अजर सौन्दर्य प्रकट होता है। कवियोने उस सौन्दर्यको ललित छन्दो और सुन्दर गद्योमे वर्णन किया है। अज्ञेयवाद ओर नास्तिकवादके तुच्छ वितडावादोकी अपेक्षा इन घटनाओका प्रमाण कहीं अधिक बलवत्तर है, परतु इन सब बातोंके अतिरिक्त हमारी अन्तस्तम सत्ताके अन्तस्तल भागकी जो पुकार है उससे बढकर ईश्वरकी सत्ताका प्रमाण ओर क्या हो सकता है ? हमारी बुद्धि यह बतलाती है

कि इस विश्वको चलानेवाले नियम (ऋतु) का कोई नियामक अवश्य है, कोई ऐसा चेतन समष्टि मन है, जो मनुष्योके पापो और पुण्योके गोरखधधेको जानता है और जो कर्मोंके फलाफलको समयपर जिस-तिसको प्रदान करता है। प्रकृति जड है और मनुष्य स्वार्थी है, अत. इन दोनोसे परे कोई प्रभु है, जो न जड है न स्वार्थी, प्रत्युत जो अनन्तशक्ति, ज्ञान और प्रेमस्वरूप है। हमारा हृदय हमे, इतने जोरके साथ कि जिसके सामने तर्कशास्त्रकी किसी युक्तिका जोर नहीं चलता और इतनी तेजीके साथ कि हमारा मन्द गति सशयग्रस्त विवेक पीछे ही छूट जाता है और इतना प्रत्यक्ष करके कि गणितको विकट गणनाएँ और रास्तेमे ही चक्कर काटनेवाली बुद्धिकी चाले जहाँ-की-तहाँ ही रह जाती है, यह बतलाता है कि तुम्हारे अदर प्रेम कभी चमक ही न सकता, यदि तुम्हारा कोई प्रियतम न होता और वह तुम्हे पुकारता न होता। इस प्रेमभावके उत्पन्न होनेपर कवि टेनिसनने अपनी एक कवितामे यह पूछा है कि 'यह दूसरा प्रभाव किसने उत्पन्न किया, अन्त साक्ष्यकी यह गरमी कहाँसे आयी, जिसके कारण इन्द्रियोकी साक्षीपर विश्वास नहीं रह गया ?' *

प्रत्येक व्यक्तिके अदर एक सहज-ज्ञानस्फूर्तिकी शक्ति हुआ करती है, जो अकस्मात् दामिनीके दमकनेकी तरह हमारे हृदयाकाशको प्रकाशित करती और भगवान्के मुखमण्डलका सौन्दर्य और उनकी प्रेममधुर मुसक्यानकी मोहिनी छबि दिखा जाती है। निज बोधकी गूढतम बातोके लिये प्रमाणकी क्या आवश्यकता ? इनके लिये प्रमाण

---

* Who forged that other influence
The heat of inward evidence
By which he doubts against the Sense ?
—Tennyson's Two Voices

हो भी क्या सकता है ? चीनीकी मिठास जिह्वाको ही मालूम होती है, क्या इसका कारण बतानेके लिये भी किसी वैज्ञानिककी आवश्यकता होती है ? और क्या वैज्ञानिक यह बता सकता है ? वह एक विद्वान्‌के ढगसे यह कह सकता है कि चीनीमे मिठासका एक तत्त्व है और कहीं किसी स्नायुके अग्रभागपर उस मिठासको ग्रहण करनेकी शक्ति हे, पर यह केवल शुष्क पाण्डित्य और अहम्मन्य अज्ञानमात्र है। जिस व्यक्तिको ईश्वरकी सत्तापर विश्वास नहीं, वही ससारमे सबसे बडा अभागा मनुष्य है, क्योकि जीवनका जो वास्तविक हेतु, उपयोग और महत्त्व हे, उसीको उसने खो दिया हे। पशुमे बुद्धि या सहज ज्ञान-स्फूर्ति नही होती, इसलिये वह ईश्वरको नहीं जान सकता, परतु इन बुद्धि और सहज ज्ञान-स्फूर्तिके होते हुए भी जो मनुष्य पशुवत् ही रहता हे, वह अपनी इतनी बडी हानि करता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। श्रुतिका यह वचन है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
　　न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेपु भूतेपु विचित्य धीरा.
　　प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

अर्थात् 'यदि इस जन्ममे ब्रह्मको जान लिया तव तो ठीक है ओर यदि उसे इस जन्ममे न जाना तव तो बडी भारी हानि हे। बुद्धिमान् लोग उसे समस्त प्राणियोमें उपलब्ध करके इस लोकसे जाकर अमर हो जाते हैं।'

मैं इस सिद्धान्तको माननेवाला नहीं हूँ कि ईश्वरपर अविश्वास करनेवाला सदाके लिये नरकमें जा गिरता हे। करुणामय अन्तर्यामी ईश्वर. जो अज्ञेयवादी और नास्तिकके हृदयमे भी विद्यमान है, कभी

ऐसा चिरवियोग अपने और जीवके बीचमे नहीं होने देगा। इस दयामय अहेरेकी दृष्टिसे कोई सदाके लिये बच नहीं सकता। यह उसे पकड़ ही लेगा।

विज्ञानने जब विश्वकी अत्यद्भुत प्रकाण्डताका निदर्शन किया, तब सचमुच ही धर्मकी बड़ी सेवा की। विज्ञानने यह दिखला दिया कि विश्व परमाणुओसे बना है, प्रत्येक परमाणु धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) विद्युत् शक्तिका एकाङ्क है और यह एक-एक सौरमण्डलके समान है, जिसमें अतिसूक्ष्म विद्युत्परमाणु (Electrons) अपने अत्यन्त सूक्ष्म अन्तरङ्ग परमाणुओ (Protons) के चारो ओर आत्यन्तिक वेगके साथ घूम रहे है। इस प्रकार यह जड-जगत् गतिमय है और यह गति विद्युद्विकिरण (Radiation) है। बस, विज्ञानकी गति यहाँतक पहुँचकर रुक जाती है और विज्ञान यह नहीं बता सकता कि यह विद्युद्विकिरण क्या है। गतिकी यह गतिमत्ता कहाँसे आयी? और विश्वमे जो यह पराकाष्ठाकी नियमबद्धता देखनेमे आती है सो कहाँसे उत्पन्न हुई? विश्वके सब अंशोका यह पूर्ण अन्योन्याश्रय कैसे साधित हुआ? सर्वत्र सौन्दर्यका यह आश्चर्यजनक परिदर्शन कैसे हो रहा है? और इससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह जीवनमे कैसे सुघटित हुआ है? विज्ञान इन प्रश्नोके आगे मौन है। मैथुनी और अमैथुनी सृष्टिकी बाते विज्ञान 'बड़े लम्बे-चौड़े पाण्डित्य और आकाशमे गूँजनेवाले स्वरके साथ' बतलाता है, पर यह सब केवल वाचारम्भण है और कुछ भी नहीं। इस विश्वका रहस्य उतना ही आश्चर्यजनक है, जितना कि इसका सौन्दर्य! जीवनसे भी अधिक रहस्यमय और आश्चर्यजनक मन है। यदि इस जड जगत्के भीतर मन न होता तो यह अपने-आपको कैसे व्यक्त करता?

वाल्मीकि, व्यास और कालिदास या शेक्सपियर, मिल्टन और गेटे केवल विद्युच्छक्तिसे या केवल प्राणतत्त्वसे ही कैसे उत्पन्न हो पाते ? मनसे भी अधिक आश्चर्यजनक वस्तु है प्रेम। यह प्रेम कहाँसे उमड पडता है जो प्रेमास्पदको सुखी, सुरक्षित और निर्मुक्त करनेके लिये आत्मोत्सर्ग करनेमे दिव्य आनन्दका अनुभव करता है ? इससे भी अधिक आश्चर्यजनक किसी आदर्शके लिये प्रेमावेश है, हृदयका वह उछल पडना है, जो रत्नजटित राजमुकुटकी अपेक्षा काँटोके ताजको अधिक कीमती समझता है और सबसे अधिक आश्चर्यजनक है— सनातन सौन्दर्य और प्रेमपर प्रेमयोगीका आत्मोत्सर्ग। यह ससार, इनकी दृष्टिमें, 'प्रेममय, प्रेमी और प्रेमास्पद' है। क्या इन सब बातोसे यह स्पष्ट नहीं होता कि अनन्त-असीम ही इस सान्त ससीममे समाया हुआ है। यद्यपि हमलोग उसे तबतक देख नहीं सकते, सुन नही सकते, उसका समास्वादन कर नहीं सकते, जबतक इस जरा-मरणके आवरणमे बँधे हुए है। हमारे चारो ओर वायुमण्डलमे सगीत लहरा रहा है, इसे कुछ रेडियोने ही नहीं उत्पन्न किया है। हॉं, इसे सुनने-समझनेके लिये आवश्यकता है सूक्ष्म चेतनताकी, पर यह चेतनता भी उसीकी कृपासे प्राप्त होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान् कहते हैं—

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

मेरा यह विश्वास है कि भगवान्, जो बुद्धि और वाणीके परे होकर भी विशुद्ध बुद्धि और वाणीमे आ जाते है, वैसे ही वे चक्षु और श्रोत्रके क्षेत्रमे और स्पर्शके क्षेत्रमे भी आ सकते हें। वे सबमें सब कुछ हैं, इसलिये हम न केवल उनका चिन्तन और कथन ही कर सकते हैं, प्रत्युत उन्हे देख भी सकते हैं और उनकी वाणी सुन भी सकते हैं। उनके अनन्त रूप और अनन्त स्वर हैं। मनुष्यका यह मिथ्याभिमान है,

जो वह उनके किसी एक ही रूप या वाणीको सर्वोत्तम कहता है। फिर भी यह बात सही है कि संसारके दिव्य अपौरुषेय ग्रन्थ ही उनकी वाणीकी पहचान हैं। यदि ऐसा न हो तो चाहे जो दम्भी और पाखण्डी आदमी अपने-आपको पहुँचा हुआ बता सकता है और अन्धविश्वासके इस महापर्वतप्राय राशिको और भी बढा सकता है। अपना कर्तव्य तो इतना ही है कि अपने शरीर, मन और इन्द्रियोको शुद्ध करे, क्योकि ये भगवन्मन्दिरके द्वार और प्राङ्गण हैं। फिर हृदयके गर्भमन्दिरमे भगवान्‌का प्रकट होना उनकी अपनी इच्छापर है—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥
(कठोपनिषद्)

शुद्धिके साधनोमे यज्ञ, दान और तप '**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्**'उत्तम माने गये हैं। यह हो सकता है कि किसी-किसी प्रकारके यज्ञोका अब प्रचलन न हो, दानके कुछ प्रकार भी पूर्वकालके अब न रहे हों और कोई-कोई तप भी अब व्यवहारमे न हों, जैसे पञ्चाग्निविद्या, उपकोसल-विद्यादि उपासना और ध्यानके प्रकार अब केवल व्याख्यान देनेमात्रके विषय रह गये हैं। व्यवहारमे उनकी कोई सत्ता नहीं। हठयोगके उग्र प्रकार भी अब कहीं देखनेमें नहीं आते और सिद्धियोकी बातें भी बहुत कम सुननेमें आती हैं। बड़े मजेसे किसीने यह बात कही है कि अब संसारमे तपोवन बहुत कम रह गये और जैसे-जैसे वन नष्ट हुए, वैसे-वैसे तप भी नष्ट हो गये।

परंतु पुराने ढंगके जो तप थे, वे नष्ट हुए हैं। अब हमे उन तपोंको करना चाहिये जो कभी नष्ट नहीं होते, जो सनातन हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक रूपसे जिनका गीताके १७ वें अध्यायमे वर्णन

हुआ है। यज्ञोमें अब हमे जपयज्ञ करना चाहिये, जिसके विषयमे भगवान् कहते हैं कि—

'यज्ञाना जपयज्ञोऽस्मि।'

जप्येनैव तु ससिद्ध्ये ब्राह्मणो नात्र सशय ।

हमे अब भगवत्प्रार्थना करनी चाहिये—जीवनके ऐहिक सुखोके लिये नहीं, बल्कि मनकी अचञ्चलता, प्रसन्नता और दृढताके लिये तथा भगवान्की सर्वव्यापिनी करुणा और प्रेम पानेके लिये। भगवान्के नामका हमे निरन्तर जप करना चाहिये और भगवान्के लक्षणों और गुणों तथा उनके करुणामय लीलाकर्मोका चिन्तन करना चाहिये। हमे अपौरुपेय ग्रन्थो और धर्मशास्त्रोका अध्ययन करना चाहिये और धारणा-ध्यान-समाधिका अभ्यास करना चाहिये—

स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।

हर्बर्ट स्पेन्सरने ईश्वरको 'अज्ञेय' कहा। हालमें अलफ्रेड नोयस नामक ग्रन्थकारने ईश्वरको 'अज्ञात' कहा है, परतु ईश्वर न तो अज्ञेय है और न अज्ञात। वह हमारे अदर है, हमारे चारों ओर है और हमारे ऊपर है, इसलिये हमलोग सिवा उसे जाननेके और कुछ नहीं कर सकते, पर हमारा यह जानना एक बार जानकर ही समाप्त नहीं होता, उत्तरोत्तर बढता जाता है।

'मनुष्य जो कुछ ढूँढता है, उसे ढूँढ निकालनेकी कुञ्जी वह स्वय ही है। वह ईश्वरके ईश्वरत्वसे बहिष्कृत नहीं, प्रत्युत स्वय उसका एक अश ही है।'

यह अश स्वय अशी हो सकता है। ईश्वर व्यक्त है या अव्यक्त इस विषयमें जितने वाद हैं, वे मेरे विचारमें व्यर्थ हैं। ईश्वर आनन्दस्वरूप है, अर्थात् प्रेमस्वरूप है और प्रेमस्वरूप होनेसे

सौन्दर्यस्वरूप है। आनन्द, प्रेम और सौन्दर्यमे कौन छोटा है और कौन बडा या कौन पर है और कौन अपर, यह तो व्यर्थकी चर्चा है। श्रीमद्भागवतमे कहा है—

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

श्रीरामकृष्ण परमहंसने व्यक्त और अव्यक्त दोनो ही रूपोमे भगवान्को प्राप्त किया था, दोनो ही रूपोमे उनकी प्रेमोपासना की थी और दोनो ही रूपोमे वे भगवान्को बार-बार देखते थे। कोई भी मनुष्य चाहे तो अपने इस आपातक्षुद्र-व्यक्तित्वको आनन्दसम्प्लवमे निमज्जित कर सकता है या इसको उत्कृष्ट बना सकता है।

आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने।

किसीके भी जीवनमे जो ऐसी घटनाएँ होती हैं, जिनसे ईश्वरकी सत्तापर विश्वास बढ़ता और गहरा तथा घना होता है, उन्हे वर्णन करना सचमुच ही बडा नाजुक काम है। किसीने बहुत ठीक कहा है कि 'ये शब्द प्रकृतिकी तरह ही अन्त स्थित आत्माको कुछ तो प्रकट करते हैं और कुछ छिपाये रहते है।' दूसरी बात यह है कि जिन घटनाओका जिसपर जो असर पड़ा हो, उन घटनाओका दूसरोपर भी वही असर पडे, यह कोई जरूरी बात नहीं है, फिर भी दो-एक बाते मै ऐसी लिखूँगा जो आत्मोपलब्धिका भावगाम्भीर्य और सामीप्य उत्पन्न करनेमे कारण हुईं। एक दिन घोर वृष्टि होनेके बाद सूर्यदेव अपनी पूर्ण प्रभाके साथ निकल आये और पदार्थमात्रपर अपनी किरणदृष्टि डालने लगे। मेहसे धुले हुए फूल-पत्तोपर पड़नेवाली सूर्यप्रभाकी द्युति बडी ही अद्भुत थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो संसारके यावत् पदार्थ एक सुनहले प्रकाशकी एकतासे एक-दूसरेके साथ जुड़े हुए है, कहीं कोई विभिन्नता है ही नहीं; बल्कि एक चमकती हुई एकता है जो कहीं ऊँची-

नीची और कहीं सीधी-टेढी रेखाओसे लहराती हुई अनेकताकी इस लहरावदार पोशाकसे उस एकको आच्छादित कर रही है। सत्य आत्मा है, प्रेम उसका शरीर और सौन्दर्य उसका आच्छादन है। यह दृश्य देखकर मेरे अदर एक ऐसा आनन्द उमड पडा कि मुझे अपना भान नहीं रहा।

एक दूसरे अवसरपर प्रात कालमे मुझे ऐसा आभास हुआ कि मैं किसी पर्वतकी गुफामे जा रहा हूँ और वहाँ उस पर्वतपर चढनेवाले लोगोकी बडी भीड लगी हुई है। मैं गुफाके अदर गया और वहाँ यह देखा कि एक उच्च आसनपर एक अति मनोहर सुन्दर बालक और उसके समीप ही उससे भी अधिक मनोहारिणी सुन्दरी बालिका विराजमान है। इन दोनोंकी उम्र पाँच-सात वर्षकी होगी। लोग तरह-तरहकी भेंटे ले आये थे, उन्हें वे ग्रहण कर रहे थे। उनके मुखसे मैंने कोई शब्द तो नहीं सुना, पर उनकी मुसकान ही क्या गजब ढानेवाली थी।

अभी हालकी बात है, एक दिन सबेरे मैंने एक स्वप्न देखा जिन मूर्तियोको देखा, उनकी पहचानमे कोई गलती नही हो सकती। वे शिव और पार्वतीकी मूर्तियाँ थीं। इन्हींका जुलूस मैंने देखा। यह कहा जा सकता है कि यह जो कुछ देखा, वह उसीका स्मरणमात्र था जो कभी जागतेमे देखा हो। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी। अस्तु, उन—दोनोने मेरे गलेमें एक-एक हार डाला। मैं जागा, जागकर घरमें सबसे अपने स्वप्नका हाल कहा।

मुझे प्राय एकबद दाहिनी आँख दिखायी दिया करती है। इसकी धनुपाकृति काली भौंके नीचे हेमवर्णकी एक ऐसी प्रेममयी प्रभा देख पडती है कि वह मेरी आँखोंपर जादूका काम करके चित्तको बलात् अपनी ओर खींच ही लेती है। बार-बार मैंने यह प्रार्थना की कि यह

दिव्य नेत्र खुले और अपनी दिव्यातिदिव्य द्युतिसे मुझे नहलावे, पर मेरी यह प्रार्थना अभीतक अनसुनी ही रह गयी। क्या इस जीवनमे यह प्रार्थना कभी सुनी जायगी ? क्या यह स्वरूप पूर्णतया मुझे देखनेको मिलेगा ? यह भगवान् ही जाने।

═══ ★ ═══

सर लल्लूभाई साँवलदास

१—जिन लोगोने इस जगत्के कारण और प्रयोजनको समझनेके लिये गम्भीरतापूर्वक विचार किया है, उनको अर्वाचीन विज्ञानके द्वारा प्राप्त हुए परिणामो तथा अर्वाचीन और प्राचीन दार्शनिकोंके द्वारा निश्चित किये हुए सिद्धान्तोके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि विज्ञान और दर्शनकी अधिकार-सीमाके परे एक वस्तु है, जिसकी क्रियाशीलता ऐसे दृश्योमे व्यक्त हो जाया करती है, जिनका रहस्योद्घाटन विज्ञानके द्वारा नहीं होता तथा जिनका निर्णय तथाकथित वैज्ञानिक रीतिद्वारा नहीं किया जा सकता। उस शक्ति अथवा सत्ताके गुणोके वर्णन वैदिककालीन ऋषियोकी 'नेति-नेति'के द्वारा सम्यक्रूपसे होता है। उस शक्तिको परब्रह्म, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, पुरुष, भगवान् अथवा दैव जिस नामसे मनुष्य चाहते हैं, पुकारते है। जब विज्ञान जगत्के रहस्यके उद्घाटनमें असमर्थ होता है, तब प्राय हम सबके भीतर इसके समाधानकी उत्कण्ठा होती है, जो हमे किसी दैवी शक्तिमे विश्वास करनेके लिये विवश करती है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं। मै समझता हूँ कि ईश्वरकी सत्तामे विश्वास करनेमें यह सर्वश्रेष्ठ प्रबल प्रमाण है।

२—उच्च ब्राह्मण-वशमें उत्पन्न होने तथा सनातनी देवी और देवताओके विश्वासमे पाले-पोसे जानेके कारण पाश्चात्त्य लेखकों तथा धार्मिक हिंदू सुधारकोके खण्डन-मण्डनके सम्पर्कमे आनेपर मेरे हृदयको गहरी ठेस लगी। आगस्टस् कौम्ट, हर्बर्ट स्पेसर और हकसलेके ग्रन्थोको पढकर मेरी श्रद्धा मूलत लडखडा गयी।

चार्ल्स ब्रैडला और श्रीमती एनी बेसेन्टके लेखोने मेरी बीस बरसकी अवस्थामें ही मुझे सशयवादी Agnostic बना डाला। यद्यपि मैं खुले तौरपर ईश्वरको अस्वीकार करता था, परतु बहुधा अपने विज्ञानके अधूरे ज्ञानपर मैं निराश हो जाया करता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया और जैसे-जैसे मुझे यह जान पडने लगा कि विज्ञान और अर्वाचीन दर्शन परम ज्ञानके द्वारको नहीं खोलते, वैसे-ही-वैसे मेरी निराशा बढती गयी। इसी सन्दिग्ध मानसिक दशामें मेरे श्रद्धास्पद गुरु श्रीरामकृष्ण भाण्डारकरने मेरे हाथमें William James की Varieties of Religious Experience नामकी पुस्तक दी। यहींसे मेरे धार्मिक जीवनमें परिवर्तन प्रारम्भ हुआ।

विज्ञान और दर्शनके परे कोई शक्ति है, इस विश्वासका बीज मेरी बडी लडकीकी दु साध्य बीमारीके अवसरपर मेरी स्वर्गीय पत्नीकी ईश्वरीय भावनाके द्वारा पल्लवित हुआ। मेरी दूसरी लडकीने जब अपनी दीर्घकालीन और दु साध्य बीमारीमें अत्यन्त शारीरिक पीडासे दु खित रहते हुए भी भक्ति और श्रद्धाके पदोंकी रचना की, तब उसके प्रभावसे मेरी ईश्वरास्तित्वकी श्रद्धा और भी अधिक बढ गयी। इस प्रकार जिस अभूतपूर्व श्रद्धासे मैं सम्पन्न हुआ, वह न तो मेरे बचपनकी श्रद्धा थी और न हमारे सहस्रश देशवासियोंकी श्रद्धा थी, परतु मेरे प्रयोजनके लिये यह पर्याप्त थी। ईश्वरमें इस प्रकारकी आस्थाका पुनर्बार होना उस प्रभुकी महती दयाका एक चिह्न है। मैंने उसकी कृपा तथा रक्षाके अनेकों प्रसगोका अनुभव किया है, परतु वे मेरे व्यक्तित्वसे इतना घनिष्ठ सम्पर्क रखते हैं कि उनका उल्लेख न करना ही ठीक है।

★

ह० भ० पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पाङ्गारकर, बी० ए०

ईश्वर विश्वास प्रकाश है और अविश्वास अन्धकार है, इसमे एक भावात्मक वस्तु है और दूसरी इसके विपरीत केवल अभावात्मक। मैने अपने सारे जीवनमे प्राय प्रकाशमे चलनेकी चेष्टा की है और इसीलिये अन्धकारपर विचार करना भी मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। ईश्वरमे विश्वास ईश्वर-प्राप्तिकी पहली सीढी है। यह वाणीका विषय नही, बल्कि रहस्यमय आनन्दका विषय है और इस विषयमे मै अपनी असमर्थताका अनुभव करता हूँ। तथापि उस मराठी कविके अनुसार कि 'पक्षिगण विस्तृत आकाशमे अपनी शक्तिके अनुसार ही उडते ह, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार (अनन्तशक्तिसम्पन्न) भगवान्का चिन्तन अथवा गुणकीर्तन करते है मेरे समान पामर जीव उस प्रयत्नमे लगनेका साहस करता ह, जिसमें तुलसीदास और तुकाराम-जैसे महान् सत असमर्थता प्रकट करते हे। भगवत्-सङ्गीत या प्रार्थना आत्माका मङ्गल-सुर है, उससे गायक भक्त पवित्र और तल्लीन हो जाता हे।

मेरे सामने चार प्रश्न रखे गये है—

इनमेसे पहले तीन प्रश्न एक-से हैं और आस्तिकता अथवा नास्तिकतासे सम्बन्ध रखते हे, चौथा प्रश्न वेयक्तिक है और अधिक उत्कृष्ट है। मेरे विचारसे तर्क, युक्ति अथवा हेतुओसे नास्तिक पुरुप आस्तिक नहीं बनाये जा सकते और न तर्कद्वारा आस्तिक ही आस्तिकताकी ओर बढता है। तर्कद्वारा हम प्रेम नहीं करते। हम विश्वास या प्रेम इसीलिये करते हें कि वैसा किये बिना हम रह नहीं

सकते। माता-पितामें हमारे प्रेमका कारण तर्क नहीं है। प्रेम सम्भवतः एक अन्तस्तत्व है, जिसको कुछ मनुष्य साथ लेकर जन्मते हैं और कुछ विना साथ लिये। भक्त प्रह्लादके विषयमें कहा जाता है कि भगवान्में उनका स्वाभाविक प्रेम था—'तस्य नैसर्गिकी रतिः।' एकनाथ महाराज कहते हैं कि वे जन्मसे भक्त थे, जन्मसे ही वे भगवत्-प्रेमी और भगवान्के सेवक थे। सम्भव है कि यह पूर्वजन्मोंके सुकर्मोंका फल हो। शुद्ध स्वाभाविक और निर्दोष प्रेम एक (ईश्वरप्रदत्त) उपहार है। कहा जाता है कि कवि, वीर और दार्शनिक उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जाते। इसीलिये विशिष्टरूपसे भगवान्का प्रेमी भी प्रेमको साथ लेकर ही उत्पन्न होता है। इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि अविश्वासी पुरुष कभी विश्वासी बन ही नहीं सकता। मैं एक ऐसे मनुष्यको जानता हूँ, जिसने पचास वर्षोंतक ईश्वरकी उपेक्षा करते हुए पापमय जीवन बिताया। अचानक उसका परिवर्तन हुआ और अपने जीवनके अन्तके दस बर्षोंको उसने यथार्थतः ही संत-जीवनके रूपमें विताया। मेरा विचार है कि कट्टर-से-कट्टर नास्तिक भी ईश्वरमें विश्वास, यहाँतक कि प्रेम भी कर सकते हैं। कोई भी ऐसा पापी नहीं हो सकता, जो सन्मार्गपर न आ सके और कोई ऐसा नास्तिक नहीं हो सकता, जो आस्तिकताकी ओर न लौट सके। ऊपर जिस मनुष्यका मैंने संकेत किया है, उसे अचानक एक धर्मात्मा योगीके सत्सङ्गका सुअवसर मिला और वह छः महीने उनके साथ रहा, अन्तमें एक दिन प्रातःकाल वह पापी एक संतके रूपमें परिणत हो गया। मेरा कथन यह है कि नास्तिक पुरुष तर्क और युक्तियोंसे नहीं, बल्कि ईश्वर-प्रेमी और धर्मात्मा पुरुषोंके सहवाससे ही आस्तिक बन सकता है। सत्सङ्ग या भगवत्प्रेमी पुरुषोंका सहवास एक महती क्रियात्मिका शक्ति है, जो चट्टानोंको

तोड-फोडकर उसपर पवित्र जलका सोता बहा देती है। अजामिल, अघासुर, कुब्जा, बकासुर, पिंगला प्रभृति इसके उदाहरण हैं। रामायणके प्रणेता महर्षि वाल्मीकि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। यहाँतक कि गोस्वामी तुलसीदासजी भी अपनी स्त्रीके उपालम्भसे सत्पथको प्राप्त हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है कि—

'बिनु सतसंग बिबेक न होई। .... ॥'

ईश्वरमे विश्वास करना ईश्वर-प्राप्तिकी प्रथम सीढी है। श्रद्धा, भाव, विश्वास, निष्ठा—इन सबका एक ही अर्थ है—ईश्वरके अस्तित्वमे अचल विश्वास। श्रद्धाहीनता ईश्वर-प्राप्तिके समस्त साधनोपर पानी फेर देती है। विश्वाससे भगवान्मे भक्ति, रति या प्रेम होता है। भगवान् और भगवान्की सृष्टिसे प्रेम ही भक्ति है। श्रद्धा ही ईश्वरीय ज्ञानका द्वार है—**'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्'** कहा है, **'तर्कवाँल्लभते ज्ञानम्'** कदापि नही। समस्त तर्क और युक्तियाँ उसके सामने क्षीण हो जाती है, अथवा उसमे लीन हो जाती हैं, वह इन सबसे परे हे—**'यो बुद्धेः परतस्तु सः।'** वह बुद्धि, मन तथा इन्द्रियोसे परे है। जब तुम एक बार उसे प्राप्त कर लोगे, तब बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर, यही क्यो, अखिल विश्व उसके द्वारा परिचालित तथा उसीमे स्थित अनुभूत होगा। वस्तुत प्रभुके सिवा कुछ है ही नहीं। बस, केवल एकमात्र ईश्वर है। वही सब कुछ है। अपने-आपको उसमे मिटा देना ही ईश्वर-प्राप्ति है। ऋग्वेदका 'नासदीयसूक्त'और भगवद्गीताका 'ज्ञेय' (अध्याय १३ श्लोक १२ से १८) जहाँतक शब्दकी शक्ति है, वहाँतक ईश्वरके परम सत्य भावको अभिव्यक्त करते हैं। यद्यपि ईश्वर भावना नहीं बल्कि सत्य तत्त्व है, उसकी प्राप्तिके लिये उच्चतम साधना आवश्यक है। उसके लिये मनुष्यको किसी मार्गका अनुसरण करना होगा। केवल जानने

और विचारनेसे ही काम नहीं चलेगा, बल्कि जीवन और आचरणमे उसे लाना और वैसा बनना पड़ेगा। भक्ति या प्रेमके द्वारा आप उस सगुण और निर्गुणस्वरूप परमात्मामे एकत्वको प्राप्त हो सकते हैं। एक ही अनेक है और अनेक ही एक है। अच्छा, वह मार्ग कौन-सा है? आपको कहाँ मिलेगा? कौन उसे दिखलायेगा? जो उस मार्गसे जाकर वहाँ पहुँचे हैं, उनके सिवा कौन उस मार्गको दिखला सकता है? केवल सत-महात्मा ही उस मार्गको दिखला सकते है। स्वानुभवके बलपर वे बतलाते हैं कि ईश्वर तुम्हारे भीतर है, उसको खोजो। मार्ग और साध्य दोनों एक ही हैं। उपनिषद्, गीता, भागवत, संसारके समस्त धर्मग्रन्थ तथा साधु-महात्माओके बनाये ग्रन्थोका स्वाध्याय, नित्य दैनिक संध्या, पवित्र मन्दिरो और तीर्थोका दर्शन करना, दूषित ग्रन्थो, मनुष्यों और सम्भाषणोसे बचना—यह समस्त साधकोके लिये (विशेषकर प्रारम्भिक साधकोंके लिये) कुछ आवश्यक साधनाएँ है। इनसे आत्मा पवित्र होता है, बल्कि यह प्रतीति होती है कि आत्मा सदा ही पवित्र है। ईश्वरका स्वागत करनेके लिये अपने हृदयरूपी मन्दिरका द्वार खोल दो और फिर देखो कि वह वहाँ पहलेसे ही मौजूद है। तुम्हारे शरीर-यन्त्रका संचालक भी तो वही है। जैसे भक्त ध्रुव कहते हैं—'जो मेरी रसनामे वाणीका संचार करता है, हाथ और पैरोको चलाता है, मुझे शब्द-श्रवणके योग्य बनाता है तथा मेरे समस्त शरीरमें व्याप्त है—उसको मैं देखता हूँ—उसके लिये मेरा नमस्कार हो।' ईश्वर हमारे भीतर भी है और बाहर भी। समस्त धर्म साधन है। अहङ्कारको नष्ट करके यह अनुभव करना कि केवल वही एक है और वही सब कुछ है, साध्य कहलाता है। वही व्यापक और साध्य है, वह साकार है और निराकार है। वह सगुण है और निर्गुण है। वही उपास्य और

उपासक है। वही सब कुछ है। वह **'सत्यं शिवमद्वैतम्'**है। विश्वास, श्रद्धा, प्रेम तथा अनुभूति आत्माके लिये अत्यन्त ही शक्तिप्रद और आनन्दप्रद होते हैं। ईश्वर-विश्वासी सहज ही आन्तरिक शत्रुओका सामना करता है और शक्तिसम्पन्न होता है। नास्तिकका अवलम्बन क्या हो सकता है ? तन, धन, जन और मित्र समय पड़नेपर नहीं ठहरते। नास्तिक बेचारा अकेला पड़ जाता है। आस्तिकके लिये भगवान् उसकी शक्ति तथा आनन्दके स्तम्भ होते है। **'संशयात्मा विनश्यति'**और **'न मे भक्तः प्रणश्यति'** ये दो दिशाएँ है, इनमेसे तुम जो चाहो चुन सकते हो।

भगवान्ने दुनियाके महान् ग्रन्थ भगवद्गीतामे अपने भक्तोको बहुत-से आश्वासन-वाक्य दिये हैं—

(१)'योगक्षेमं वहाम्यहम्॥' (९ ।२२)

(२) 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥' (१०।१०)

(३)'तेषामज्ञानजं तमः—नाशयाम्यात्मभावस्थः॥' (१०।११)

(४) 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्॥' (१२।७)

(५) 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥' (१८।६६)

आस्तिकके लिये स्वयं श्रीभगवान् इस प्रकार अपने ऊपर जिम्मेवारी लेते हैं; परंतु नास्तिकके लिये कोई आधार नहीं है। उसे किसके द्वारा और कहाँसे सहायता मिल सकती है ? आस्तिकके लिये भगवान्के ये आश्वासन किलेबन्दियोंके समान हैं और वह इनके भीतर

जगत्प्रभुके द्वारा रक्षित हुआ सुखसे विश्राम करता है। भगवद्भक्त और भगवत्-प्रेमी माता-पिताकी संतान होनेके कारण धार्मिक वातावरणमे पाले-पोसे जाने तथा अपनी सुदूर और विस्तृत यात्रामे धार्मिक पुरुष-स्त्रियोंके सत्सङ्गमे रहनेके कारण एवं आध्यात्मिक साहित्यके अध्ययनका व्यसनी होनेके कारण मुझे कभी ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करनेके लिये तर्ककी आवश्यकता नहीं पड़ी। मैं सदा ही अपने शरीरकी रग-रगमे उसके अस्तित्वका अनुभव करता था। उसकी दया मेरी मूल सम्पत्ति है, उसकी करुणा मेरा कवच है, उसका चिन्तन मेरा परम आनन्द है तथा उसके भक्तोंके साथ सम्भाषण मेरा स्वर्ग है। क्या मछलीको पानीसे प्रेम करनेके लिये शिक्षा देनेकी आवश्यकता है ? मैं कह चुका हूँ कि भक्त प्रह्लादका ईश्वरके प्रति नैसर्गिक (स्वाभाविक) प्रेम था। अपने लिये ऐसा कहना असङ्गत जान पडता है; परंतु इसमे सत्यताकी कुछ भी कमी नहीं। जिस प्रकार जलकी धाराके साथ पुष्प बहता जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भक्ति-गङ्गाके प्रवाहमें प्रवाहित होता चला जा रहा है। मैं भगवान्में विश्वास और भक्ति रखता हूँ। सम्भव है कि मुझे लक्ष्यकी प्राप्ति देरसे हो, परंतु सत-महात्माओंद्वारा सचालित भगवद्भक्तोंकी सेनाका एक तुच्छ सिपाही होनेमे ही मुझे पूरा सतोष है। मेरी गाड़ी, जो मार्गच्युत हो गयी थी, अब दुरुस्त हो गयी है और अब मैं अपनेको उसकी छत्रछायामे सुखी और सुरक्षित पाता हूँ, जो मेरी जीवनरूपी गाड़ीका गार्ड और ड्राइवर दोनो है। मेरे समस्त तर्क, युक्तियाँ और हेतु बहुत पहले श्रद्धाके पात्रमे विलीन हो गये हैं। मेरे मन, बुद्धि तथा आत्मापर उसने अधिकार कर लिया है। बस वही, केवल वही, एकमात्र अकेला वही रह गया है, उसके सिवा और कुछ भी नहीं है। ओह ! उसके चिन्तन और प्रेममें कैसा आनन्दका सागर

उछल रहा है। कैसा परमानन्दका स्रोत बहता है।

अब मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैं नास्तिकताके चक्करसे किस प्रकार बचा। सन् १८९४ ई० मे मैं पूना फर्ग्युसन कालेजमे पढता था, वह एक परिवर्तनका युग था। प्राचीनताका स्थान नवीनता ग्रहण कर रही थी। हमारे अधिकाश शिक्षित पुरुष पाश्चात्त्य आचार-विचारसे प्रभावित हो रहे थे। पचीस वर्षतक महाराष्ट्रके शिक्षितोके मनपर मिल, स्पेन्सर और हक्सले शासन करते रहे। हमारे अग्रेजी और लाजिक (तर्कशास्त्र) के अध्यापक फर्ग्युसन-कालेजके प्रिंसिपल श्रीयुत आगरकर महाशय थे। वे एक महान् सज्जन पुरुष थे तथा सामाजिक सुधारके कर्णधार समझे जाते थे। वे अपने कालेजके विद्यार्थियों तथा साधारण जनतामे अपने सर्वप्रिय पत्र 'सुधारक' द्वारा नवीन भावनाओका प्रचार करते थे। उन्होने प्राचीन साहित्य और प्राचीन आचार-विचारोंसे मुख मोड लिया था। वे देश-भक्त थे, परतु पाश्चात्त्य सभ्यताका उनके ऊपर पूर्ण प्रभाव था। मुझे विद्यार्थीके रूपमे उनके साथ छ वर्षोतक रहना पडा। वे खुल्लमखुल्ला नास्तिकवादका प्रचार करते थे। हिंदू-धर्मशास्त्र और प्रत्येक प्राचीन बातके प्रतिकूल उनके लेखोंका नवयुवकोंके ऊपर बडा ही प्रभाव था और अबतक है। युक्ति और तर्क उनके प्रधान अस्त्र थे और उनके द्वारा बडी ही निष्ठुरतासे उन्होने प्राचीन आचार-विचारके ऊपर आक्रमण किया था। उनकी प्रेरणासे अविश्वास (नास्तिकता) का जादू मुझपर भी काम कर गया। मैंने सोचना आरम्भ किया कि ससार बिना ही ईश्वरके निरालम्ब है। मेरा मन ईश्वर-विश्वास और अविश्वासके बीच चक्कर काटने लगा। मेरे घर और कालेजके प्रभावोंमें परस्पर युद्ध मच गया। आस्तिकताकी गोदमें अज्ञानकी ओर जाते समय एक वर्षतक मुझे व्याकुलता और विषादका

अनुभव होता रहा। मै निराश, संशयग्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ़ बना रहा, परंतु मै तो श्रद्धा, संतोके जीवन और संत-साहित्यके प्रचार तथा पुनरुद्धारके लिये नियुक्त किया गया था, अतएव भगवान्‌ने मुझे नास्तिकताके गर्तसे निकालना चाहा। एक दिन सायंकालके समय मै पूनासे तीस मील दूर एक पहाड़ीके शिखरपर ध्यान कर रहा था। मै अचानक इस परिवर्तनशील दृश्य जगत्‌की नश्वरतासे निकलकर नित्य निर्विकार ब्रह्मावस्थामें जा पहुँचा। आधे घटेतक मै अपने-आपको पूर्णतया भूल गया और पूर्णानन्दमे निमज्जित हो उठा। वह एक प्रकारकी समाधि थी। यहीं मेरे अन्तर्जीवनमे परिवर्तन हो गया। मुझे एक नवीन जन्म प्राप्त हुआ। यह समाधिदशा मुझे अकस्मात् और केवल भगवान्‌की दयासे प्राप्त हुई थी; क्योकि उस समय मै अपनी ओरसे कोई चेष्टा करनेयोग्य न था और न यह वह समाधि थी जो योगाभ्यासके द्वारा प्राप्त होती है। मैं पथभ्रष्ट हो रहा था। दयामय प्रभुने मुझे बचाया। मै अनुभव करने लगा कि प्रभुने अपने-आपको सदाके लिये मेरे सामने प्रकट कर दिया। मुझे विश्वासके लिये एक आश्रय मिल गया और मैंने अपने खोये हुए विश्वासको पुन. पा लिया। दूसरे ही दिन मैंने रामदास और तुकारामके ग्रन्थ खरीदे और नवीन दृष्टिसे उनकी भावनाओमे प्रविष्ट हुआ। तबसे गीता और भागवत, ज्ञानेश्वर और एकनाथ, रामदास और तुकाराम मेरे उत्साहवर्द्धक साथी हो गये। अध्ययन और ध्यान तथा धार्मिक महात्माओंके सत्सङ्गसे मैं अपनेमे शक्तिका अनुभव करता हूँ। मै उस सुन्दर पथका पथिक हूँ, जो ईश्वरत्वकी ओर ले जाता है। मै आज भी अपने उस पुराने प्रोफेसरको श्रद्धा तथा प्रेमकी दृष्टिसे देखता हूँ। मेरे विषयमे किसीको भ्रान्ति न हो, इसलिये मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मुझे अभीतक ईश्वरकी प्राप्ति

नहीं हुई है। मैं अभीतक अपनी उपासनाको ईश्वरीय दयाके साथ दृढतापूर्वक बढानेमे समर्थ न हो सका हूँ। इस बातमे मै अस्थिर और अपराधी हूँ, परतु मै इतना कह सकता हूँ कि विश्वाससे श्रद्धाकी ओरका तथा श्रद्धासे ईश्वर-प्राप्तिकी ओरका मार्ग सौम्य, सुखप्रद और आनन्दमय है। ईश्वर सचमुच महान् और दयालु है, हम उसे जितना चाहते है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक वह हमें ससार-सागरसे उद्धार करनेके लिये चिन्तित रहता है। वह समस्त दीन-दु खी और विपद्ग्रस्त जीवोको प्यार करता है, उनके लिये उसकी करुणाका पार नहीं। हमारे अपने कल्याणके लिये वह हमलोगोसे पूर्ण आत्म-समर्पणकी आशा करता है। वह विवस्त्रा गोपियोसे—नि स्वार्थ प्राणियोसे, जिन्होने कामनारूपी समस्त वस्त्रोंको दूर फेक रखा है, सदा प्रेम करता है। वह अनुग्रहसे पूर्ण है और माताके वात्सल्य-प्रेमसे भी अधिक प्रेमपूर्वक हमारी ओर देखता है। हमे अपनी ओर बढते हुए देख, वह सदा सहायता करनेके लिये तैयार रहता हे। हमें आगे अर्थात् अन्तरात्माकी ओर बढना चाहिये। वह हमारे समीप है, हमारे भीतर और बाहर है तथा सृष्टिके प्रत्येक रूपमे अभिव्यक्त हो रहा हे। वह हमारी उन्नतिकी निगरानी करता है और हमे अपनी ओर ले जाता है। हम समस्त प्राणियोके रूपमे उसके साथ प्रेम करना सीखे। हमें आनन्दित होना चाहिये कि हम उस प्रभुके हें और उसके भीतर हैं। उपनिषद् कहते हैं कि वह आनन्द-स्वरूप है—'**रसो वै सः।**' सत तुकाराम कहते हैं कि वह 'आनन्द-सिन्धु' हे।

मुझे अपने प्रारम्भिक जीवनकी एक घटना याद आती हे, जिससे ईश्वर-प्रार्थनाकी महत्ता सिद्ध होती है। उस समय में केवल आठ वर्षका था। मेरे पिता रामभाउ अत्यन्त धर्मात्मा पुरुप थे। वे प्रतिदिन

प्रात काल चार बजे उठते, स्नान करते और फिर दोपहरतक पूजामे बैठे रहते। प्रतिदिन सम्पूर्ण गीताका पाठ और विष्णुसहस्रनामके दस पाठ करते थे। आधुनिक पुरुष उन्हे सम्भवतः शिक्षित (Educated) न कहें, क्योकि वे ग्रामीण थे और केवल टूटी-फूटी सस्कृत जानते थे, अग्रेजीसे बिलकुल अनजान थे, परतु जीवनकी पवित्रता तथा आत्माकी दृष्टिसे वे अद्वितीय थे। उस समय हम पूनासे सोलह मील पश्चिम और आलन्दीसे लगभग बारह मील उत्तर एक गॉवमे रहा करते थे। यह वही आलन्दी तीर्थ है, जहॉ गीताके प्रसिद्ध भाष्यकार और महाराष्ट्रके प्राचीन कवि और दार्शनिक ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधि है। उस आठ वर्षकी अवस्थामें मैं मूर्च्छाके रोगसे आक्रान्त था। दिनमे मुझे आठ या दस बार मूर्च्छा आ जाती थी। मेरी माता तथा मेरे दूसरे सम्बन्धी मेरे जीवनसे निराश हो गये थे। मेरे पिता बहुत ही नि स्पृह थे। एक बार वे लोगोके बहुत कहने-सुननेपर बाध्य होकर पूनाके चतुर डाक्टरोको दिखलानेके लिये मुझे ले चले। उन्होने मुझे बैलगाडीमे बिठाया और गाडीवानसे पूनाके बदले आलन्दी ले चलनेके लिये कह दिया। इस प्रकार हम आलन्दी पहुँचे। पवित्र इन्द्रायणीमे स्नान किया और ज्ञानेश्वरके मन्दिरमे गये। मेरे पिताने भक्तिपूर्वक पूजा की और मेरे सिरको श्रीज्ञानेश्वरके चरणोमे रख दिया तथा ऑखोमे ऑसू भरकर हृदयभरकर जोरसे प्रार्थना करने लगे—'हे ज्ञानेश्वर ! हे मेरी माता ! मैं इस लडकेको तुम्हारे चरणोमे रखता हूँ। मैं तुमसे बढकर कोई उत्तम वैद्य नहीं जानता और न तुम्हारे चरणतीर्थसे बढकर उपयोगी कोई औषध ही जानता हूँ। इस लडकेको तुम्हारी सेवामे अर्पण करता हूँ। तुम्हीं इसके माता-पिता और रक्षक हो, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसकी रक्षा करो। यह तुम्हारी दयापर छोड दिया जाता है।' सच्चे और यथार्थ

प्रार्थीकी प्रार्थना सुनी जाती है, उसकी कामना पूरी होती है। मै शपथपूर्वक यह घोषित करता हूँ कि तबसे मुझे इस भौतिक शरीरमें एक बार भी मूर्च्छा न आयी। इस प्रकार मै अपने जीवनमे एक दुष्ट रोगसे बचा था और बचपनमे ही अपने पूज्य पिताके द्वारा महाराष्ट्रके प्रधान सत ज्ञानेश्वर महाराजके चरणोमे मै अर्पण कर दिया गया था। ज्ञानेश्वर माताकी जय !

═ ★ ═

रावबहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

१-२—ये दोनों प्रश्न मेरी समझसे व्यर्थ हैं। ईश्वर है तो ये प्रश्न ही नहीं बनते। आप यदि चाहें तो यह मान सकते है कि जल, आकाश अथवा सूर्य कुछ भी नही हैं और यह भी मान सकते हैं कि इन सबकी सत्ताको न माननेमें ही लाभ है; परंतु आपके न माननेपर भी इनकी सत्ता अवश्य है। इसके अतिरिक्त अपने लाभके लिये झूठी बातपर विश्वास करना बुद्धिमानीका काम नहीं।

यदि हमे यह निश्चय है कि ईश्वर है तो फिर आपके मानने और न माननेसे कुछ बनता-बिगड़ता नही।

३—यह प्रश्न कि ईश्वरकी सत्ताको माननेके लिये आपके पास प्रमाण हैं? बिलकुल ठीक है। ईश्वरकी सत्तामें मुख्य तीन ही प्रमाण है—पहला अनुमान, दूसरा शब्द और तीसरा प्रत्यक्ष। हमारे जो स्वप्न सचे निकलते हैं, उनके द्वारा ईश्वरकी सत्ता प्रत्यक्ष सिद्ध है।

४—इस प्रश्नमें आप दो बातोको भूलसे एकमे ही रख देते हैं। आप मुझसे यह चाहते हैं कि मैं ईश्वरकी सत्ताके प्रमाणरूपमे अपने कुछ और अनुभव बताऊँ, परंतु आप साथमें 'दया' को भी जोड देते हैं। दयाका प्रश्न बिलकुल भिन्न है। पाश्चात्त्य विद्वानोके मतमे ईश्वर सर्वशक्तिमान् एव दयासागर हैं, किंतु वेदान्त-दर्शनको यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। महर्षि बादरायणने एक सूत्रमें कर्मके सिद्धान्तको माननेके लिये **'वैषम्यनैर्घृण्यप्रसंगात्'** इस कारणका निर्देश किया है, किंतु

हमारे सिद्धान्तके अनुसार मनुष्यको उसके कर्मके अनुसार ही शुभाशुभ फल मिलता है। इस कर्मके सिद्धान्तको न माननेसे ईश्वरके अदर विषमता (वैषम्य) एव निर्दयता (नैर्घृण्य) का दोष आता है। **'हिंदुधर्माची तत्त्वे'**इस विषयपर मैंने जो कई निबन्ध लिखे हैं तथा व्याख्यान दिये हैं। उनमे मैंने इस विषयका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। मैं ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणमे अपने एक स्वप्नका उल्लेख करूँगा। वह इस प्रकार है—अपनी 'हिंदुभारतका अन्त' नामक पुस्तकके मुद्रण-व्ययमे कुछ कमी पडनेके कारण श्रीमान् महाराजा साहब काश्मीरको इसे अर्पणकर उनसे कुछ द्रव्य प्राप्त करनेके उद्देश्यसे मैं श्रीनगर गया और वहाँ आठ-दस दिन ठहरकर इसके लिये उद्योग करता रहा, किंतु सफल नहीं हुआ। मेरे मित्र, जिनके यहाँ मैं ठहरा था, मुझसे कहने लगे कि 'तुम कुछ दिन और ठहरो और काश्मीरकी सैर करो।' वे मुझे किसी प्रकार भी जाने नहीं देते थे। एक दिन रातको प्रात कालके करीब मैंने स्वप्नमें एक आवाज सुनी—'अरे वैद्य ! तू यहाँ क्यों पडा है, दक्षिणको लौट जा।' दूसरे दिन प्रात काल ही एक जरूरी तार मिला। बम्बईके निकट शासवने नामक ग्राममे एक वैश्याश्रम है। यह तार उसके मुख्याध्यापकका भेजा हुआ था। उसमे लिखा था कि 'अमुक तिथिको इस आश्रमका वार्षिक समारम्भ है, इसके लिये आप अध्यक्ष चुने गये हैं। अत अवश्य पधारिये।' इस तारको पढकर मेरे मित्रको आज्ञा देनी ही पडी। बस, फिर क्या था, मैं तुरत वहाँसे चल पडा। लौटती बार मैं इन्दौर होकर आया। वहाँ मेरे एक मित्र सरदार कीबे साहब हैं, मै उनसे मिला तो उन्होने मुझसे पूछा कि 'आप काश्मीर क्यों गये थे ?' मेरे कारण बतलानेपर वे बोले—'आप इतनी दूर क्यो गये ? मैं आपको इस हिंदी पुस्तकके मुद्रणके लिये सरकारी ग्राण्टसे

एक हजार रुपये देता हूँ।' यह कहकर उन्होने रुपयोका चेक भी उसी समय लिखकर दे दिया। मैं अपने इस स्वप्नपर आश्चर्य करने लगा और उस समय मुझे यह दृढ़ निश्चय हो गया कि ईश्वर केवल हैं ही नहीं, किंतु वे सबके अन्तःकरणमे रहकर **'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया'**—इस वचनके अनुसार सारे ससारचक्रको यन्त्रवत् चला भी रहे हैं।

=== ★ ===

श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर

१—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

ईश्वर है, इसलिये मानना चाहिये। मानना उपयोगी है, इसलिये भी मानना चाहिये।

२—ईश्वरको न माननेमे कौन-कौन-सी हानि है ?

ईश्वरको न माननेसे मनुष्य उच्छृङ्खल होता है और उसके सामने कोई पूर्णताका ध्येय नहीं रहता।

३—ईश्वरके होनेमें कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण हैं ?

ईश्वरके होनेमें प्रबल प्रमाण मनुष्यका अपना अस्तित्व है। मनुष्य है, इसीलिये ईश्वर भी है। जो मनुष्य अपना अस्तित्व नहीं मानेगा उसके लिये ईश्वरकी सत्ता मानना कठिन है, पर जो अपनी आत्मसत्ता मानता है और उसका कार्य अपने शरीरमें होता हुआ विचारदृष्टिसे देख सकता है, वह ईश्वरकी सत्ताका अनुभव कर सकता है।

४—अपने जीवनकी ऐसी सच्ची घटनाएँ लिखिये, जिनसे ईश्वरकी सत्ता और दयामे आपका विश्वास बहुत बढा हो। अपने जीवनमे अनुभव तो मैं यही करता हूँ कि जो मैं करना चाहता हूँ, वह तो नहीं होता, परतु जो स्फूर्ति होती है वह किया जाय तो अल्पायाससे सिद्ध हो जाता है। इसलिये मैंने अपना हठ छोड दिया है और जो प्रबल प्रेरणा होती है, वही करता जाता हूँ। बचपनसे मुझे यही अनुभव हे कि कोई ऐसी शक्ति है कि जो चक्रवत् भ्रमण कर रही हे और कार्य करा रही है। आयुके चालीस वर्ष पूर्व यह अनुभव अत्यन्त अस्पष्ट था,

अब स्पष्ट है; और इस अनुभवमे जब मै अपनी पूर्व आयु देखता हूँ, तब उसमे एक सूत्रता दीखती है जो मैंने कभी कल्पना अथवा योजना करके निश्चित नहीं की थी। फिर वह किसने की ? जिस किसीने की होगी, वही ईश्वर है।

अब तो मूर्तामूर्त सब ईश्वरका ही रूप है, ऐसा दीखता है। इसे ऐसा दिखानेमे जिसका उपदेश कारण हुआ उसने स्वयं दर्शन दिये। मैंने प्रयत्न भी नहीं किया था। फिर मै ऐसा क्यो न समझूँ कि एक ही नियामक सत्ता है।

═══ ★ ═══

बाबा राघवदास

१—मनुष्यकी शक्तियाँ परिमित हैं। इसलिये वह जो भी सोचता है, करता है, उसमे अपूर्णता रह ही जाती है। इसलिये वह स्वभावत ऐसी शक्तिकी खोजमे रहता है, जिसके सामने वह अपनी अपूर्णताको स्वीकार करता हुआ पूर्णताकी ओर अग्रसर हो। उस अदृश्य शक्तिको हम चाहे जिस नामसे पुकारे, पर वास्तवमे वही ईश्वर है।

२—ईश्वरको न माननेमे जो हानियाँ हैं, वे स्पष्ट हैं। आज जो ईश्वरको न माननेकी लहर उठ खडी हुई है, उसका मूल ढूँढनेसे स्पष्ट पता चलता है कि वह *आर्थिक वैषम्यकी भावना* है। ईश्वरके साथ आर्थिक वैषम्यका सम्बन्ध जोडना न्याययुक्त नहीं। ईश्वरभक्तो तथा ईश्वरके माननेवालोने अर्थको प्राधान्य नही दिया है, जबानी ईश्वरका नाम लेनेवाले किंतु हृदयसे कट्टर जडवादी लोगोने ही दिया है। अर्थ जीवन-निर्वाहका एक साधन है न कि मनुष्य-जीवनका साध्य। जिन लोगोने इसी अर्थको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देकर 'ईश्वरवाद' को कलंकित किया है, उनका आचरण इस विषयमे प्रमाण मानना भूल होगा।

ईश्वरको इसलिये नहीं माना जाता है कि गरीबोको लूटा जाय, किंतु इसलिये कि मनुष्यके हृदयमे 'अनन्त' की ओर बढनेकी जो जिज्ञासा है, उसकी तृप्ति, पूर्ति एव शान्ति हो। यहीसे ईश्वरमे श्रद्धा उत्पन्न होती है। मनुष्यको केवल भौतिक भोगोसे हार्दिक शान्ति नहीं मिलती। वह ऐसी चीजकी तलाशमे सदैव रहता है, जो उसके पास हो

और ऐसी हो, जो किसी देश तथा कालमे उससे अलग न हो सके। अखण्ड शान्तिकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य ईश्वरकी खोज करता है।

मनुष्य आदर्शवादी प्राणी है। वह साधारण नियम तथा शक्तियोमे ही संतुष्ट नहीं रहता। इसलिये जिन गुणोको वह आदर्श मानता है, उनके समुच्चयका पूरा खाका अपने सामने लानेके लिये सर्वगुणसम्पन्न ईश्वरकी ओर वह स्वभावतः झुक जाता है। मानवजातिके इतिहासमे आदर्शपर चलनेवाले जो सैकड़ो महापुरुष तथा स्त्रियाँ है, इसका कारण आदर्शस्वरूप ईश्वरास्तित्वको स्वीकार करना है। अपनी-अपनी कल्पना, परिस्थिति तथा संस्कारके अनुसार आदर्शोमे कुछ भिन्नता चाहे भले ही हुई हो।

ईश्वरको न माननेमे हानियाँ कितनी है—इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। समाज-धारणाके लिये प्रत्येक मनुष्यको आवश्यक है कि वह सयमी हो। असंयमी पुरुष न केवल उच्छृङ्खल होनेसे अपने साथियोके लिये दु.खदायी होता है, किंतु सारे समाजकी शान्तिको भी बिगाड़ता है।

संयम तथा आदर्शरहित व्यक्ति कभी भी सत्साहसी नहीं हो सकता। भूतदया, मानवसेवाकी तो कल्पना ही नहीं हो सकती। सर्वस्व अर्पण करनेकी आवश्यक शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब इन गुणोके पीछे रहनेवाली एक अखण्ड शक्तिको माना जाय अन्यथा ऊपर विचार करनेवाला पुरुष तारतम्य विचारसे अपनेको ऐसे उदात्त विचारोंपर न्योछावर नहीं कर सकता।

समाजके निराशा तथा अनन्त दु.खोंकी रामबाण ओषधि जो ईश्वर है, उसके अस्तित्वको मिटा देनेवाले साहित्यका प्रचार करना मानो समाजको मँझधारमें छोड़कर उसे किंकर्तव्यविमूढ़ बनाना है। मानव-

समाज सदैव ईश्वरको मानता आया है, चाहे वह जिस किसी रूपमे हो। सोवियत रूस भी 'ईश्वरवाद' का जोरोंसे खण्डन करता हुआ भी एक प्रकारसे ईश्वरको किस प्रकार मान रहा है, सो हमारे सामने है।

मेरे जीवनमें जब कभी-कभी निराशा आ जाती है, जब मैं चारों ओर अन्धकार देखता हूँ, उस समय ईश्वरकी भावनासे मुझे अपार सान्त्वना तथा शान्ति मिलती है। यह शक्ति भौतिक सुख-शान्तिसे सर्वथा भिन्न है। इसका भी सदैव अनुभव हुआ है। ऐसी उन उलझनोमेसे एक ऐसा रास्ता निकल आया है, जिससे भौतिक कार्यमे भी बड़ी सुविधा हुई है।

मै ईश्वरको इसलिये ही नहीं मानता कि वेदादिमे लिखा है, किंतु मेरा मन और बुद्धि उसके अस्तित्वको स्वानुभवसे स्वीकार करते हैं। मैं कहता हूँ कि ईश्वरवाद समाजके लिये अफीमके नशेके समान नहीं, बल्कि संयम और शक्तिका देनेवाला है। उसे मानना समाजका स्वभावधर्म है और वह इस धर्मको किसी बाहरी दबावके बिना ही अपने-आप स्वीकार करता है।

—★—

श्रीरामदासजी गौड़, एम्० ए०

(१) ईश्वरको क्यो मानना चाहिये ?

(१) क्योंकि इसीमे मनुष्यता है।

मनुष्य-योनिके धर्म और कर्तव्य इतर योनियोसे भिन्न है। मनुष्य आग बनाता है, भोजन पकाता है, भोजनकी सामग्री उपजाता है, कपडे बनाता है और पहनता है, पशुओसे हर तरहकी सहायता और काम लेता है, घर बनाकर उसमे रहता है, फिर बस्तियोका निर्माण करता है, समाजका संगठन करता है, समूहोका नियमन, शासन और न्याय करता है। ये सभी काम वह पशुओसे भिन्न करता है। पशु इनमेसे एक भी नही करता। वह जैसे समाजके धर्मो और कर्तव्योतक विकास किये हुए है, उसी तरह लिखना-पढना, यजन-याजन, वेदाध्ययन भी वह करता है, जो पशु नहीं करता। इसी तरह वह परलोकका विचार और अपनी भावी सुगतिके लिये भी चिन्ता करता है। अब जो दोनो लोकोका नियमन और स्वामित्व करता है, उसे मानना और जानना भी मनुष्यताका एक लक्षण हुआ। कोई पशु न तो पढता-लिखता है, न यजन-याजन करता है और न ईश्वरको जानता-मानता है। इसीलिये कि हम मनुष्य है, हमे ईश्वरको मानना चाहिये।

परतु इसपर यह कहा जा सकता है कपडे पहनने, खाना पकाने आदिकी तो आवश्यकता है। इनके बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता, परतु पढना-लिखना, यजन-याजन, परलोकका विचार, ईश्वरको मानना यह हमारे जीवनके लिये अनिवार्य नहीं है।

बहुत-से मनुष्य इनके बिना भी जीते हैं। इसका उत्तर यह है कि मनुष्य बिना पकाये और बिना कपडा पहने उसी तरह जी सकता है, जैसे पशु, परतु उसने जैसे पकाना-खाना, कपडे पहनना और घरोमे रहना अपने लिये आवश्यक बना लिया है, वैसे ही पढना-लिखना, यजन-याजन, ईश्वरोपासना आदिको भी मानसिक और आध्यात्मिक भोजनाच्छादन बना लिया है और इनके बिना भी उसका काम नहीं चल सकता या कम-से-कम इनके बिना उससे रहा नही जाता। इस तरह सहज मानवविकासके कारण उसे ईश्वरको भी मानना पडता है, चाहे वह उसे किसी नाम या किसी रूपसे माने।

यह कह सकते हैं कि नास्तिक या अनीश्वरवादी तो ईश्वरको नहीं मानता।

यह तो सच है कि वह ईश्वर नामक किसी विभु या प्रभुकी सत्ता नहीं मानता, परतु वह सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, बडप्पन, तेज, शक्ति आदिको अलग-अलग अवश्य मानता है, और ईश्वरवादी जानते हैं कि यह सभी गुण या धर्म ईश्वरके ही है। जो सत्य आदिको मानता है, वह वास्तवमे ईश्वरके ही विविध अङ्गोंको मानता है। यह सच है कि वह पान-फूल लेकर इनकी पूजा नहीं करता, परतु वह तो अपने अच्छे आचरणोसे ही इनकी अर्चा करता है। ईश्वर तो 'स्वकर्मणा' ही अपनी अर्चा चाहता भी है। पान-फूल तो आवश्यक नहीं हैं और निकम्मे आचरणवाले तो अनीश्वरवादी और ईश्वरवादी बराबर ही हैं, क्योंकि ईश्वरवादित्व तो अनाचार और दुराचारका विरोधी है।

अत तथोक्त अनीश्वरवादी भी जो सदाचारको मानता है, ईश्वरको सदाचारके रूपमें मानता ही है और सदाचारको मानना मनुष्यताका एक विशेष लक्षण है।

(२) क्योकि विकासत माने बिना रह नही सकता। आहार, निद्रा, भय, मैथुनादिमे मनुष्य और पशुमे कोई अन्तर नहीं है। विकासमार्गमे मनुष्य पशुओसे ऊचा उठता है और देवत्वकी स्पर्धा करता है। उसके आचार, उच्चार और विचारमें जितनी ही उच्चता आती है, उतना ही वह मनुष्यताकी ओर बढा समझा जाता है। अपना होना और अपने सजातियोंका होना तो पशु भी जानता और मानता है। उन विजातियोंको भी मानता है, जिनका अस्तित्व वह अपनी इन्द्रियोंसे अनुभव करता है। उसकी बाहरी इन्द्रियोका विकास तो बहुत कुछ हुआ है, परतु भीतरी इन्द्रियाँ अर्थात् अन्त करण अभी विकसित नहीं हुए है। मनुष्यके अन्त करणोका विकास हुआ है। वह उनका पूरा-पूरा व्यवहार करनेका अभ्यास करता है। वह बाह्य इन्द्रियोसे अतीत वस्तुओको जानता और मानता है। उनकी खोज करता है। वह इसी खोजमे अनेक शक्तियोंका परिचय पाता है, जो बाह्यकरणोसे अगोचर हैं। इसी मार्गसे चलते हुए वह ऐसे शक्तिमान्का अनुमान करता है, जिसमे प्रभुत्व सम्भव है। वह अनेक ऐसे अनुभव करता है, जिनका कारण नहीं जान सकता, फिर भी अनुमान करता है, परतु कारणोके परम कारणको वह मनसे भी अतीत पाता है, उसे वह ईश्वर या अन्य किसी नामसे मानने लगता है। मनुष्यके विकासमार्गमे यह आवश्यक और अनिवार्य अवस्था है। इस अवस्थाको अनीश्वरवादी चाहे भूल भले ही कहें, परतु इस अवस्थाका आना अनिवार्य है। ऐसी दशामें वह बरबस ईश्वरको किसी-न-किसी रूपमें मानता है। 'चाहिये' वाला नैतिक प्रश्न उसके लिये नहीं रह जाता, वह तो मायाके चक्करमे पडकर लाचार हो मानता ही है।

'कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥'

ससारमें ईश्वरके माननेवालोंकी बहुत बडी संख्या है। अनीश्वरवादी तो सख्यामे अत्यन्त कम हैं। वैज्ञानिक देखता है कि मानवसमाजमें ईश्वरवाद एक महान् तथ्य है और विकास-मार्गमें आगे बढे हुए मीलके पत्थरोंमेसे है।

(३) क्योंकि रक्षार्थ उसे मानना पडता है।

ईश्वरको माननेका एक जीव वैज्ञानिक प्राकृतिक कारण भी है। सृष्टिमात्रमे योग्यतमावशेषका नियम चलता है। बलवान् कम बलवालेका नाश कर देता है। अत प्राणिमात्र अपने शत्रुओसे घिरा हुआ है। मनुष्य भी इसी प्राकृतिक नियमका अनुवर्ती है। इसीलिये प्राणिमात्रमे भयका भाव व्यापक है। शत्रुसे भय या अपनी हानिका भय प्राणिमात्रके मनमे होता है। इसी भावके कारण जीव अपनी रक्षाका निरन्तर ध्यान रखता है। छुटपन शिशुकी रक्षा माता-पिता करते हैं। बडे होनेपर यद्यपि वह आत्मरक्षामे समर्थ होता है तथापि माता-पिताके जीते-जी बडा सहारा रहता है। माता-पिताके होते और मरे पीछे भी अनेक अवसर ऐसे आते हैं कि जान जोखिममे पड जाती है और उबरनेका कोई उपाय नहीं दीखता। प्राणी घबराकर अदृश्य रक्षकका सहारा ढूँढता है। वह बहुत चाहता है कि सकटसे कोई उबारे। ऐसी दशामें वह किसी विभु-प्रभुकी याद करता है। यह साधारण अनुभव भी है कि या तो कोई अदृश्य शक्ति सहायता कर देती है अथवा आत्मबल ही प्रस्फुटित होकर रक्षा कर देता है। भयभीत हो अदृश्य शक्तिकी सहायताकी इच्छा ही ईश्वरकी सत्ताको मनवाती है। आत्मरक्षाके लिये व्यक्ति और जाति तथा समाजरक्षाके लिये जाति और समाज, इसीलिये ईश्वरको मनाते और मानते हैं। यह दुर्बलता स्वाभाविक है, इससे अत्यन्त विकसित हृदय और मस्तिष्कवाला

मनुष्य भी बचा नहीं है। इस दुर्बलताके कारण ईश्वरका मानना स्वाभाविक है, अत मानना ही चाहिये। न मानेगा तो—

'कर्त्तु नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥'

(४) क्योकि नीतिरक्षाके लिये उसका मानना लाभकर है।

ईश्वरको जो मानता है, वह उसे शक्तिमान्, न्यायी और सर्वज्ञ जरूर मानता है। वह सर्वज्ञ है, अत हम यदि दुराचार करे या अनाचार करें तो वह अवश्य जान जायगा और वह शक्तिमान् और न्यायी है, अत दण्ड भी जरूर देगा। यह भावना जो ईश्वरवादीके मनमे दृढ रहती है, उसकी अनेक अनीतियोंसे रक्षा करती है। एकान्तमें या किसीके न जानते हुए अनेक पाप हो सकते हैं। परतु जिसका ईश्वरम सच्चा और पक्का विश्वास है, वह एकान्तमे भी ईश्वरकी विद्यमानताका अनुभव करता हैऔर मनुष्यके न जानते हुए भी ईश्वरका जानते रहना निश्चित समझता है। इसीलिये उसके शरीरसे कहीं भी हो, पाप नही हो पाता और यदि किसी दुर्बलतासे हो भी जाता है तो उसका उसक मनम सच्चा पछतावा हुआ करता है। इससे फलत अनीति या दुर्नीति कर बैठनेपर भी उसके मनका कलुष धुल जाता है।

परतु ईश्वरके इस दरजेके विश्वासी कम ही होते है। अधिकाश तो ईश्वरके विश्वासका दम भरते हैं, परतु उनके मनमे विश्वास होता नही। ऐसे लोग एकान्तमे दुर्नीतिसे नहीं बच सकते। वे ईश्वरके न्यायमे और शक्तिमत्तामें तो शायद विश्वास करते है, परतु सर्वज्ञतामें उन्हे विश्वास नहीं होता। फलत जब ईश्वरके नामसे शपथ लेनी पडती है तब वे हिचकते हैं और झूठी शपथ नहीं खा सकते, परतु जो ईश्वरकी सत्ताम ही भीतर-भीतर विश्वास नहीं करते, वे ईश्वरके माननेवाले बनते हुए भी किसी कदाचारसे नहीं हिचकते। उनकी ईश्वरवादिता भी खासा दम्भ ही है।

इससे यह स्पष्ट है कि ईश्वरके भयसे मनुष्य नीतिमार्गपर आरूढ रहता है, इसीलिये नीतिमार्गकी रक्षाके लिये ईश्वरको अवश्य मानना चाहिये।

(५) क्योंकि जीवकी उन्नति ईश्वरके माननेसे निश्चित है।

हम दो प्रकारके ईश्वरवादियोका अभी उल्लेख कर चुके हैं, एक तो सच्चे, दूसरे दम्भी। सच्चे ईश्वरवादीको हमने ईश्वरसे डरनेवाला दिखाया है, परतु एक और प्रकारके सच्चे ईश्वरवादी होते हैं। इन्हे हम 'भक्त' कहेगे। गीता और रामचरितमानसमें ये चार तरहके बताये गये है और भक्तमालमें रसों और भावोकी दृष्टिसे पाँच प्रकारके। आर्त्त भक्त सकटसे उद्धार चाहता है, जिज्ञासु ज्ञान चाहता है, अर्थार्थी किसी कामनाकी पूर्ति चाहता है, ज्ञानी केवल प्रेमसान्निध्य या मुक्ति चाहता है। इन चारोमेसे एक भी ईश्वरके भयसे, पापसे विरत नहीं होते, वर उसकी प्रीतिके कारण कदाचारसे बचते रहते है। भक्तमालके पाँचो प्रकारोमे एक बात अवश्य पायी जाती है, वह है—भगवद्गुणोका अनुकरण। अत ईश्वरके भक्तोमे दो तत्त्व मुख्य है, एक तो भगवत्से प्रेम और दूसरे उनके गुणोका अनुकरण। श्रद्धा-भक्ति-प्रेम अनुकरण साथ-ही-साथ चलते है। ये मनुष्यको केवल आचारमे ही नहीं वल्कि जीवकी आध्यात्मिक उन्नतिमे ऊँचा उठाते हैं। ईश्वरका आदर्श इस प्रकार मनुष्यकी भीतरी उन्नतिका विधायक है और भीतरी उन्नति होनेसे बाहरी उन्नति अपने-आप होती रहती है। उन्नति सभी चाहते है और सबकी होनी चाहिये। इसीलिये सबको सच्चे मनसे ईश्वरको मानना चाहिये और उसकी भक्ति करनी चाहिये।

इस प्रकार (१) मनुष्यताके लिये, (२) स्वाभाविकताके लिये, (३) अपनी रक्षाके लिये, (४) नीतिरक्षाके लिये और (५) आध्यात्मिक

उन्नतिके लिये—इन पॉचो उद्देश्योके लिये ईश्वरको मानना चाहिये।

२—ईश्वरको न माननेमे कौन-कौन-सी हानियॉ है ?

जब हम इस प्रश्नका कि ईश्वरको क्यो मानना चाहिये, उत्तर दे चुके, तब इस दूसरे प्रश्नका उत्तर सरल हो गया। यदि मनुष्य ईश्वरको न माने तो उसका अर्थ यह है कि वह आत्माको एव गुणोके आदर्शको भी नहीं मानता, जो किसी पुरुषमे इकट्ठे हो सकते हैं और वह आध्यात्मिक भोजनाच्छादन भी नहीं चाहता। दूसरे शब्दोमे वह मनुष्यताके उस दरजेपर पहुँचनेसे इनकार करता है, जिसे आध्यात्मिकता कहते है। वह आहार, निद्रा, भय, मैथुनमे लिप्त पशु-मनुष्य रहना चाहता है। इसपर यह कहा जा सकता है कि वह तुम्हारी तरह आध्यात्मिकताके आदर्शको ऊँची अवस्था नही मानता, परंतु मनका विश्वास भी वैज्ञानिकोने विकासकी ऊँचाईका लक्षण माना है और ईश्वर या परलोक या आत्मा एवं सदाचारका आदर्श जीवन इत्यादिका मानना-जानना मनके ऊँचे विकासपर ही निर्भर है। अत. वह आध्यात्मिकताके आदर्शको ऊँची अवस्था न भी माने तब भी मनोविकासमार्गमें उसकी गति तो रुक ही जाती है। इस तरह अपनी अनीश्वरवादितामे मनुष्यताकी हानि है और स्वाभाविकताका विरोध है।

संकटके समय अनीश्वरवादी भी किसी औरकी सहायता चाहता है; परंतु जहाँ कोई सहायक नही है, वहाँ वह निराधार रह जायगा! प्रार्थना या ईश्वरावाहनसे अपने आपेमे जो ढाढ़स, दृढता और शक्ति आती है, वह अनीश्वरवादीको प्राप्त नहीं होती। यह सकटके समय उसकी भारी हानि है। आत्मरक्षा और जातिरक्षा अनीश्वरवादीको भी अपेक्षित है। अतः इन दोनो बातोमे भी वह ईश्वरको न माननेके कारण घाटेमे ही रहता है।

अनीश्वरवादीका सदाचारी होना कठिन है। काम, क्रोध, लोभ, मान मद और मत्सर षड्विकार स्वभावसे ही सभी प्राणियोमे हैं और मनुष्य तो इनका पुतला है। सबके सामने रहते हुए भी मनुष्य इन विकारोके वशीभूत रहता है, फिर एकान्तमे तो उसे समाजका भी बन्धन नही रहता और वह खुलकर खेलता है। जिसे भगवान्का भय है, उसे तो एकान्तमे भी रुकावट है, परतु अनीश्वरवादीको एकान्तमें तो किसीका भय नही। उसकी चोरीको देखनेवाला तो कोई नहीं है। उसके नीति-शास्त्रमे समाजका एकमात्र अङ्कुश हो सकता है, परतु एकान्तका अपराध न तो समाजमे सिद्ध होगा और न वह दण्ड पायेगा। अत वह उद्दण्ड और दुराचारी हो ही जायगा। इस तरह अनीश्वरवाद मनुष्यको अपराध करनेमे निरङ्कुश कर देता है और दुराचारी बना देता है।

और भक्तिका तो अनीश्वरवादीके निकट कोई प्रश्न ही नहीं है। वह उच्छृङ्खल विचारका मनुष्य अपनेसे बडा, अपनेसे अच्छा, अपनेसे गुणवान् दूसरेको क्यो मानने लगा? यदि माने तो वह क्रमश ईश्वरवादितापर पहुँच जायगा। जैसे जैनमत ईश्वर नामसे तो किसीको नहीं मानता, [क्योकि उसके निकट ससार अनाद्यन्त है, उसके कर्ता माननेकी आवश्यकता नहीं,] परतु सूरि, मुनि, तीर्थकर, अर्हत् आदि आदर्श मुक्त पुरुषोंको सदाचार और तपस्या आदिके लिये मानता ही है, जो वस्तुत अनीश्वरवादित्व नहीं कहा जा सकता।

जब वह अपनेको सबसे अच्छा इत्यादि मानता है, तब वह आगे बढने और अधिक समुन्नत होनेकी ओर क्यों प्रवृत्त होगा? इस तरह अनीश्वरवादीकी उन्नति मारी जाती है।

अनीश्वरवाद गीताके अनुसार आसुरी सम्पत्ति है। आसुरी सम्पत्तिवाले लोग न तो प्रवृत्ति-निवृत्तिको जानते हैं और न उनमें

पवित्रता, आचार और सत्य ही रहता है। वे कहते हैं कि 'जगत् अप्रतिष्ठ, असत्य, ईश्वररहित और केवल स्त्री-पुरुषके सयोगसे ही उत्पन्न है। यह केवल कामहेतुक ही है।' इस प्रकारकी दृष्टिका अवलम्बन करनेवाले वे नष्टात्मा, अल्पबुद्धि, सबका अहित करनेवाले क्रूरकर्मा मनुष्य जगत्के नाशके लिये ही उत्पन्न होते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे भरे हुए लोग कभी पूरी न होनेवाली कामनाओका आसरा लेकर मोहवश मिथ्या सिद्धान्तोको ग्रहण करके भ्रष्टाचारी होकर ससारमे बर्तते हैं। मौतकी शेष घडीतक वे अनन्त चिन्ताओमें डूबे हुए रहते हैं और विषयभोगको ही आनन्द मानकर बस, उसीमे लगे रहते हैं। सैकडों आशाओकी फाँसियोसे बँधे हुए काम-क्रोधपरायण वे लोग विषयोंकी प्राप्तिके लिये अन्यायपूर्वक धन इकट्ठा करनेकी चेष्टा करते हैं। इसी उधेड-बुनमें रहते हैं कि 'आज यह पाया, अब हमारा वह मनोरथ पूरा होगा, मेरे पास इतना धन है, फिर इतना और होगा। आज उस बैरीको मारा, अब दूसरोको मारूँगा। मैं ही ईश्वर, भोगी, सिद्ध, बलवान् और सुखी हूँ। मैं बडा धनी, बडे कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है। मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, मौज करूँगा, इस प्रकारके अज्ञानमे वे मोहित रहते हैं। यो अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले वे आसुरी सम्पदायुक्त लोग मोहरूप जालमें फँसे हुए विषयभोगोमे अत्यन्त आसक्त होकर अपवित्र नरकोमें गिरते हैं।' (गीता अ० १६।७ से १६)

परतु अनीश्वरवादी न तो गीताको मानता हे और न गदे नरकमे गिरना ही मानता है, किंतु मानने या न माननेसे कुछ होता-जाता नहीं। कर्मानुसार फल तो मिलेगा ही।

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।

अत उसकी तो भारी हानि यह है कि वह आगे बढनेके बदले पीछे हटता है, ऊपर उठनेके बदले निरन्तर नीचे गिरता जाता है। इस भारी हानिका कोई प्रतीकार नहीं है।

३—ईश्वरके होनेके कौन-कौनसे प्रबल प्रमाण है ?

(१) वैज्ञानिक कल्पनाकी सीमा

कारण और कार्यवाला तर्क तो पुराना है। सभी जानते हैं। कारण कई प्रकारके होते हैं, परतु मिट्टी भी वही हो, कुम्हार भी वही हो और घट भी वही हो, तो कार्य-कारण सम्बन्धका झगडा नहीं रहता। '**सर्वं खल्विद ब्रह्म**' सब कुछ ब्रह्म ही है, फिर उसके लिये प्रमाणकी खोज ही व्यर्थ है। सत्तामात्र ईश्वर है तो उसे सिद्ध करनेका प्रश्न ही क्या है ? सत्तामे व्यक्त, अव्यक्त, जड और चेतन—चारो प्रकारोकी सत्ताओंका सनिवेश है। जिस प्रकार हम आत्मा-मनस् और इन्द्रियोंसे बने हुए सम्पूर्ण व्यक्तिको ही देवदत्त नामका एक पुरुष मानते हैं, उसी तरह व्यक्ताव्यक्त जडचेतनमय सम्पूर्ण विश्व और विश्वात्माकी कल्पना करके इस सम्पूर्ण सत्ताको ही ईश्वर नामका एक पुरुष मानते हैं। अनीश्वरवादी विश्वात्माको नहीं मानता, परतु वह विज्ञानके एकतावाले निष्कर्षपर तो अन्तको पहुँचता ही है, चाहे उसे वह ईश्वर नाम भले ही न दे।

अखिल सत्तामें एक ही जीवनकी अभिव्यक्तिको आचार्य वसुने जो प्रमाणित किया है, वह जीव वैज्ञानिक विचारकी पराकाष्ठा है।

अखिल सत्तामें एक ही जीवनकी अभिव्यक्तिको आचार्य

टामसनने जो प्रमाणित किया है, वह भौतिक विज्ञानके विचारकी पराकाष्ठा है।

अखिल सत्तामें एक ही सत्ताकी अभिव्यक्ति, जो रासायनिक खोजोंका अन्त है, वह रसायनविज्ञानके विचारकी पराकाष्ठा है।

अखिल सत्ता अनादि, अनन्त और निरन्तर परिवर्तनशील, अनन्त देश और अनन्त कालमय है, ज्योतिर्विज्ञानका यह अन्तिम निष्कर्ष और **'महतो महीयान्'** का स्वरूप है।

अखिल सत्तामे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवन और सत्ता है; जो अणुवीक्षणसे भी अभेद्य और अगोचर है, जो**'अणोरणीयान्'**का दूरसे पता देता है, यह जीवाणुविज्ञानसे सिद्ध है।

जीवविज्ञान, भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान और जीवाणुविज्ञान——ये क्रमशः जीव, शक्ति और सत्ताकी एकता प्रतिपादित करते हैं और **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** को व्यक्त करते हैं। एक विज्ञानकी ये पाँच शाखाएँ हैं। इनका मूल 'विज्ञान' है, जहाँ पाँचो एकत्र होते हैं और जिनके अलग-अलग निष्कर्षोको एकत्र करनेसे दार्शनिकोंके ईश्वरकी सिद्धि होती है। इसे अनीश्वरवादी सहजमे ही क्लिष्ट कल्पना कह सकता है; क्योकि वह यदि चार्वाकके अनुसार प्रत्यक्षेतर प्रमाण नहीं मानता तो वह ईश्वरको तभी मानेगा जब वह उसके लिये प्रत्यक्ष हो जाय। ईश्वर यदि देहधारी भी हो तो भी यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्यक्ष हो ही जाय। प्रत्यक्षका न हो सकना सभी दशाओमें अभावका प्रमाण नहीं है। एक चींटी हाथीके सम्पूर्ण शरीरको देख नहीं सकती। हमारे शरीरके किसी सेलको हमारे शरीरके अत्यन्त सूक्ष्मांशसे अधिक दिखायी नहीं दे सकता। यदि वह सेल प्रत्यक्षको ही मानने-

वाली हो तो वह कह सकती है कि नरदेह-जैसी कोई वस्तु नहीं होती। ईश्वर यदि हमारे लिये उतना ही महान् हो जितने कि हम सेलके लिये हैं तो वह हमे कदापि दीख नहीं सकता। अत चार्वाकानुयायीका यह कहना कि इन्द्रियातीत सत्ता मान्य नहीं है, बुद्धिके विरुद्ध है।

यह भी विचारणीय है कि हम किसीको कैसे पहचानते हैं। देवदत्तको हम देवदत्त करके इसीलिये जानते हैं कि एक मुद्दतसे हम इसी नामसे पुकारते आये हैं। उसके व्यक्तिगत गुणोको जानते हैं। देवदत्तका शरीर बराबर बदलता रहता है। रूपान्तर होता रहता है। बाल्यावस्थाका रूप और है युवावस्थाका और। बुढापेमें उसका रूप भिन्न हो जाता है। फिर भी हम देवदत्त ही पुकारते हैं। उसके शरीरके साथ नामकी रूढि है। जब वह शरीर छोड देता है, तब कहते है—'देवदत्त मर गया।' देवदत्त हम किसे कहते थे ? निश्चय ही उसके उस चेतनाको कहते थे जो उक्त नामधारी शरीरमे थी, अन्यथा, यदि शरीरको कहते तो शरीरके बदलते रहनेसे नाम भी बदलता जाता। चेतना वही रही, अत नाम भी वही रहा। चेतना चली गयी, नाम भी चला गया, परतु चेतना हमारी स्थूल इन्द्रियोसे अतीत है। सूक्ष्म इन्द्रियाँ उसके अस्तित्वसे परिचित थीं। नाम चेतनाका ही था। व्यक्तिभेद समझनेके लिये ही रूपकी अपेक्षा थी। अत नामका सम्बन्ध केवल चेतनासे था, वही नामी था। आत्माको चाहे कोई मरणशील माने, चाहे अमर, परतु व्यक्तिमें आत्मा ही नामी है। ईसाई-जगत्में फ्रासका प्रसिद्ध दार्शनिक वाल्टेअर अनीश्वरवादी था। फिर भी वह आत्माका अस्तित्व मानता था। **'अयमात्मा ब्रह्म'**—'यह आत्मा ब्रह्म है'—इस महावाक्यके माननेवाले आत्माको ही ब्रह्म मानते हैं। आत्मा ही ईश्वर है। परतु जो आत्माका मृत्युके साथ विनाश मानते हैं, वह इस तरह ईश्वरका भी

विनाश मानेगे। परंतु आत्माकी मरणान्तर अवस्थिति हजारो प्रयोगोसे सिद्ध हो चुकी है। लंदनकी परान्वेषणपरिषद्ने एवं संसारके अनेक वैज्ञानिकोंने सिद्ध कर दिखाया है कि स्थूल शरीरके छूटनेसे व्यक्तिका नाश नहीं होता। व्यक्ति बहुत कालतक परलोकमे सूक्ष्म शरीरमे बना रहता है। जन्मान्तरके भी अनेक प्रमाण मिले है। अत व्यक्तिकी या आत्माकी अमरता साधारणतया सिद्ध है। अब इस अमर आत्माको ब्रह्म माने तो ईश्वर या ब्रह्मकी संख्या अनन्त हो जाती है, यह तो स्पष्ट है। दर्शनोके इस सम्बन्धमे क्या मत हैं, यहाँ देनेकी आवश्यकता मै नहीं समझता। मैं तो वैज्ञानिक कल्पना यहाँ रखना चाहता हूँ।

(२)'अयमात्मा ब्रह्म' की कल्पना

हमारा शरीर असंख्य जीवित अणुओका बना हुआ है, जिन्हे 'सेल' कहते हैं। ये जीविताणु बहुत सूक्ष्म है, परंतु अणुवीक्षण-यन्त्रद्वारा देखे जा सकते हैं। ये भोजन करते हैं, बढते हैं, एकसे अनेक होते हैं, अपना व्यक्तिगत जीवन रखते हैं, उनके व्यक्तिगत कर्तव्य है, उनकी अलग-अलग जातियाँ है। इन्हीं सेलोसे जीवनका विकास आरम्भ होता है। इनमे जैसे और सब अवयव सूक्ष्मरूपसे हैं उसी तरह चेतनाका भी सूक्ष्म रूप है। यह सम्पूर्ण सेल-समूह इस प्रकार सूक्ष्म चेतनासमूह है, जो हमारे शरीरके अविज्ञात कर्मोका अविज्ञातरूपसे नियमन करता रहता है। इसीका बहुत विकसित रूप वह चेतना है, जो सम्पूर्ण शरीराभिमानी आत्माके रूपको व्यक्त कराती है। विकासवाद इस प्रकार मानवचेतनाको चेतनाके विकासकी पराकाष्ठा समझता है; परंतु परलोकविज्ञानसे पता चलता है कि चेतनाके विकासकी अन्तिम अवस्था मानवयोनि नहीं है। मानवयोनिसे कहीं अधिक विकसित योनियाँ भी सम्भव हैं, जो हमारी

इन्द्रियोसे परे है। जर्मन दार्शनिक नीट्शेके परमानवकी तो कल्पनामात्र है, परतु परान्वेषणसे तो सिद्ध है कि परमानवसे भी अधिक विकासमार्गमे ऊँची श्रेणीके प्राणी मौजूद है, जो पता देते हैं कि चेतनाके विकासकी इति वहीं नहीं है। चेतनाके उस दरजेके विकासकी भी कल्पना हो सकती है जिसे 'इति' कह सकते है। यदि '**अयमात्मा ब्रह्म**' वाले सूत्रके अनुसार आत्माको ब्रह्म माने तो उस विकसित रूपको जहाँ चेतनाके विकासकी इति हो सकती है, हम 'परब्रह्म' कहे तो अनुचित न होगा। ऐसा व्यक्ति एक ही हो सकता है। शक्तिविज्ञानकी सर्वशक्तिमत्ता एक ही व्यक्तिमे सम्भव है। सम्पूर्ण सत्ताका एक मूल एक ही व्यक्तिमे सम्भव है। एक ही व्यक्ति मूलसत्तावान् सर्वशक्तिमान् परब्रह्म हो सकता हे। यह अनुमान और तर्कसे परिपुष्ट कल्पना है। विज्ञान इसका समर्थन करता है।

प्रत्यक्षवादी कह सकता है कि परब्रह्मकी सत्ताका क्या प्रत्यक्षीकरण हो सकता है? क्या इन्द्रियोद्वारा तुम उसका अनुभव करा सकते हो? उससे यह प्रश्न करना समुचित होगा कि क्या तुम इन्द्रियोके द्वारा आत्माका अनुभव करा सकते हो। अनुभव करनेवाला कौन है? द्रष्टा कौन है? ज्ञाता कौन है? वह तो वही अहता है न, जो अन्तरात्माका बाहरी प्रतीक हे? उसी अन्तरात्माको जानना है, जो स्वय ज्ञाता है। उसी अन्तरात्माको देखना है, जो स्वय द्रष्टा है। उसीका अनुभव करना है, जो स्वय अनुभव करता है। ज्ञातव्य वा द्रष्टव्य वस्तु जब ज्ञाता ओर द्रष्टासे भिन्न हो, तभी तो जानना या देखना सम्भव ह। इन्द्रियोकी शक्तिका स्रोत तो वही हे। चीमटा पकडनेवाले हाथको ही केसे पकड सकता है? अपनी ऑखोसे अपनी ऑखोका ही प्रत्यक्ष कैसे हो सकता हे? कोई अपने ही कधोंपर केसे बेठ सकता हे?

आत्माका जानना या देखना आत्माके ही लिये जैसे असम्भव है, परमात्माका जानना या देखना भी आत्मा या उसके हथियारोंके लिये असम्भव है, तो इसलिये कि इस विश्वशरीरमे वह सेलकी तरह इतना सूक्ष्म है और इतना छोटा अंश है कि उसकी इन्द्रियॉ परमात्माकी 'महतो महीयान्' सत्ताको छू भी नहीं सकतीं, उसके पास भी नहीं फटक सकतीं।

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'

या यदि आत्माको पूर्ण और परमात्मासे अभिन्न माने तो अखिलात्माको जाननेका प्रयत्न आत्माके लिये असम्भव हो जाता है। एक ओरसे **'अणोरणीयान्'** और दूसरी ओरसे **'महतो महीयान्'** प्रत्यक्ष ज्ञानका बाधक है।

(३) 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की कल्पना

यहॉतक हमने अद्वैतेतर कल्पनापर विचार किया है। अद्वैतवादीकी एक विशेष शाखा सत्तामात्रको—जड-चेतन, व्यक्ताव्यक्त समस्त सत्ताको—ब्रह्म कहती है, जिससे स्वय कहनेवाला भी अलग नहीं है। अनेक अनीश्वरवादी इस पक्षको मानते हैं और कहते हैं कि सत्तामात्रको ब्रह्म मानना और प्रकृतिमात्रको मानना एक ही बात है। ईश्वरवादी इस जगत्के कर्ता या परम कारणको ईश्वर मानते हैं, परतु यह अद्वैतवादी जगत्को ही ईश्वर मानता है, उससे विलग कोई कारण नहीं मानता। कारणवादी कहता है कि हम विश्वमे प्रतिक्षण निरन्तर परिवर्तन देखते रहते हैं और इन परिवर्तनोका कारण होता ही है, अत यह अनुमान समीचीन है कि जगत्का कोई परम कारण अवश्य होगा। जडवादी कहता है कि प्रकृतिके नियमसे अपने-आप निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इनका कारण स्वभाव ही है जो प्रकृतिसे

अभिन्न है, अत प्रकृति या जगत् स्वय अपना कारण है। यदि यह जड प्रकृति ही ईश्वर है तो उसकी उपासना मूर्खता है, क्योंकि जडको न तो उपासनाका ही पता है और न वह उपासकसे प्रसन्न होकर कोई पुरस्कार ही दे सकता। इस तरह **'सर्व खल्विदं ब्रह्म'**के माननेवाले चेतनवादी और जडवादी दोनों ही हैं। चेतनवादी **'तज्जलानिति शान्तमुपासीत'** को भी मानता है। जडवादी नहीं मानता। कुछ भी हो, सम्पूर्ण सत्ताको ईश्वर माननेवालेको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सत्ताका जो अश प्रत्यक्ष है, उससे ही पूर्णका अनुमान हो जाता है। यह सबसे प्रबल प्रमाण है।

(४) अनुभूत ज्ञान

ईश्वरवादी सगुण और निर्गुण दो प्रकारकी ईश्वरोपासना करते हैं। सगुण-उपासनाका सिद्धान्त समझमें आना अत्यन्त कठिन है, परतु विधि अधिक सुगम है। निर्गुण-उपासनाका सिद्धान्त समझमें आना कठिन नहीं है, परतु विधि अत्यन्त कठिन है। निर्गुण-उपासक भी परमात्मसत्ताका अनुभव अन्तमें करता ही है, परतु—

'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।'

सगुण-उपासनाके सुगम मार्गमें भी जो अनुभूति दुर्लभ है, वह निर्गुण-उपासनाके कठिन मार्गमें तो और भी दुर्लभ है और समाधि-अवस्थाकी अनुभूति भी क्या, जो अवर्णनीय और अनिर्वचनीय होती है। फिर भी जिसने एक बार ऐसी अनुभूति कर ली, उसे तो अपने लिये कुछ करना बाकी नहीं रहा।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

सगुण-उपासक अनेक प्रकारकी उपासनाएँ करता है। साकार उपासना करनेवाला भगवान्‌के किसी एक आकारकी कल्पना करके

उसके ध्यानमें रहता है और जिसकी तपस्या एक हदतक पहुँच जाती है, वह दर्शनलाभ भी करता है। इस तरहके प्रत्यक्ष दर्शन करनेवाले अनेक भक्त हैं। इस तरहके अनुभवजनित ज्ञान प्राप्त किये हुए भक्त इस बातके गवाह हैं कि ईश्वर है। इस प्रत्यक्षसे अधिक प्रबल कोई प्रमाण ही नहीं हो सकता।

इस प्रमाणके विरुद्ध कई आपत्तियाँ हो सकती हैं। एक भारी आपत्ति तो यह है कि अनुभव करनेवाला स्वय धोखा खा सकता है, उसे दृष्टिकी भ्रान्ति हो सकती है, वह मायाका रूप देख सकता है। रावणने मायासे सीताजीको राम-लक्ष्मणके कटे सिर दिखा दिये थे। सेनामें वानरोंको राक्षसोंके बदले सर्वत्र राम-लक्ष्मण ही दीखते थे। स्वय भगवान् श्रीरामचन्द्रने मायाकी सीताका हरण कराया था। अत बहुत सम्भव है कि जिन्हें विष्णुभगवान्‌के, भगवान् रामचन्द्रजीके, भगवान् शङ्करके अथवा भगवतीके दर्शन हुए हैं, वे मायारचित रूप रहे हों, किसी दैत्य, राक्षस, पिशाच आदिने पूजा लेते रहनेके लिये वह रूप धारण कर लिया हो।

यह आपत्ति वस्तुत महत्त्वकी है। दर्शन उतना आसान नहीं है जितना कि आम तौरसे समझा जाता है। जो लोग भगवद्दर्शनके लिये विशेषरूपसे तपस्या करते हैं, वे इन मायाकृत प्रपञ्चोंसे अनभिज्ञ नहीं होते। वे उससे बचनेके उपाय करते हैं और भगवान् ठगो और धूर्तोंकी मायासे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं, परंतु शर्त यह है कि शुद्ध मनसे प्रसन्न हों। हठी भक्त मायाकृत रूपसे कभी संतुष्ट नहीं होते। स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने जिस रूपके दर्शनोंके लिये घोर तप किया था, उसके बदले—

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। ....

परंतु वे तपस्वी लोग त्रिमूर्तिसे भी संतुष्ट न हुए। उनकी तपस्या ऐसी थी कि जब त्रिमूर्ति उन्हें अपने व्रतसे डिगा न सकी तो आसुरी माया क्या करती। बहुत-से अनुभवी धोखा खा सकते हैं, यह बात मानी जा सकती है, पर सभी अनुभवी धोखा नहीं खा सकते। फिर, मायाका रूप दिखलाकर संतुष्ट करनेका प्रयत्न ही इस अनुमानको पुष्ट करता है कि भगवान्‌का सगुण रूप असम्भव नहीं है।

दूसरी आपत्ति यह हो सकती है कि अनुभवका नाम लेकर अनुभवी जगत्‌को ठगना चाहता है। यह आपत्ति समीचीन है। परंतु भगवद्दर्शनका अनुभव अत्यन्त गोप्य है, वह किसीसे बतलानेका विषय नहीं है, रोजगारकी वस्तु नहीं है। यह ऐसी बात नहीं कि अनुभवी किसी दूसरेको अनुभव करा सके। यदि कोई ऐसा रोजगार करता है तो उसकी गवाहीका हमारे सामने कोई मूल्य नहीं है। हम उसीकी गवाही मानते हैं, जो निःस्वार्थ है और ऐसे निःस्वार्थ अनुभवशील महात्माओंका साक्ष्य नितान्त दुर्लभ नहीं है। स्वामी विवेकानन्द पहले घोर नास्तिक थे। रामकृष्ण परमहंससे शास्त्रार्थ करने आये तो अन्तमें ललकारा कि तुमने ईश्वरको देखा है? और देखा है तो हमें भी दिखाओ तो हम विश्वास करें। परमहंसजीने मुसकराकर कहा—'अच्छा, आया करो, हम दिखा देंगे। स्वामी विवेकानन्द कैसे आस्तिक बन गये, दुनिया जानती है।

तीसरी आपत्ति यह हो सकती है कि यदि ईश्वर है तो उसका अनुभव हर एकको होना सम्भव होना चाहिये, फिर हम दूसरेके अनुभवका अवलम्बन क्यों करें। इस आपत्तिमें समझकी भारी भूल है। जितनी वस्तुएँ हैं सबका अनुभव सबको सम्भव नहीं है। हमारी देहमें रोगाणु प्रवेश करते हैं, उनके प्रवेशको हम अनुभव नहीं करते।

अनुभव कर सकना सम्भव भी नहीं। फिर हर एक यदि शिकागो नहीं जा सकता तो जो हो आये है, उनके कथनपर विश्वास करके शिकागो नगरके अस्तित्वपर सभी विश्वास कर सकते और करते हैं। विज्ञानमें हजारों प्रयोग इस तरहके हैं कि हर वैज्ञानिकको सुलभ नहीं हैं, फिर भी जिन थोड़े-से विद्वानोंको सुलभ हैं, उनके प्रयोगोंपर सभी विश्वास करते हैं। रेडियम आदिपर परीक्षा करनेके लिये बहुत धन चाहिये। कम ही लोग उसपर प्रयोग करते है; परंतु संसार उनपर विश्वास करता है। इसी तरह यदि थोड़े-से तपोधन ईश्वरका साक्षात् कर चुके है, तो उनकी गवाही, उनका आप्तवाक्य हमारे लिये सर्वथा मान्य होना चाहिये।

इन तीनो आपत्तियोपर विचार करके अनुभवसे बढकर प्रबल कोई प्रमाण नहीं ठहरता।

(५) वैज्ञानिक अनुभवसे निष्कर्ष

लंदनकी परान्वेषण-परिषद् एवं अन्य देशोकी परान्वेषण सस्थाओने परलोकविद्यासम्बन्धी खोजे की हैं। इनसे यह मालूम हुआ है कि मरनेके अनन्तर भी मनुष्यका व्यक्तित्व बना रहता है और मरा व्यक्ति किसी अदृश्य लोकमे रहता है, जो हमारे संसारसे दूर या अलग नहीं है; किंतु निकटतम है। इन लोकोसे भी अदृश्य और सूक्ष्म लोक और प्राणी है। इन अनुभवोसे कम-से-कम इतना तो सिद्ध ही है कि हमारी अदृश्य चेतना अदृश्य शरीरमें रहती है और उसके लिये जगत् भी है जो हमारे लिये अदृश्य है। ईश्वरका पता उन्हे भी नहीं है; फिर भी अदृश्य जगत्, अदृश्य सृष्टि, अदृश्य व्यक्तित्व और अदृश्य वस्तुकी सत्ताका तो हमें प्रमाण मिलता ही है। दृश्य-अदृश्य सभीमें हमे सत्ता ही नहीं मिलती; बल्कि हमें बुद्धिपुरस्सर संगठन और संचालन

मिलता है, विवेकपूर्ण नियम मिलते हैं, पद-पदपर अत्यन्त ऊँची विवेकशीला परमशक्तिशालिनी बुद्धिमती चेतनाकी सत्ताका परिचय मिलता है। राईसे ब्रह्माण्डतक, परमाणुसे विश्वतक अत्यन्त स्थिररूपसे गणितके काँटेपर तुले बावन तोले पाव रत्तीतक ठीक-ठीक व्यापक नियमोका पालन और सचालन मिलता है। यह सृष्टिके बडे-से-बडे दिमागको नगण्य बना देता है और सर्वशक्तिमान् परमात्माका पता देता है। बुद्धिग्राह्यता इतनी ही है। इसीलिये ज्ञेयको 'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्' कहा है।

(४) उसकी सत्ता और दयामे विश्वास बढानेवाले स्वानुभव

(१) अनुभवोंका निष्कर्ष

अपने अनुभव कहनेमे बडा सकोच होता है और उसका विस्तार यहॉ इसलिये भी अभीष्ट नहीं है कि सिवा इसके कि पाठक मेरी सदसद्विवेकवती बुद्धि और कथनपर विश्वास कर ले और कोई प्रमाण नहीं है। वे यह मान लें कि मैं सत्य कहता हूँ, दम्भ नही करता, और अपने अनुभवोमे एक वैज्ञानिककी हेसियतसे मैंने धोखा नहीं खाया है, और मेरे निष्कर्ष ठीक ही होंगे, तो मुझे विस्तारकी आवश्यकता भी नहीं रहती। इसीलिये मैं अपने अनुभूत निष्कर्ष यहाँ दे देना चाहता हूँ।

(१) अदृश्य लोकोंकी, अदृश्य प्राणियोंकी और समस्त विश्वके उद्भव-स्थिति-सहारकर्त्ताकी सत्ता सत्य है। ईश्वर है। सगुण-उपासकोंको उनकी श्रद्धाके अनुसार उनके उपासित नामरूपसे अपना अनुभव करा देता है। उसके नाम और रूप सभी सत्य हैं।

(२) सृष्टि उसकी लीला है और वह अपनी सृष्टिमे स्वय सर्वत्र

अवतरित होकर भाँति-भाँतिके अभिनय करता रहता है।

(३) सब तरहकी वैध उपासनाओंसे वह प्राप्त है और यदि वैध उपासना सम्भव न हो तो वह केवल नामजपसे भी प्राप्य है।

(४) संसारके सभी आस्तिक अपने-अपने मार्गसे वैध उपासनाद्वारा उसे पाते हैं और संसारके सभी देशोंमें ही नहीं, विश्वके सभी देशोंमें वह अवतरित होकर लीला करता और भक्तोंका उद्धार करता रहता है। **'न मे भक्तः प्रणश्यति'** समस्त विश्वोंके लिये है। उसकी दया अखिल विश्वपर है, परंतु जो भजता है, उससे विशेष ममता है। जो जैसे भजता है, वैसे ही उसे भगवान् भी भजते हैं।

(२) अनुभवोंकी चर्चा

फिर भी मैं अपने कुछ अनुभव संक्षेपसे इस दृष्टिसे देना चाहता हूँ कि पाठकोंको यह मालूम हो जाय कि मुझे भगवान्‌की कृपाओंका कितना कृतज्ञ होना चाहिये और मैं वस्तुत. किस दरजेका कृतघ्न हूँ।

पल-पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिदयौ न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सियपीके॥

(१) तीन-चार वर्षकी अवस्थामें पडोसके सूने घरमें घुस गया, आग लगा दी और स्वयं उसमें जल मरता, परंतु रक्षा की गयी। घर जल गया।

(२) लडकपनमें भिन्न-भिन्न अवसरोंपर तीन बार गोमती नदीमें डूबा। तीनों बार रक्षा की गयी। तैरना इन घटनाओंके पीछे सीखा।

(३) युवावस्थामें तीन बार इक्का टूटा और लोगोंको चोट आयी। मेरी पूरी रक्षा की गयी। ये घटनाएँ तीन भिन्न-भिन्न अवसरोंकी हैं।

(४) युवावस्थामें एक बार जंगलमें राह भूल गया। रातभर भटकता रहा। रक्षा की गयी और ठीक राहपर लगाया गया। घटना

संवत् १९५६ की है।

(५) आषाढ़की सरयूमें चालीस मीलकी यात्रापर चले। आधी रातमें बड़ी भयानक आँधीमें बीच नदीकी अथाह जल-राशिमें ऊँचे भेड़ोंके बीच डगमगाती छोटी पतवारहीन डोंगीपर सात जने यात्री थे मुख्यतः उसमें मैं ही था, मेरी प्रेरणासे ही वे छः सहयात्री बने थे। रामनामके घोर निनादके साथ हम सभी डूबनेवाले थे, परंतु इस नामघोषके प्रतापसे बीचमें थाह मिल गयी। घुटनोंतक जल हो गया। असंख्य घड़ियालोंके बीच देरतक खड़े रहे। चाँदनी निकल आयी। दोनों किनारे नहीं दीखते थे, परंतु पास ही लगभग ३० गज लम्बा, दस गज चौड़ा टापू दीखा। उसपर शेष रात बितायी। रातभर घड़ियालोंके डरसे 'राम-राम' का घोर निनाद करते रहे। बीस गजपर घड़ियालोंका झुंड टापूपर लेटा था। सबकी रक्षा हुई। सबेरे किनारेपर गये। यह घटना संवत् १९७२ की है।

(६) मेरी एक लड़की, जो मौजूद है, तीन बरसकी अवस्थामें मर गयी थी। भगवत्कृपासे उसे पुनरुज्जीवन प्राप्त हुआ। यह घटना संवत् १९७७ की है।

(७) तुलसीजयन्तीके लिये बस्ती जानेको सामान बँधा था कि तीन बरसकी लड़की कमला खेलते-खेलते गिरी, साँस रुक गयी, धुकधुकी बंद हो गयी, तुरत ही प्रसाद और रामनामके प्रभावसे पुनरुज्जीवन हुआ। जब पुनरुज्जीवनका आरम्भ हो रहा था, उसी समय पड़ोसी डाक्टर अब्दुल करीमने आकर देखा तो कहा, 'अफसोस, यह तो मर रही है।' मैंने कहा—'नहीं। अब तो जीवित हो रही है, मर गयी थी।' वस्तुतः मरनेकी उलटी क्रियाको डाक्टरने स्वभावतः मरना समझा था। प्रभुने जिलाकर मेरी यात्रा निर्विघ्न कर दी। यह घटना

श्रावण शुक्ला ५ संवत् १९९० की है।

(३) असंख्य अपराधोंकी अपने-आप क्षमा

मेरे जीवनमे बहुत ही विचित्र घटनाएँ हुई है। एक बार पितृपक्षमे मुझे जो-जो अनुभव हुए, वे आशातीत थे और एक अत्यन्त अयोग्य अकिञ्चन किङ्करपर लोकातीत कृपाके परिचायक थे। उसी पक्षमे दीक्षा पायी। मेरी उपासनाका रूप, जो अनेक जन्मोसे चला आ रहा था, बतलाया गया, मुझे अभिमान था कि मैं मानसिक पूजा और उपासनाका अधिकारी हूँ, मुझे पता लगा कि अभी मूर्तिपूजाके मार्गसे मैं ऊपर नहीं उठा हूँ, मुझे वही करना चाहिये। इस कठिन मार्गसे मै विधिवत् लगाया गया। संवत् १९८२ के आश्विन शुक्ला एकादशीको भगवद्विग्रहोकी वेदविधिसे प्राणप्रतिष्ठापूर्वक स्थापना हुई। प्रतिष्ठाके समय संगमरमरकी मूर्तियाँ बड़े जोरसे काँपने लगीं। उनमे विशेष प्रकारका ओजस्, तेजस् आ गया। दीक्षाके बाद शिक्षा दी जाने लगी। वह आज भी समय-समयपर मिलती है। शङ्काओका निवारण होता रहता है। तबसे अबतक कृपाओकी अनवरत वर्षा होती आयी है। 'पल-पलके उपकार' वाली उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती रहती है। कितनी ऊँची अभिलाषाएँ पूर्ण की गयी हैं। उनका वर्णन करना असम्भव है। भगवान्‌ने ऐसे पतितको इतना कभी अपनाया है, मुझे तो विश्वास नहीं होता। मुझे इस बातका भारी गर्व है।

मूर्तिपूजा अत्यन्त कठिन प्रकारकी उपासना है। नित्यके विहित शौचाचारका पालन कहाँ हो सकता है? ठीक-ठीक सामग्री कब प्रस्तुत होती है? बेलपत्र कैसा हो, कितना हो, कौन फूल हो, कौन न हो, माला कैसे पहनायी जाय? कैसी मूर्तिसे पूजाके समय कैसा व्यवहार हो घंटा, शङ्ख, कलशादि पार्षदोंकी कैसे पूजा हो, इनका

स्थान कहाँ-कहाँ कब-कब है, किसे क्या गन्ध चाहिये, किसे क्या अक्षत चाहिये, धूप कैसा हो, दीप कैसा हो, कैसे अर्पण हो, बालभोग, राजभोगके क्या नियम हैं, स्नानादिकी क्या विधि है, आरती कैसे हो, आसन-शयनादि सबकी विधियाँ और नियम, चरणामृत और प्रसादके ग्रहणतकको विधियाँ और नियम सभी ऐसे बारीक और विस्तृत हैं कि पुजारीको अन्तमें यह प्रार्थना करनी आवश्यक नहीं बल्कि बिलकुल सत्य और ठीक ही है कि हमसे पूजा ठीक नहीं बनती है, जो कुछ अपराध हो, क्षमा किये जायँ।

मै तो पूजाकी विधि जानता ही न था। बतलाया भी गया तो बहुत आवश्यक अङ्ग। विस्तारके लिये पुस्तकें देखीं, तो अपने दोषोंका पता लगा, परतु देखा कि सब नियमोंको कण्ठाग्र कर लेनेपर भी नित्य भारी-भारी भूलें होती ही रहती हैं और कोई-न-कोई न्यूनता होती ही है। इतनेपर भी दोषोंको स्वीकार कर क्षमाप्रार्थनातक करना मैं भूल जाता था। निवेदन करनेपर मालूम हुआ कि 'दोषोंपर कहीं ध्यान दिया जाता है ? चुपचाप उसी मार्गसे चले चलो।' सच है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

इस अपरिमित दयाका भी कहीं वर्णन सम्भव है ? भगवान्‌की सत्ता तो मेरे लिये इतना अखण्ड सत्य है, जितनी कि मेरी अपनी सत्ता मेरे लिये नहीं हो सकती और भगवान्‌की दया तो मेरे लिये उतना ही अमिट तथ्य है, जितनी कि मेरी भारी अयोग्यता, जिसका हाल मेरे सिवा भगवान् ही जानते हैं।

—★—

रायबहादुर लाला श्रीसीतारामजी, बी० ए०

१—आप जानते है कि हमारे धर्ममे ईश्वर हमारी अपील तभी सुनता है, जब हममे प्रीति, प्रतीति और गति तीनो होती है, जो तुलसीदासजीने कृष्णगीतावलीमे लिखा है—

तुलसी निरखि प्रतीति प्रीति गति आरत-पाल कृपाल मुरारी ।
बसन बेष राखी बिसेष लखि बिरदावलि मूरति नर-नरी ॥

द्रौपदीजीकी साडीका बढ जाना कपोलकल्पित घटना मानने-वालोको हम क्या कहें, परतु आजकलका विज्ञान आत्मबल Will force) को बडी महिमा बताता है। यही बल है जिसके कारण एक मुट्ठीभर हड्डीका बूढा बडे-बडे शक्तिशालियोको शङ्काके चक्करमे डाल देता है। उसके पास न कोई अस्त्र है न शस्त्र, न धन है, न राज्य है, केवल यही एक आत्मबल अभिमानियोका गर्व चूर

जिन महाशयन कष्णगातावलाका नहीं पढा ह उनक लिय पद लिखा जाता ह—

कहा भया कपट जुआ जा हा हाग।
महाबार रनधार पाच पति क्या दहै माहि हान उधारा॥
राज समाज सभासद समरथ भापम द्रान धमधुरधारा।
अबला अनघ अनवसर अनुचित हात हरि करिह रखवारा॥
यों मन गुनत दुसासन दुरजन तमक्या तकि गहि दुहु कर मारा।
सकुच गात गोवति कमठी ज्यां हहरी हृदय बिकल भइ भारा॥
अपनेनिका अपना बिलाकि बल सकल आस बिस्वास बिसारा।
हाथ उठाय अनाथ नाथ सों पाहि पाहि प्रभु पाहि पुकारा॥
तुलसा निरखि प्रतीति प्रीति गति आरत पाल कृपाल मुरारा।
बसन बेष राखी बिसेप लखि बिरदावलि मूरति नर नारी॥

करनेमें समर्थ हो जाता है। किसीकी हिम्मत नहीं पडती कि एक ही बारमे उसका काम तमाम कर दे। यह आत्मबल ही सही, परतु इस आत्मबलका सचालक कौन है ?

मनुष्यका चित्त स्वभावसे अवलम्बन माँगता है। किसीको चोट लगती है तो वह 'बाप-रे-बाप' चिल्लाता है, मा बच्चेको पीटती है तब भी बच्चा 'मा ही-मा' पुकारता है। इसका क्या कारण है ? बापको मरे बहुत दिन हो गये। अब वह सहायता करने कैसे आयेगा ? परतु बचपनमे जब बाप जीता था, तब उसने बच्चेको कई बार बचाया था। वही बात बडे होनेपर भी बच्चेके चित्तमें गड-सी गयी है या यो कहिये कि वह स्वभावसे ही एक अदृश्य अवलम्बन ढूँढ रहा है। यूनानके प्रसिद्ध हकीम एपिकटिट्स (Epictetus) ने लिखा है कि अत्याचारी जिस रीतिसे प्राणहरण करता है, वह अत्यन्त सुगम है। कभी किसी अत्याचारीने किसीका गला छ महीनेमें नहीं काटा, परतु ज्वरग्रस्त होकर मरनेमें कभी-कभी बरसों लग जाते हैं। अत्याचारी अपने जीमें यह समझा करे कि हम प्रबल हैं, हमारा कोई क्या कर सकता है, परतु कितने अत्याचारी कुत्तोकी मौत मरे हैं। प्राण निकल जानेपर उनकी वह शेखी कहाँ गयी ? उनका बल किसने हर लिया ? जिन लोगोंने उनका अत्याचार अपनी आँखों देखा है, वे कहते हैं कि 'अच्छा हुआ, जो वह कुत्तोंकी मौत मरा।' औरगजेब धर्मान्ध था। उसे पूरा विश्वास था कि 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह इस्लामधर्मके अनुकूल है, मन्दिर तोडना, काफिरोंका वध करना परम धर्म है, इससे मुझको खुदावन्दताला बिहिश्तमें सबसे ऊँचा स्थान देगा।' परतु मरते समय उसकी मति किसने फेर दी और वह मरनेसे डर रहा है और कहता है—

हरचे बादबाद मा किश्ती दराब अन्दाखतेम्।

अर्थ—जो चाहे सो हो, हमने तो अपना बेडा पानीमे डाल दिया। उसके इस वाक्यपर विचार कीजिये। उसको प्रतीत होने लगा कि ऐसी प्रजाको सताना, जिनका केवल धर्म उससे भिन्न था, अच्छा काम न हुआ और उसकी बिहिश्तमें परमपद पानेकी आशा सदेहके आवर्त्तमे पड़ गयी। इसका क्या कारण हो सकता है ? वही झूठा अवलम्ब।

जिनका अवलम्ब सच्चा है, वे बडे सुखसे संसारको छोडते है, जैसा कि बालिके विषयमे गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

रामचरन दृढ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

इसके पहले बालिका वाक्य भी सारगर्भित है—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मै पापी अंतकाल गति तोरि॥

इसमे कृष्णगीतावलीकी 'गति' भी आ गयी है, जिससे यह ध्वनित है कि तुमको छोडकर मेरा और कहीं ठिकाना नही है और प्रीति तो दोहेके प्रथम चरणोमे है ही। इसी प्रीतिकी शुद्ध पराकाष्ठाको 'भक्ति' कहते हैं।

इस प्रश्नपर पूरा-पूरा विचार करनेसे यह लेख बहुत बढ़ जायगा। इससे एक ही बात और लिखी जाती है। फिजियालोजी (Physiology) मे मस्तिष्क तथा मेरुदण्डमे अनेक केन्द्र (Centres) देखे गये है, जैसे मस्तिष्कके एक भागमे बोलनेका केन्द्र है। उस भागके ऊपर खोपडीमे कहीं चोट लगी तो उस केन्द्रका काम बंद हो जाता है और मनुष्य बोल नहीं सकता, परंतु इसके आगे विज्ञान काम नहीं करता और वेदकी वही श्रुति सिद्ध होती है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अभी थोडे दिन हुए इग्लिस्तानके एक सुप्रसिद्ध अध्यात्म-विद्या (Spiritualism) के पण्डित सर आलिवर लाजने कहा था कि 'जीवन-विज्ञानमें अनेकों प्रसङ्ग ऐसे आते है, जिनमे बुद्धि काम नही करती और यही मानना पडता है कि इस जीवकी सचालन करनेवाली कोई शक्तिविशेष है, जिसका हम अनुमान ही कर सकते हैं।'

इन्हीं दो बातोसे अर्थात् मनुष्यका हृदय एक सच्चा अवलम्ब चाहता है और दूसरा यह कि विज्ञानकी इतनी उन्नति होनेपर भी अनेक बाते ऐसी है जो बिना एक अदृश्य सचालक शक्ति माने हुए समझमें नहीं आ सकती, हम ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास करते हैं।

२—इसका पहला उत्तर तो प्रश्न (१) के उत्तरके अन्तर्गत है अर्थात् मनुष्य, जिसका हृदय अवलम्बन माँगता है, निरालम्ब हो जायगा और उसका जीवन दु खमय होगा। हमने बहुत-से नास्तिकोंके चरित पढे हैं—जैसे डेविड ह्यूम (David Hume) जो बडे सज्जन और बडे उदार थे। बौद्धधर्मको भी लोग नास्तिक मानते हैं, परतु इसके धार्मिक और विनयसम्बन्धी सिद्धान्त बहुत बढे-चढे हैं। बौद्धधर्मकी एक पुस्तक 'बुद्धचर्या' की भूमिकामे लिखा हुआ है कि बुद्धदेवके उपदेश दो प्रकारके थे। एक साधारण धर्म और दर्शनके विषयमें और दूसरे भिक्षु-भिक्षुणियोंके नियम। पहलेको पालीमें 'धम्म' (धर्म) कहा गया है और दूसरेको विनय। इस धर्ममें तथा मीमासकोंमें कर्म प्रधान है, पर इसे कर्म कहो या नैयायिकोंके अनुसार कर्त्ता कहो अथवा वेदान्तियोंके मतसे ब्रह्म मानो, हमारी समझमें केवल नाम-मात्रका झगडा है। एक अक्षर-शक्ति माननी ही पडेगी, चाहे उसे किसी नामसे पुकारो। साधारण जनतामें इतना आत्मबल नहीं होता कि

डेविड ह्यूमकी भाँति अपना चरित्र शुद्ध रखे। अभी तो यह हे कि हमारे पापोको पुलिस या राजकर्मचारी नही देखते, परतु ईश्वर तो देखता है। मनुने मनुष्यके शरीरमे जो ईश्वरका एक प्रतिबिम्ब आत्मा है, उसको हमारे कर्मोंका साक्षी माना है। मनुस्मृतिमे न्यायाधीशका धर्म है कि गवाहको यह समझा दे कि झूठ मत बोलो। उनका एक वाक्य यह है—

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मन ।
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥

(८। ८४)

'आत्मा ही आत्माका साक्षी है, आत्मा ही आत्माकी गति है, ऐसा जानकर तुम मनुष्योके उत्तम साक्षी अपनी आत्माका अपमान (झूठ बोलकर) न करो।'

मृच्छकटिक-नाटकमे एक नीच दास यह कह रहा है कि चन्द्रमा और सूर्य साक्षी है, यह सब उसी सिद्धान्तको सूचित कर रहा है कि हमारे कर्मोका देखनेवाला एक अदृश्य पुरुष है, जिसकी शक्तिको यदि हम समझे तो हमे पापकी प्रवृत्तिसे रोकता है। ऐसी शक्तिमे विश्वास न होनेसे साधारण जनता स्वच्छन्द हो जायगी, जिससे प्रजाविप्लवकी सम्भावना है। यह हमारे जानमें बडी हानि है।

३—ईश्वर प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वर-सिद्धिके सारे प्रमाण उपमान (Analogy) ही हैं और कोई-कोई दार्शनिक उपमानको प्रमाण नहीं मानते। ऐसे उपमानका एक उदाहरण हम रोमन दार्शनिक एपिकटिट्सके वाक्यसे उद्धृत करते हैं—

हमलोग ससारके कामोंमें ऐसे ही फँसे रहते हैं, जैसे मेलेवाले मेलोंमें। मेलोंमें गाय-बैल बिकनेको आ रहे हैं। मेलेकी भीडका अधिकांश क्रय-विक्रयके लिये आया हुआ है। कुछ लोग ऐसे भी हैं,

जो केवल मेला देखने आये हैं और यह पूछते हैं कि मेला कैसे लगा और क्यो लगा, किसने लगाया और किस प्रयोजनसे लगाया ? इस ससारकी भी यही दशा है इसमे कुछ तो पशु हैं, जिन्हे केवल अपने चारेकी चिन्ता है। थोडे-से लोग यह जानना चाहते हैं कि ससार क्या है और इसका शासनकर्त्ता कौन है ?

प्रश्न—क्या इसका कोई शासनकर्ता नही है ?

उत्तर—बिना शासनकर्ता और निरीक्षकके किसी भी राज्य या कुलका प्रबन्ध एक दिन भी नहीं चल सकता और इतना बडा ससार केवल सयोग (Chance) से कैसे स्थिर रह सकता है ? जब शासनकर्ताका अस्तित्व सिद्ध हो गया, तब ये प्रश्न उठते हैं—

(१) इस शासनकर्ताके गुण क्या हैं ?

(२) उसके शासनकी रीति क्या हैं ?

(३) हमलोग जो उसके शासनमें रहते हैं, क्या हैं और किस प्रयोजनसे बनाये गये हैं ?

ऐसे विचार उन्हीं थोडे-से दर्शकोंके चित्तमें उठते हैं, जो इस मेलेका तत्त्व जाननेका प्रयत्न करते हैं और मेलेसे लौट जाते हैं, परतु और मेलेवाले ऐसे लोगोंपर हँसते हैं। पशुओंमें भी समझ होती तो वे भी उनपर हँसते, जिनको दाना-घास छोडकर और बातोंकी चिन्ता नहीं रहती है।

ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परतु सबका खण्डन हो सकता है। इसीसे साख्य-शास्त्रके आचार्य कपिलने कहा है—**'ईश्वरासिद्धेः'**, 'ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता।' यानी तर्क-बुद्धिसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती।

ससारमें साधारणत और भारतवर्षमें विशेष करके अनेक सत हो

गये हैं। इसके एक उदाहरण महात्मा सूरकिशोर हैं। सूरकिशोरजी मिथिलेश-नन्दिनीजीको अपनी बेटी मानकर भावना करते थे। अयोध्या आते थे तो सरयूके उत्तर-तटपर ठहरते थे, क्योंकि जामाताके नगरमें जाना निषिद्ध है। उनके पास सीताजीकी बडी सुन्दर मूर्ति थी, जिसका वे नित्य शृङ्गार और पूजा करते थे। एक दिन फूलोंके बडे सुन्दर गहने बनाकर आपने मूर्तिका शृङ्गार किया और ध्यानमग्न हो गये। भावना करते-करते कहने लगे कि 'हमने तो अपनी बेटी महाराज दशरथके घर यह समझकर ब्याही थी कि वे धनाढ्य हैं, पुत्रीको सोनेके गहने पहनायेगे।' इसी भावनामें वे अत्यन्त व्याकुल हो गये और रोने लगे। श्रीजी भावनामे उनको दर्शन देकर बोलीं कि 'बाबा, सोच न करो, यहाँ गहनोकी कमी नहीं है, गरमीके कारण सोनेके गहने उतार दिये और फूलके गहने पहन लिये हैं।'

क्या हम इनको झूठा, मक्कार और दगाबाज समझे ? या पागल माने ? परतु और बातोंमे सतोका पागलपन देख नहीं पडता। इनके उपदेश समाजकी स्थितिके लिये अत्यन्त लाभकारी होते हैं। हजारो इनको पूजते हैं। इनमे कितने पढे-लिखे विद्वान् भी होते हैं। हम यह माननेको तैयार है कि धर्मके नामसे बडे-बडे दम्भ और अत्याचार हुए तथा होते हैं, परतु इसमे धर्मका क्या दोष है ? दो-चार बने हुए सत स्वार्थी, लोभी, लम्पट निकल गये तो इससे सारा सत-समाज कैसे कलकित हो सकता है ? धर्म वही है, जिससे उपदेश ग्रहण करनेवाले-के चित्तको शान्ति हो, दु ख सहन करनेकी क्षमता बढ जाय और ऐसे उपदेश सतोसे ही प्राप्त हुए है। हम उनको मक्कार कैसे कह सकते हैं। ईश्वरके अस्तित्वका यह बहुत पुष्ट प्रमाण नहीं है, परतु हमारे मतमे यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है।

फारसीमे एक पद्य प्रसिद्ध है—

मर्दाने खुदा खुदा न बाशन्द।
लेकिन बखुदा जुदा न बाशन्द॥

अर्थ—

हरिजन यदपि नहीं हरि अहहीं। हरिसे कबहुँ बिलग नहिं रहहीं॥

परतु भक्त और भगवन्त दोनोंकी महिमा उसीकी समझमे आ सकती है, जिसमें श्रद्धा और भक्ति दोनो हों। मैं अयोध्यावासी हूँ। मेरे माता-पिता दोनों वैष्णव थे और अयोध्याके प्रसिद्ध महात्मा बाबा रघुनाथदासजीके शरणागत थे। ये महापुरुष पहले बादशाही सेनामें राबर्ट (Robert) साहबकी पलटनके सिपाही थे। मैं इनका बहुत मुँहलगा था। मैंने इनसे पूछा—'बाबाजी! मैंने सुना है कि एक बार आपके बदले भगवान्‌ने पहरा दिया था।' बाबाजी कहने लगे—'बच्चे! हम क्या जानें, किसीने हमारे बदले पहरा दे दिया होगा। हम तो दिनभर अपनी बारकमे बैठे 'सीताराम, सीताराम' जपते थे। कुछ भक्त सिपाही भी हमारे पास आकर बैठ जाते थे और घटों रामधुन होती थी। एक बार हमने अपनी पलटनके कप्तान साहबके पास जाकर सलाम किया और उनसे कहा कि 'हम आपकी नौकरी न करेंगे।' कप्तान बडा सज्जन था, कहने लगा कि 'रघुनाथसिह! हम तुमको जानते हैं, तुम बडे भक्त हो। तुम जहाँ भी चाहो रहो, तुम्हारी तनख्वाह तुम्हारे पास भेजवा दी जायगी।' बाबाजीने उत्तर दिया—**'मनुष्य मजूरी देते है कैसे राखै राम।'** इसका अर्थ यह है कि 'हम आपके नौकर हैं, काम भी पूरा नहीं करते, तब भी आप हमको खानेको देते हैं। जब हम भगवान्‌की सेवा करेंगे तब वे हमको कैसे भूखा रख सकते हैं?' इतना कहकर बाबाजी जगन्नाथपुरीको चले गये। वहाँसे लौटनेपर कुछ दिन

चित्रकूट रहे। फिर अयोध्यामें वासुदेव घाटपर मौनीबाबाके शिष्य हुए और फिर यावज्जीवन श्रीअयोध्यासे बाहर नहीं गये। मेरे माता-पिताकी बाबाजीके चरणोंमें बड़ी भक्ति थी। मेरा नाम भी उन्हींका रखा हुआ है। मेरे जितने संस्कार हुए, सब बाबाजीकी आज्ञासे किये गये। जब मुण्डनका समय आया, तब पिताजीने बाबासे निवेदन किया कि 'बच्चेका मुण्डन करना चाहिये।' बाबाजी बोले—'कल ले आओ, नाई भी साथ लेते आना।' घर लौटकर जब मेरी मातासे कहा, तब माता कहने लगी कि साइत भी पूछ ली है? पिताजीने कहा कि 'बाबाजीकी आज्ञासे बढ़कर साइत नहीं हो सकती।'

दूसरे दिन हमलोग गनेशी नाईको साथ लेकर छावनीमें पहुँचे। बाबाजी उस समय सरयू-स्नान कर रहे थे। पिताजीको दण्डवत् करते देखकर अपने शिष्यसे बोले कि वह कटोरी उठा लाओ जिसमें हम शालग्राम नहलाते हैं। शिष्यने कटोरी लाकर नाईको दे दी और उसने उसमें सरयू-जल भर लिया। बाबाजीने कहा—'अच्छा मूड़ दो।' नाई पिताजीको देखने लगा और पिताजीने उसका अभिप्राय समझकर कटोरीमें कुछ रुपये डाल दिये, मुण्डन हो गया और हमलोग बाबाजीको दण्डवत्-प्रणाम करके घर लौट आये। नाई इसके पीछे बहुत दिनोंतक जिया और सदा यही कहता रहा कि 'भइया, जबसे ई कटोरा मोरे घर आवा है, मोरे खायका नहीं घटा।'

इसके थोड़े ही दिन पीछे पाँचवें वर्षमें विद्यारम्भ निश्चय किया गया। हमलोग कायस्थ हैं, हमारे यहाँ मौलवी बुलाये जाते थे और फातिहा पढ़कर 'बिस्मिल्लाह' कराया जाता था, परंतु पिताजीकी भक्ति उन्हें फिर बाबाजीके चरणोंमें खींच ले गयी और बाबाजीकी आज्ञासे पाटी-बोरका लेकर हमलोग छावनी पहुँचे। बाबाजीने बोरकेमें

सरयूजीका कीचड घोलवाया और कसेहरी (एक प्रकारकी कच्ची किलक) मँगवाकर उसकी लेखनी बनायी गयी। फिर महात्माजीने मुझे अपने पास बिठा लिया और पाटीके ऊपर विनयपत्रिकाका एक पद लिखा। बाबाजी बोलते जाते थे और मैं दोहराता जाता था। पद समाप्त होनेपर वही पाटी, बोरका और कलम मुझे दे दिये गये और मुझसे कहा गया कि इसी लेखनीसे पाटीपर एक रेखा खींच दो। बाबाजीका पकडाया हुआ कलम सत्तर बरस हो गये, अबतक मेरे हाथसे नहीं छूटा।

जब स्कूलमें नाम लिखा गया, तब जब-जब परीक्षा होती थी बाबाजीसे आज्ञा ली जाती थी। पाँच बरस स्कूलकी और चार बरस कालेजकी पढाईमें कभी बिरला ही अवसर हुआ है जब दर्जेमें पहलेसे दूसरा नम्बर आया हो। अवधके स्कूलोंको मिलाकर जब परीक्षा हुई तब अवधमे सबसे ऊँचा नम्बर रहा। जब अवध और पश्चिमोत्तर देशके कालेजोंको मिलाकर इम्तिहान लिया गया, तब उसमें भी प्रथम ही नम्बर रहा और जब बी० ए० की परीक्षा दी गयी, तब उस समय अकेला कलकत्ता-विश्वविद्यालय था, जिसमें लका (कोलम्बो), रगून, पजाब, मध्यप्रान्त और पश्चिमोत्तर देशके छात्र सम्मिलित होते थे, उसमें भी सबसे ऊँचा नम्बर मिला, जो इस प्रान्तके रहनेवालेको न पहले कभी मिला था और न उसके पीछे कभी मिला। कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें अबतक मेरी प्रतिष्ठा है और वहाँके सुप्रसिद्ध वाइसचान्सलर सर आशुतोष मुखोपाध्याय महोदय मुझे One of my most distinguished fellow graduates for whom I have the highest respect लिखा करते थे।

तीसरी घटना इसीके कुछ दिन पीछेकी है। जून १८७९ में मेरा विवाह हुआ। जब बारात समधीके द्वारपर पहुँची और पालकी उतारकर

रखी गयी, उन्हीं बाबाजीके दो चेले फूलकी एक माला और दो बड़े-बड़े आम लिये हुए पिताजीके पास पहुँचे और बोले कि 'बाबाजीने बच्चेके लिये यह माला और दो आम भेजे हैं।' पिताजी उनको लेकर मेरे पास आये। माला मेरे गलेमे डाल दी गयी और दोनो आम जैसे ही वैरागी मेरे हाथोंपर रखने लगा, पिताजी बोल उठे कि 'बाबाजीने तुझे इस विवाहसे दो पुत्र दिये।' दोनो पुत्रोंमें ज्येष्ठ इस समय 'आबकारी कमिश्नरका परसनल असिस्टेंट है और-उसका छोटा भाई रजिस्ट्रार डिपार्टमेंटल इक्जामिनेशन्स है। इसके उपरान्त उनकी माताने त्रिवेणी-वास लिया।

मुझे भी वैष्णवी शिक्षाका प्रभाव पद-पदपर अनुभूत हुआ है। संसार काँटोका वन है। बड़े-बड़े संकट झेलने पडे हैं, परंतु इस शिक्षाने कवचका काम किया है। छोटे मुँह बडी बात है; परंतु अनेक अवसरोपर ऐसा अनुभव हुआ है कि धनुष-बाण लिये हुए सरकार मेरे पीछे. खड़े हैं और कहते हैं कि 'सावधान, जबतक तू धर्मपथपर चलेगा, तेरी रक्षा की जायगी और विचलित होगा तो तू भी मार खा जायगा।'

इस पचहत्तर वर्षके जीवनमें अनेक घटनाएँ ऐसी हुई हैं जिनसे बचनेके लिये ईशवरको धन्यवाद दिया गया है। साहित्यक्षेत्रमे ही एक महाशयने मेरा अपमान करनेमे कोई कसर नही रखी, परतु मैंने कभी उनकी और उनके साथियोकी परवा न की। मेरे मित्रो और सहायकोकी कमी नहीं थी, परंतु सबको रोक दिया और यही कहता रहा कि जो व्यर्थ द्वेष या ईर्षाके वश मुझपर वार कर रहा है, उसके प्रत्युत्तरमें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि ईर्षा एक ऐसी अग्नि है, जिसे मनुष्य आप ही उत्पन्न करता और आप ही उसमे भस्म होता है। ईश्वरकी दयासे मेरी

हानिको कौन कहे, लगातार उन्नति ही होती गयी और मुझे इस बातका सतोष है कि मैं कुछ साहित्यजीवियोंकी सहायता कर रहा हूँ। इसको मैं ईश्वरकी दया न कहूँ तो क्या कहूँ ?

एक घटना मैं और लिखना चाहता हूँ। मुरादाबादमें जब मैं डिप्टी कलक्टर था, तब एक मण्डली ऐसी बनी हुई थी जो कहती थी कि हमसे मिलकर रहो, जितनी चाहो उतनी रिश्वत लो। उस मण्डलीमे नित्य रंडियोका जल्सा होता था। यह भी एक प्रलोभन था, परतु मैंने अपने कर्तव्यके विचारसे उस मण्डलीमें सम्मिलित होना स्वीकार न किया। एक दिन २० वीं तारीखको सूर्य अस्त होने लगा जब मैं कचहरीसे उठा। विक्टोरिया फिटनकी सवारी थी। साईसने कहा कि 'टप' (Hood) गिरा दिया जाय। मैंने कहा—'नहीं, देर हो गयी है, घर चलो।' जब मैं शहरमें पहुँचा, तब तहसीलके फाटकके सामने एक दुष्टने एक लाठी चलायी। लाठीका वार टपपर पडा और उसकी उछलती चोट मेरी बायीं कनपटीपर लगी। इसके कारण वहाँ सूजन हो गयी। टप न उठा होता तो खोपडी चूर हो गयी होती। मेरा गूजर चपरासी कोचबक्सपरसे कूद पडा और उस दुष्टको पकडकर कोतवाली ले गया। दूसरे दिन ज्वाइट मजिस्ट्रेटने उसे आठ महीनेका कारावास दिया। मैं जानता था कि उसने यह काम किसकी प्रेरणासे किया है, परतु ईश्वरको धन्यवाद देकर चुप रहा। इसे ईश्वरकी दया न कहूँ तो क्या कहूँ ?

आपने अपनी आँखों देखा है कि मैंने अपने मकानमें एक कमरा रामायण-मन्दिर बना रखा है। उसमें अनेक प्रकारके रामायण-ग्रन्थ और रामचरित-सम्बन्धी चित्र हैं। मैं उसीमें रहता हूँ। चौकीके सामने श्रीराम-जानकीका एक सुन्दर चित्र लगा हुआ है। उसके दर्शनसे लोचन तृप्त रहते हैं।

══★══

भक्तवर श्रीकृष्णप्रेमजी

१—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

'ईश्वर' शब्दसे जो कुछ अभिप्राय ग्रहण किया जाता हो, उसीपर मानने-न-माननेका प्रश्न निर्भर करता है। सामान्यतः इस शब्दसे किसी-न-किसीकी ईश्वरसम्बन्धी भावना या कल्पना ही सूचित होती है। कुछ लोगोंकी भावना यह होती है कि ईश्वर स्वर्गमें राज्य करनेवाला कोई राजा है, कुछ यह समझते हैं कि वह स्वर्गस्थ पिता है, कुछके विचारमे वह स्वर्गस्थ स्वामी है और कुछ यह मानते हैं कि वह न्यायाधीश है। ये सब केवल मानसिक भावनाएँ या कल्पनाएँ मात्र हैं और कोई कारण नहीं है कि हम इनमेसे किसी-न-किसी एक भावनाको, अपनी इच्छा न हो तो भी मान ही ले।

परंतु यदि इस शब्दका अभिप्राय 'परम तत्त्व' से हो, तब तो यह बात स्पष्ट ही है कि जबतक कोई मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तविक सतत्त्व क्या है, तबतक वह सबसे अधिक महत्त्वकी बातको ही नहीं जानता।

२—ईश्वरको न माननेसे हानि क्या है ?

इस प्रश्नका उत्तर भी माननेके (विश्वासके) स्वरूपपर ही निर्भर करता है। किसी भी वस्तुके विषयमें गलत विश्वासका न होना, इसमे कुछ भी हानि नहीं है और सही विश्वासका होना भी उसी हदतक लाभकारी है कि हमें उससे ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञानकी ऐसी बात है कि मैं अत्यन्त दृढ़तापूर्वक यह कहूँगा कि परम तत्त्वके ज्ञानके बिना मनुष्यको

न सुख मिल सकता है, न शान्ति ही। वह वासनाका ही दास बना रहेगा और आशा तथा भयका शिकार होगा। अन्तमे मर जायगा। यह बात अक्षरश सत्य है कि जो परम तत्त्वको जानता है, उसके सिवा और किसीको अमृतत्वलाभ नहीं हो सकता।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय।

यही यथार्थमे सत्य है, इस बातको न माननेकी जिसकी हिम्मत हो, वह न माने।

३—ईश्वरके होनेमें आप कौन-कौन-सी युक्तियाँ देते हैं?

में युक्तियोकी परवा नहीं करता, ज्ञानको पूजता हूँ। इस विषयमें जो-जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनकी छानबीनकर मैंने यह देख लिया कि अन्तमे वे बेकार हो जाती हैं। ईश्वरकी सत्ताका एकमात्र प्रमाण बस वही है, जो आपकी अपनी सत्ताका है अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभूति। ईश्वरके होने-न-होनेके विषयमे तर्क करनेमे बहुत अधिक समय जो व्यतीत किया जाता है सो ठीक नही। इससे कहीं अच्छा यह है कि तर्क करना बिलकुल छोड दिया जाय और यह पता लगानेका उद्योग आरम्भ किया जाय कि उस परम तत्त्वका वास्तविक स्वरूप क्या है?

यदि कोई कहे कि हमको तो यह भी निश्चय नही है कि 'परम तत्त्व' भी कोई चीज है तो में यह कहूँगा कि 'परम' शब्दको छोडिये, किसी दूसरे शब्दका प्रयोग कीजिये जो आपको जँचे। आप चाहें तो उसे 'मूल' कह सकते हैं या 'आधारभूत' शब्दका प्रयोग कर सकते हैं, पर यह तो स्पष्ट है कि कोई-न-कोई तत्त्व तो मानना ही होगा। पहले यह पता लगाइये कि वह तत्त्व क्या है और फिर यह प्रश्न उठाइये कि उस तत्त्वको ईश्वर कहा जाय या और कुछ कहा जाय, पर जिन

लोगोंका मत आपके मतसे भिन्न हो, उनके साथ उदारताका ही व्यवहार करे, यह जानकर कि इस विषयमे ऋषियोका भी एकमत नहीं है और फिर अन्तमें, कोई भी शब्द उसका वर्णन करनेमे पूर्ण समर्थ नहीं है जो सब शब्दोके परे है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

४—क्या आप अपने जीवनकी कोई ऐसी घटना बता सकते हैं जिससे ईश्वरकी सत्ता और दयापर हमलोगोका विश्वास बढे ?

आपके हृदयमें जो अनुभव होता है वही एकमात्र अनुभव है, जो जीवनमें काम देगा। बाहरके जितने अनुभव हैं, वे चाहे कितने भी असाधारण या आश्चर्यजनक हो, कर्मके परिणामपमात्र है, उनसे इसके सिवा और कुछ भी सिद्ध नहीं होता कि जितने कार्य होते हैं, वे सब पूर्वतन कारणोसे निकल पडते हैं अथवा इसी बातको आप दूसरे ढगसे यों कह सकते है कि आपके या किसीके भी जीवनमे जो कोई अनुभव हुआ हो, उसकी पूरी जॉच करनेसे नारायण वासुदेवकी सत्ता प्रकट होगी, क्योकि वही सब अनुभवोका मूल है और उसके बिना कोई अनुभव हो ही नहीं सकता।

दयाकी बातके विषयमें मुझे केवल एक ही बात कहनी है। उनकी दया सूर्यप्रकाशके समान सबके लिये है, किसी खास व्यक्ति या चुने हुए लोगोके लिये नहीं। उनकी दया किसी राजा या सम्राट्की-सी नहीं होती।

—★—

श्रीबसन्तकुमार चटर्जी, एम्० ए०

१—हम भगवान्मे विश्वास क्यों करें ?

भगवान्मे विश्वास रखनेसे जीवनमे एक अपूर्व मिठास आ जाती है। भगवान् है, वह सर्वशक्तिमान् है, न्यायशील है, दयामय है, वह हमारी पुकार सुनता है और हमें समस्त दुःख-संतापसे उबार सकता है, यह विश्वासमात्र ही कितना दिव्य है। वह सदा सदैव हमारे साथ है; परंतु हमारे मनपर पापोंका इतना घना आवरण पड़ा हुआ है कि हम उसे देख नहीं पाते। पापोका यह पर्दा ही बाधक हो रहा है। कितना भी घना यह पर्दा क्यों न हो 'वह' चाहे तो एक क्षणमें इसे टूक-टूक कर सकता है। हाँ, इसमें शर्त एक यही है कि उसे ही, केवल उसे ही हम प्राणपणसे चाहें, संसारके समस्त सुख-विलासकी अपेक्षा भगवान्को ही हृदयसे चाहें, उस परम दयामय, परम प्रेममय प्रभुमें विश्वास जमते ही बीचकी दूरी क्षण-क्षण मिटती जाती है और हम उसके अधिकाधिक समीप आते जाते हैं। ऐसे प्रभुका दास होना स्वतन्त्रताकी पराकाष्ठा है, क्योंकि उस अवस्थामें हम इन्द्रियोंकी दासता, जगत्के प्रपञ्चोंकी दासतासे सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं। भगवान्में विश्वास होते ही हम उस संत-मण्डलीमें पहुँच जाते हैं जिसमें व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, ईसा, मुहम्मद, शङ्कराचार्य, रामानुज, चैतन्य, सूर, तुलसी, रामकृष्ण, तैलङ्ग स्वामी आदि संत उपस्थित हैं। भगवान्में विश्वास उत्पन्न होते ही जीवनमें एक अनुपम रसका संचार हो जाता है और जो जीवन पहले व्यर्थ तथा निस्सार

प्रतीत होता था, वही अब एक-एक क्षण परम आनन्दका निर्झर हो जाता है। अब आनेवाले भय और विपदाओंकी आशङ्का नहीं रहती—ऐसा मालूम पड़ता है मानो समस्त भूत-वर्तमान-भविष्यत् आनन्दका एक अखण्ड अजस्र प्रवाह है; दुःख, विषाद, संताप आदि-जैसी वस्तु रह नहीं जाती।

सभी धर्मोंके शास्त्र डंकेकी चोट कह रहे हैं कि भगवान् है, वह हमें समस्त दुःख-दारिद्रयसे छुड़ा सकता है और यदि हम साधनाके मार्गसे चलें तो अवश्य ही उसे पा सकते हैं। युग-युगसे संत-महात्मा अत्यन्त स्पष्ट वाणीमे यह कहते आ रहे हैं कि साधनाके द्वारा हमने भगवान्को पाया। आज भी हम ऐसे संत-महात्माओंको पा सकते हैं, यदि हममें वास्तविक लगन हो, सच्ची स्पृहा हो। अतएव हमें भगवान्मे विश्वास करना चाहिये और उन्हे पानेकी समुचित साधना करनी चाहिये।

२—भगवान्को न माननेमें क्या हानि है?

भगवान्को न माननेपर यह जीवन दूभर हो जाय, इसमें रह ही क्या जाय? तब तो हम चारों ओर बुरी तरह दुःखोंसे ही घिर जायँ और बाहर निकलनेका कहीं कोई रास्ता ही न रह जाय। इस संसारमे सर्वत्र दुःख, व्याधि, जरा, मृत्युका जाल फैला हुआ है और इतने अगणित हैं ये कि इनकी गिनती हो नहीं सकती। कहाँतक गिनाया जाय? इस संसारमें बाह्यदृष्टिसे जो व्यक्ति सुखी और सफल समझा जाता है, वह बेचारा भी तो जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख-दोषका शिकार है ही। ऐसी विवशताकी हालतमे इस दुःख-जालसे निकलनेके लिये भगवान्में विश्वासके अतिरिक्त और साधन है ही कहाँ?

माना आप बहुत उदार है, दानी हैं; परंतु यदि आपकी इस उदारता

और दानशीलताका आधार भगवान् नहीं है तो सच मानिये आपका यह सारा किया-कराया व्यर्थ है, आत्मप्रवञ्चना है, क्योंकि यदि आप इन समस्त शुभ कर्मोंके आधार, मूल प्रेरकको नहीं पहचानते तो आप एक-न-एक दिन निराशाकी चपेटमें आ ही जायँगे। आप तब सोचेंगे कि आप व्यर्थमे समुद्र उलीचनेकी-सी चेष्टा कर रहे थे। कितना महान् और व्यापक है जगत्का दु ख तथा अभाव, कितनी कम और नगण्य है हमारी सहायता। ऐसा सोचते ही आप हताश होकर अपना सिर पीटने लगेंगे। परतु जो भगवान्मे विश्वास रखता है, वह ऐसी स्थितिमें विचलित क्यों होगा ? वह जानता है और अच्छी तरह जानता है कि यह सारा पसारा प्रभुका लीलाविलास है। सुखमें, दु खमें, सृष्टिमें, प्रलयमें यह लीलामय हरि अपनी नित्य आनन्दमयी, मङ्गलमयी लीला कर रहा है। हमारा यह धर्म है कि हमसे जो बने, जितना बने सेवा कर दें और बाकीके लिये परेशान न हों, उद्विग्न न हों। हमारी बिसात ही क्या है कि दुनियाका दु ख दूर कर सकें ? यदि हमारी दृष्टि प्राञ्जल है, यदि दु ख-सतापके कुहरेको चीरकर हमारी आँखें 'उस पार' देख सकती हैं तो हम यह अनुभव करेगे कि भगवान्ने हमें जो दु खकी सौगात भेजी है उसमें भी उस परम प्रेमीकी अपार करुणा ही है। दु खका दान देकर प्रभु हमें अपनी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट करना चाहता है, हमें विशेष रूपसे अपनाना चाहता है। यह है उसका गुप्त सकेत, एक छिपा हुआ इशारा, जिसे न समझकर दु खमें हम घुलने लगते हैं और उसकी तरफसे मन मैला कर बैठते हैं।

बोलशेविकोंने ससारका दु ख मिटानेकी बड़ी-बड़ी कोशिशें कीं, कुछ भी उठा नहीं रखा, परतु मूलमें ही भूल थी और परिणाम यह हुआ कि उनकी सारी कोशिशें आज नृशसता और अनाचार-व्यभिचारके

गर्तमें जा गिरी हैं। इसका कारण ? कारण यह कि उनका भगवान्में विश्वास नहीं है और उनकी सारी उदारता तथा सदाशयता केवल बाहरी समीकरणमें समाप्त हो गयी।

भगवान्में अविश्वासके माने हैं आध्यात्मिक आत्महत्या।

३—भगवान् हैं—इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण है?

प्रमाण? प्रमाण और क्या दूँ? सबसे बड़ा और विश्वसनीय प्रमाण तो यह है कि व्यास और वाल्मीकि, ईसा और मुहम्मद, शङ्कराचार्य और रामानुज, चैतन्य और रामकृष्ण-जैसे महात्मा यह कह रहे हैं कि भगवान् हैं और उन्होंने उसे पाया है। वे कदापि झूठ बोल नहीं सकते। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी धारणाएँ निर्मूल अथवा असत्य थीं; क्योंकि बौद्धिक दृष्टिसे भी वे अपने समयके शिरोमणि थे और आज भी हम उसी रूपमें उनका स्मरण करते हैं।

अनादिकालसे ही वेदोंके स्वाध्याय और कण्ठाग्र करनेकी प्रणाली चली आ रही है। कई लोगोंके जीवनका एकमात्र यही उद्देश्य है। आरम्भमें वेदके मन्त्रोंका जिन ऋषियोंने दर्शन किया, पाया; उन्होंने मन्त्रोंको रचा हो ऐसी बात नहीं। मन्त्रोंका उन्हें दर्शन हुआ, जैसे प्रातःकाल सूर्यका हमें दर्शन होता है। यह मन्त्र-दर्शन दीर्घकालकी कठोर तपश्चर्या तथा आत्मानुसन्धानके अनन्तर होता था। फिर ऐसा कहना या सोचना-समझना कि सब-के-सब ये ऋषि-महर्षि पाखण्डी थे, वञ्चक थे, हमारी अज्ञता नहीं तो और क्या है? व्यास और वाल्मीकिकी तरह असंख्य ऋषि-मुनियोंका यह विश्वास है कि वेदोंकी रचना किसी पुरुषने नहीं की, वे सर्वथा अपौरुषेय हैं। वेद भगवान्‌की वाणी है।

वेद यदि किसी मनुष्यके द्वारा लिखे या रचे गये होते तो यह माना जा सकता था कि उसमें भूलें हैं, त्रुटियाँ हैं; क्योंकि मनुष्यकी

कोई भी कृति सर्वथा निर्दोष नहीं होती; परंतु वेद मानवीय कृति है नहीं। अतएव वेदकी वाणी दिव्य एवं निर्भ्रान्त है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि प्राचीन कालके अनेकों प्रकाण्ड पण्डितोंने वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अनुशीलन करके उसमे मिलनेवाली परस्परविरोधी बातोंका सम्यक् प्रकारसे सामञ्जस्य बैठाया है, समन्वय किया है। यूरोपके चूडान्त दिग्गज विद्वान् भी वेदोंकी महामहिमाके कायल हैं।

ये वेद स्थल-स्थलपर भगवान्‌की सत्ता और महिमाके गीत गाते हैं और चूँकि वेद निर्भ्रान्त हैं, इसलिये यह मानना ही चाहिये कि भगवान् हैं।

—★—

श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी

(१) जिन पाठकोंको किसी सच्चे योगी या महात्माके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा उन्हें अवश्य कुछ ऐसे अनुभव हुए होंगे, जो चमत्कार-से प्रतीत होते हैं। चमत्कार सामान्यतः ऐसी घटनाको कहते हैं, जो प्राकृतिक नियमोंसे घटित नहीं मालूम होती। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि चमत्कार कोई चीज हो नहीं है। कारण, 'नियमके परे कुछ है ही नहीं।' जिन नियमोंसे यह विश्वब्रह्माण्ड, यह जगत् तथा प्रत्येक व्यक्तिकी गति नियन्त्रित होती है वे नियम बहुत ही स्पष्ट, सुनिश्चित और विवक्षित होते हैं। अपने अज्ञानके कारण हम उन नियमोंको नहीं देख पाते। जिनके द्वारा ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं कि जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं। हमारा आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान केवल, अत्यन्त अपूर्ण और प्रसङ्ग-विशेषमें अस्वाभाविक ही नहीं है, बल्कि बहुत ही कट्टर और अनुदार भी है। इन दोषोंके कारण मनुष्य श्रद्धा और विश्वासका प्रयोग करके निष्पक्ष भावसे उन घटनाओंका अन्वेषण करनेमें प्रवृत्त ही नहीं होता, जिन घटनाओंको समझना विज्ञानसे नहीं बन पड़ता। यह स्वतःसिद्ध तथ्य है कि प्रकृतिका प्रत्येक कार्य किसी-न-किसी खास नियमसे ही होता है। आधुनिक विज्ञान चाहे जितनी डींग हाँके, पर उसमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह घासकी एक पत्ती भी उत्पन्न कर सके। इस सम्पूर्ण विश्वमें सर्वत्र सब कार्य नियमसे ही चल रहा है। लोग कह सकते हैं कि यह नियम जो कुछ है, जड प्रकृतिका है और जड प्रकृति एक लीकपर चली जा रही है; पर

फिर भी तो इस प्रश्नका कोई सतोषजनक उत्तर नहीं मिलता। किसने पहले-पहल जड प्रकृतिके लिये यह लौक बनायी या यह विश्वव्यापक नियम चलाया। यह मानना ही पडता है कि जड प्रकृतिके पीछे कोई चेतन सत्ता अवश्य है और यह चेतन शक्ति केवल सर्वव्यापक और सर्वज्ञ ही नही अपितु जगत्में स्थित प्रत्येक व्यक्तिके प्रत्येक कर्ममे करुणा और प्रयोजनीयतासे भरपूर हे। इस शक्तिकी सत्तापर विश्वास होनेसे फिर मनुष्य जन्मान्तरवाद और कर्मवादपर विश्वास करने ही लगता है। कर्मके जटिल और सूक्ष्म नियमके द्वारा ही हम इस बातको जानते हैं कि आपातत एक-सी ही अवस्थामें उत्पन्न हुए मनुष्योके जीवनोंमे परस्पर इतना अन्तर क्यो है। हमलोगोंमें जिनके आँखें हैं अर्थात् जो सत्तत्त्वके सच्चे जिज्ञासु हैं, वे इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि निश्चय ही कोई ईश्वर है, जो हमारे इस जगत्का नियन्ता है।

यह बात वैज्ञानिक दृष्टिसे कही गयी। ईश्वरकी सत्तापर विश्वास करानेवाले और भी कारण हें। हमलोगोंमेंसे बहुतोंके जीवनमे ऐसी घटनाएँ घटी होंगी जिन्हें हम दैवी कहते हैं। इन घटनाओंसे प्राय ही उस शक्तिकी महती करुणा प्रकट होती है कि जो चराचर प्राणियोंकी नियन्तृ-शक्ति है। ईश्वरको चाहे कोई किसी भी रूपमें देखे, उससे ईश्वरकी दयामें कोई अन्तर नहीं पडता, उसकी करुणा सर्वत्र एक-सी ही रहती है। कुछ लोग कह सकते हें कि दैवी घटनाएँ और उनसे प्रकट होनेवाली करुणा अपनी ही वलवती शक्तिका फल है, और कुछ भी नहीं, पर फिर यह भी तो बतलाना होगा कि यह शक्ति आयी कहाँसे। अर्थात् अन्तमें इसी सिद्धान्तपर आना पड़ेगा कि यदि ये घटनाएँ आपेक्षिक न मानकर स्वसकलोद्भूत ही मानी जायें तो भी यह सकलशक्ति है तो हमारी ही चैतन्यशक्ति (स्वान्त स्थ ईश्वरकी शक्ति)

ही, जो इन घटनाओको घटित कराती है।

ग्रीकलोग जिसे नेमेसिस या दण्डदेवता कहते हे, वह कर्मनियन्तृ-शक्तिका ही दूसरा नाम है और इस नामके पीछे वही भावना छिपी हुई है। यह शक्ति इतनी शक्तिमती और ज्ञानवती है कि कोई भी उसके विधानसे या उसकी दृष्टिसे बच नही सकता। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकारकी कोई शक्ति है। इसी शक्तिपर हमे विश्वास करना होगा। हम जिसे ईश्वर कहते है, वह यही शक्ति है।

(२) जो लोग ईश्वरपर विश्वास करते हैं, वे उसके विधानोका पालन करते हैं और इन विधानोका हेतु जगत्का परम कल्याण हे। प्रत्येक जाति, समाज, समुदाय या अन्य जीवोके लिये जो नियम (कानून या विधान) देशाचारको देखकर या अन्य प्रकारसे बनाये जाते है, उनका हेतु अधिक-से-अधिक लोगोका अधिक-से-अधिक कल्याण-साधन होता है। इन नियमोंका पालन करनेमें प्रत्येक व्यक्तिको अपनी अनेक इच्छाओ और मनोवेगोको रोकना पडता है, क्योकि उसे यह भय है कि यदि वह ऐसा नही करेगा और अपनी इच्छा और मनोवेगके वशमे कोई ऐसा काम करेगा, जो समाजके विधानोके विरुद्ध है तो वह दण्डित किया जायगा। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने ही मनकी किया करे तो सर्वत्र अधेर मचेगा और स्वार्थपरता फैलकर नाशका कारण होगी। कोई भी मनुष्य अकेला नहीं है, वह अपनी समग्र मानवजातिसे सम्बद्ध है और मानव-जाति स्वय भी विश्वके अन्य प्राणियोसे सम्बद्ध है। इसलिये मनुष्यजाति तथा अन्य जीवोके लिये मनुष्यको कुछ ऐसे नियमोंका पालन करना चाहिये, जिनसे उनका हित हो, परतु मनुष्य इन नियमोका पालन तभी करता है जब उसे इस बातका भय होता है कि ऐसी भी एक शक्ति हे जो मुझे दण्ड देगी, यदि जगत्-हितके लिये बनाये गये इन विधानोका

मैं उल्लङ्घन करूँगा। ईश्वरकी सत्ता माननेवालोको एक हदतक सहिष्णु और नि स्वार्थ होना ही पडता है। जो लोग इस प्रकार मनको रोकनेकी आवश्यकता नहीं मानते, वे लोग सर्वथा स्वार्थी बन जाते और चार्वाकोंकी-सी बाते सोचने लगते हैं। उनके लिये जीवनका न कोई उद्देश्य है, न किसीका उपकार करना ही कोई अच्छी बात है। वे सदा अपनी ही सुविधाएँ देखते हैं और यही माना करते हैं कि यह जीवन-सग्राम है—इसमे तो बस, यही काम है कि जो बलवान् हो वह रहे, दुर्बल हो नष्ट हो जाय। विकासवादकी बातोको ये लोग अपनी मोटी बुद्धिसे जड बनाकर ही ग्रहण करते हैं। इन बातोमे ये लोग सिवा पाशविक बलकी उपासनाके और कोई सार वस्तु नहीं देख पाते। इनके लिये न्याय कोई चीज नहीं है, न इनके हृदयमें उदात्त गुणो या कर्मोके लिये ही कोई स्थान है। सचमुच ही समूची आजकी सभ्यता इस समय इसी भँवरमें पडी गोते खा रही है।

सभ्य कहानेवाले इन अमेरिका और अन्य देशोंमें होनेवाली आत्म-हत्याओंका विषय पढकर मैंने इस बातकी जाँच की कि समझदार और शिक्षित मनुष्य जो ऐसे भयकर उपायका अवलम्बन करते हैं, इसका कारण क्या है। मुझे तो यही जँचा कि इन आतमहत्याओंका मुख्य कारण ईश्वरपर विश्वास न होना ही है। ईश्वरपर विश्वास होनेसे मनुष्य न केवल अपनी अनुचित इच्छाओंको रोकता है, बल्कि सकटकालमें यह विश्वास ही ढाल बनकर उसकी सर्वथा रक्षा करता है। जो लोग ईश्वरका भरोसा करते हैं, वे आपत्कालमें कभी धीरज नहीं खोते। उनके लिये विपत्तियाँ केवल आगमापायिनी ही नहीं हैं, प्रत्युत एक प्रकारका ऐसा प्रायश्चित्त है कि जिनसे अन्तमें कल्याण ही होता है। जब कोई विपत्ति उन्हें बुरी तरहसे घेरती है, तब वे ईश्वरको (चिल्ला-चिल्लाकर भी) पुकारते हैं

और कोई-न-कोई बात ऐसी हो जाती है, जिससे वे दु खसे उबरते हैं। यह सम्भव है कि उन्हींका मन उनकी इस प्रकार मदद करता हो, पर यह भी कोई मामूली बात नहीं है। जो लोग अपनी बुद्धिके परे और कोई शक्ति नहीं मान सकते, उन्हे संकटकालमे कोई करुणा, कोई सहायता, कोई परित्राण नहीं प्राप्त होता। जब कष्ट असह्य हो जाता है, तब वे हिम्मत हार देते और आत्महत्या कर डालते है। मुझे स्मरण है कि एक महात्मा लोगोसे यह कहा करते थे कि किसी सशयात्माको तर्कके द्वारा ईश्वरकी सत्ताका विश्वास दिलाना सम्भव नहीं है। कोई बडी भारी विपत्ति आ जाय या कोई दु साध्य रोग हो जाय अथवा किसी प्रियजनका वियोग हो तो उससे नास्तिकोको ईश्वरकी सत्तापर विश्वास अनायास हो सकता है। तात्पर्य, ईश्वरका जबतक भरोसा नहीं होता, तबतक शान्ति, प्रसन्नता आदि उदात्त गुण भी नही प्राप्त होते।

(३) अपनी वैयक्तिक बात यह है कि कर्मका सिद्धान्त और विकट प्रसगोमे अनुभूत होनेवाली महती करुणा—दो मुख्य बाते हैं, जिनसे ईश्वरकी सत्ताका विश्वास होता है। मैंने केवल अपने ही विषयमें नहीं, बल्कि दूसरोके विषयमे भी यह जाँचकर देखा है कि कर्मका नियम कभी चूकता नही। ईश्वरकी चक्की धीरे-धीरे ही सही पर चलती है नि शङ्कभावसे। इसका धीरे-धीरे चलना महती करुणाका ही फल है। मनुष्य जब कोई भूल करता है, तब यह करुणा उस मनुष्यके हेतु की—नीयतकी जाँच करती है। यदि उसका हेतु वास्तवमे सत् है तो उसे अपनी भूलपर पश्चात्ताप होता है और आगे फिर ऐसी भूल करनेसे वह अपने-आपको बचाता है, पर यदि उसका हेतु असत् रहा हो तो उसकी वृत्ति खराबसे और भी खराब होती जाती है और अन्तमे उसे किसी ऐसी विपत्तिका सामना करना पडता है, जो उसे दुरुस्त ही कर

दे। मेरे विचारमें वे बडे भाग्यवान् व्यक्ति हैं, जिन्हे अपनी जरा-सी भूलका भी तुरत दण्ड मिल जाता है। उनका हिसाब साफ रहता है और वे सदा सावधान रहते हैं। यदि उनके साथ ढीलका व्यवहार होता तो न जाने वे किस मार्गपर चलते।

'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'मे 'आदर्श सरकारी नौकर' इस विषयमें मैंने जो लेख लिखा था, उसमे मैंने यह दिखलाया था कि किस प्रकार असद्-उपायसे प्राप्त धन या अधिकार कभी फलता नहीं। कितने ही रिश्वतखोरोकी अन्तमें जो दुर्गति हुई है, उसके 'कर्मके नियन्तृत्वकी अटलता स्पष्ट ही प्रमाणित होती है। कर्मको हम ईश्वरका ही वाचक समझ सकते हैं।

(४) मुझे दु ख है कि मैं अपने विषयमे कोई खास बात नही कह सकता। हाँ, दो-एक बाते सामान्यरूपसे कहता हूँ। आकाशवाणीके सम्बधमे मेरी एक विचित्र धारणा है। आकाशवाणीका एक प्रकार यह है। मान लीजिये कि आप किसी वडी भारी विपत्तिमे हैं और इस विपत्तिसे बाहर निकलनेका कोई रास्ता आपको नहीं सूझ रहा है, ऐसी हालतमे आप किसीके सङ्ग कही टहल रहे है। इसी रास्तेसे और लोग भी आपसमे बात करते हुए आ-जा रहे हैं। इन्हींमेसे किसीकी कोई बात सुनकर आप चकित हो जाते हैं, बात तो हो रही है उन लोगोकी आपसमे, पर अकस्मात् आपको उसमे अपने परित्राणका उपाय सुनायी पडता है। आपके लिये यह आकाशवाणी हो जाती है। इस तरहकी कई घटनाएँ मेरे जानतेमें हुई हैं। इस तरहकी आकाशवाणीको मैं यों समझता हूँ कि इस प्रकारसे ईश्वर ही दूसरोंके द्वारा मनुष्यवाणीसे बोलता है।

कितनी बार स्वप्नमें रोगियोंको दवाएँ मिलती हैं, दु खियोंको उद्धारके उपाय मिलते हैं। कई बार तो स्वप्नमें मन्त्रोपदेशतक हो जाते हैं।

'कल्याण' के 'शिवाङ्क' में पं० देवीसहायजीके विषयमे जो लेख लिखा गया था, उसमें मैंने इस तरहकी एक घटनाका उल्लेख किया है।

बीस वर्ष पहलेकी बात है कि मेरे एक मित्र किसी बारातके साथ अलीगढ जाना चाहते थे, पर गाड़ीके चूक जानेसे बारातका सङ्ग छूट गया। वे दूसरी गाडीसे गये, जब फिरोजाबाद पहुँचे, तब उन्होने देखा कि पहली गाड़ी टुकड़े-टुकड़े हुई पडी थी, गाड़ी लड़ गयी और यह दुर्गति हुई। बडी-बड़ी विपत्तियोसे बचानेके लिये कभी-कभी भगवान्‌का हाथ इस तरह बीचमें आ जाता है।

मैं कई ऐसे मामलोको जानता हूँ, जिनमे कई निरपराध व्यक्ति धूर्तोंके कुचक्रके शिकार होकर सरकारके सामने गिरफ्तार होकर लाये गये। सब तरहसे उनपर अपराध भी साबित हुआ और उनके छूटनेकी कोई आशा न रही, पर अन्तिम क्षणमें कोई बहुत मामूली-सी बात हो गयी और षड्यन्त्रकारियोका सारा कुचक्र उन्हींपर उलट गया। ऐसी बात ऐसे अदने-से लोगोंके विषयमे घटी है, जिनका कोई मददगार या पैरोकार नहीं था। बडे-बडे संगीन मामलोमे ऐसी घटनाएँ प्राय होती हैं।

=== ★ ===

श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला

१—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

तर्क और अनुमानोद्वारा निस्सदेह जो प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है, उसको न मानना निरी मूर्खता है, परतु तर्क और अनुमानोंद्वारा समझनेकी शक्ति किसीमें न हो, तब भी माननेवालोंको एक प्रकारसे उत्साह और धैर्य मिलता है। उनमें आशाका सचार होता है और शुभ कर्मोंकि करनेमें रुचि होती है।

२—ईश्वरको न माननेसे कौन-कौन-सी हानि है ?

न माननेसे पाप-पुण्यपर भी विश्वास नहीं रहता। जो कर्मफलमें विश्वास करते हैं या कर्मोंको ही प्रधानता देते हैं जैसे जैन, बौद्ध आदि, वे प्रकारान्तरसे कर्मरूपी ईश्वरको ही मानते हैं। कर्मफल किसी महती सत्ताके बिना स्वत नहीं सिद्ध होता। अत कर्मफलको न माननेवाले ही सच्चे नास्तिक हैं और ऐसे मनुष्य अवसर पडनेपर भयानक-से-भयानक अपराध कर सकते हैं।

३—ईश्वरके होनेमें कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण हैं ?

जिस प्रकार एक घडीयन्त्रको देखकर उसके बनानेवालेकी कल्पना की जाती है, उसी प्रकार ससारके घडीयन्त्ररूप सूर्य-चन्द्रादिकोंको तथा मनुष्यादि जीवोंके शारीरिक यन्त्रोंको देखकर यह सहज ही समझमें आ सकता है कि इन यन्त्रोंको बनानेवाला और चलानेवाला कोई-न-कोई जरूर होगा ही।

४—अपने जीवनकी ऐसी घटनाएँ लिखिये जिनसे ईश्वरकी सत्ता

और दयामे आपका विश्वास बहुत बढा हो।

ऐसी घटनाएँ अनेक हुई हैं। मैं समझता हूँ, जिन मनुष्योमे कुछ भी समझनेकी शक्ति है, उन्हे अपने जीवनमे ऐसी अनेक चमत्कारी घटनाओका अनुभव होता होगा, जिनसे ईश्वर-सत्ताके विषयमे किंचित् अविश्वास रह ही नहीं सकता।

═══ ★ ═══

श्रीजयरामदासजी 'दीन'

इस विद्याबुद्धिहीन 'दीन' की गति इतनी ही है कि श्रीतुलसीकृत रामायणका पाठ पढ लेता है और श्रीमानसजीकी कृपासे जेसा अवगत होता है, उन्हींके शब्दोका थोडा अर्थ या तात्पर्य लिखकर श्रीमानसप्रेमियोकी सेवाके निमित्त उनके आज्ञानुसार सेवित कर देता है। इससे अधिक यह कुछ जानता ही नहीं। श्रीरामचरितमानसके अवलम्बनने इस 'दीन' में श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला ओर धाम **(रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुष्टय नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥)**—इन चारों विग्रहोमें दृढ अन्धविश्वास पैदा कर दिया है। यह श्रीसरकारके शीलस्वभावको पढकर अन्त करणसे मुग्ध होकर इसीमें धन्य मानता हे कि 'जो जगदीस तो अति भलो जो महीस तो भाग। तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन अनुराग॥' अतएव कभी स्वप्नमें भी ऐसे प्रश्नोंका स्फुरण नहीं होता कि ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ? कौन-कौन-से प्रमाण हें ? न माननेमें कौन-कौन-सी हानियाँ हें ? इत्यादि। तथापि जगत्-हितैषी श्रीसम्पादकजीने जनताके परम कल्याणार्थ इन प्रश्नोंको उपस्थित किया है। अत श्रीरामचरितमानसके ही आप्त प्रमाणोंद्वारा, जो 'नानापुराणनिगमागम' के निचोड हैं, उत्तर लिखकर सेवामें समर्पण किया जा रहा है।

१—ईश्वरको क्यों मानना चाहिये ?

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि वही सब जीवोंके बन्ध-

मोक्षका अधिकार रखते है—मायाके प्रेरक हे तथा सर्वपर अर्थात् सबसे बडे हैं—

'बन्ध मोच्छप्रद सर्बपर मायाप्रेरक सीव'

उनके इन्हीं अधिकारोका स्पष्टीकरण इन चौपाइयोमे है—

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

× × × ×

उमा दारु जोषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाई॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि वही इस सम्पूर्ण जगत्के कर्ता (रचयिता), पालक (पोषणकर्ता) और संहर्ता (नाशकर्ता) है—ये तीनो अधिकार उन्हींको है। यथा—

तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥

× × × ×

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि वही सबके नियन्ता है, उन्हीकी आज्ञासे सब कुछ होता है। यथा—

ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के॥

× × × ×

बिधि हरि हर ससि रबि दिसिपाला। माया जीव कर्म कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचारि जिय देखहु नीके। राम रजाय सीस सब ही के॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौ सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि उनकी कृपासे सम्पूर्ण अनिष्ट इष्टरूप बन जाते है—

गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिधु अनल सितलाई॥
गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि वे बडे कृपालु, बडे सरल और बडे शीलवान् है। उनके-जैसा सुन्दर स्वभाव किसीका है ही नहीं। एक बार उनकी दया जिसपर हो गयी, वह फिर कभी उनका कोपभाजन बनता ही नहीं। जैसे—

उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी॥

× × × ×

गई बहोर गरीबनेवाजू। सरल सवल साहिब रघुराजू॥

× × × ×

वेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥
अस सुभाव कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

× × × ×

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

× × × ×

देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
जेहिं जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥

इत्यादि

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि कोई कैसी भी दीनदशामें क्यों न हो, ईश्वरके शरणागत हो जानेपर वे उसको तत्काल अपना लेते हैं। पूर्वकृत सम्पूर्ण अपराधोंको क्षमा कर देते हैं एव लोकनिर्भयताके साथ-साथ परलोककी सुगति प्रदान करते है। यथा—

क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥

× ×

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि वे सर्वत्र व्यापक हैं। जहाँ ही कोई उनसे प्रेम करता है वहीं वे प्रकट होकर रक्षा या सहायता करते हैं और अभीष्ट भी सिद्ध कर देते है। यथा—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मै जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥

ईश्वरको इसलिये मानना चाहिये कि समस्त वेद, पुराण, सत्-शास्त्र, ब्रह्मादि देव, शुकादि मुनि और शिव-भुशुण्डादि महाभागवतोकी यही सम्मति और अनुभव है कि 'ईश्वरके ही भजनसे कल्याण होता है। अन्य किसी प्रकारसे क्लेशकी निवृत्ति नहीं हो सकती।' जैसे—

सिद्ध अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
श्रुति पुरान सदग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
निज अनुभव अब कहहुँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥
उमा कहउँ मै अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं भजहि जीव ते धन्य॥

२—ईश्वरको न माननेसे कौन-कौन-सी हानियाँ हैं? ईश्वरको न माननेसे लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। जैसे—

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥

× ×

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

× × × ×

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरसि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

× × × ×

ईश्वर (श्रीरघुनाथजी) की विमुखतासे समस्त हित अनहित और सम्पूर्ण इष्ट अनिष्टके रूपमे बदल जाते है, जैसे मित्र शत्रु होकर अहित करने लगते हैं, माता मृत्युरूप और पिता कालरूप बन जाते हैं, अमृत विपका काम करने लगता है, गङ्गाजी वैतरणी बन जाती हैं और सारा संसार अग्निसे भी अधिक दाहक हो जाता है। देखिये—

मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिप सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥

× × × ×

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥

× ×

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिपान॥

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥

३—ईश्वरके होनेमे कौन-कौन-से प्रबल प्रमाण है ?

श्रीरामचरितमानसमे ईश्वरके अस्तित्वके अनेको प्रबल प्रमाण मौजूद है। पहले बालकाण्डमे श्रीस्वायम्भुव मनुकी कथा देखिये। श्रीमनुमहाराज और उनकी धर्मपत्नी श्रीशतरूपाजीने बहुत कालतक राज्य कर लेनेके बाद चतुर्थपनमे गृह-त्याग किया और श्रीनैमिषारण्य-तीर्थको गये। वहाँ जाकर उन्होने परम प्रभु भगवान् (ईश्वर) के चरणोमे अनन्य अनुराग-रक्त होकर तेईस हजार वर्षतक कठिन तपस्या की। इसपर प्रसन्न होकर ईश्वरने आकाशवाणी की, फिर जब उन्होने साक्षात् दर्शनकी अभिलाषा प्रकट की, तब ईश्वरका प्रादुर्भाव भी हुआ और दर्शन होनेके पश्चात् उनके घरमे अवतार लेनेका वर मिला। अत जब वही मनु और शतरूपा, दशरथ और कौसल्याके रूपमे 'अवध-भुआल' हुए तब उनके घरमे परब्रह्म ईश्वरने अपने प्रदत्त वाक्यानुसार श्रीरामरूपमे अवतार लिया। अत. यदि ईश्वर होते ही नहीं तो किसकी आकाशवाणी होती ? कौन आकर उनको प्रत्यक्ष दर्शन और वर-प्रदान करता तथा कैसे श्रीरामावतार होता ? पूरा प्रसङ्ग यो है—

स्वायंभुव मनु अरु सतरूपा। जिन्ह ते भइ नर सृष्टि अनूपा॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥
बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार॥
बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी ॥
मागु मागु वर भै नभवानी। परम गभीर कृपामृत सानी ॥
श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात ॥
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर वंदित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥
दंपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्व बास प्रगटे भगवाना ॥
बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ॥

× × × ×

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ॥
देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले ॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥
तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥

इसके अतिरिक्त रावणके अत्याचारसे अत्यन्त भयभीत होकर पृथ्वी जब व्याकुल हो गयी—'अतिसय देखि धरम कै ग्लानी।

परम सभीत धरा अकुलानी ॥' तब गौका रूप धारण करके ब्रह्मलोकमे देवताओके सम्मुख गयी—**'गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।'** वहाँपर श्रीशिवजीने सम्मति दी कि 'ईश्वर सब जगह व्याप्त है और प्रेमाभिनन्दनसे प्रकट हो जाते हैं'—**'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मे जाना ॥'** यह सुनकर श्रीब्रह्माजीने स्तुति की—**'सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलक नयन बह नीर। अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर ॥'** वहाँ भी आकाशवाणी हुई। जैसे—

जानि सभय सुरभूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥

अस्तु, यदि ईश्वर न होते तो वहाँ भी ब्रह्मादिककी स्तुति किसके लिये होती ? किसकी ओरसे आकाशवाणी होती और 'गगन गिरा' से ऐसी सान्त्वना देकर कौन प्रकट होता ? ग्रन्थमे आगे चलकर स्पष्ट प्रमाण मौजूद है कि उसी ईश्वरने—उसी परम प्रभु व्यापक ब्रह्मने 'श्रीदिनकर-वश' (सूर्यवशी कुल) मे श्रीदशरथ महाराजके घर अवतार लिया और मर्यादापुरुषोत्तम-चरितके द्वारा लोकधर्मकी स्थापना करके भूमिभारका अपहरण किया। वह ईश्वर नही तो दूसरा कौन था ? प्रमाणमे देखिये—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ॥ इत्यादि

इस प्रकार ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणोसे सारा ग्रन्थ भरा पडा है

और सभी प्रमाण वेद, उपनिषद् और गीता आदिके ही निचोड हैं, क्योंकि—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ॥'

अब कोई हठ करके वेदादिके वाक्योंपर विश्वास ही न करे तो उससे यही कहना है कि वह कम-से-कम अपने जन्म और मृत्युपर ही विचार करे। उससे भी यह विदित हो जायगा कि 'जन्मसे पहले कोई शक्ति या सत्ता अवश्य रहती है, जिससे शरीर बनता है और जिसकी आज्ञा या इच्छासे ही यह विनाशको भी प्राप्त होता है।' अत ये दोनो कार्य जिससे होते हैं या जिसके अधीन हैं, उसीका नाम ईश्वर है। जन्म तथा मृत्यु—ससारका अस्तित्व और विनाश ईश्वरके होनेके प्रबल प्रमाण है, क्योंकि जगत्की उत्पत्ति, पालन और सहार जिस अगाध बुद्धिमत्तासे होता है, वह क्या किसी जडतत्त्वसे सम्भव है ? कदापि नहीं।

चौथे प्रश्नका उत्तर देनेके पहले इस 'दीन' का यह निवेदन है कि जबतक मुझको बोध नहीं था, तबतक तो जीवनकी घटनाएँ अपने या अपने सम्बन्धियोंके कार्योंका परिणाम जान पडती थीं, परतु अब पिछली तथा वर्तमान सभी घटनाओंसे श्रीकृपालु प्रभु (ईश्वर) की प्रभुताका ही निश्चय होता है। अस्तु,

इस 'दीन' का जन्म एक सरयूपारीण ब्राह्मणकुलमें, जो परम्परासे श्रीवैष्णव था, दिया गया। (ईश्वरकी सर्वप्रथम करुणा तो इसीमें थी, क्योंकि 'कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥') तोतली बोलीकी अवस्थासे ही पूज्य श्रीमाताजीने श्रीतुलसीकृत रामायणकी चौपाइयाँ कण्ठ कराना आरम्भ कर दिया और श्रीमानसजीमें ही अक्षरों और मात्राओंकी पहचान कराकर रामायण पढ लेनेका भी अभ्यास

करा दिया। बस, मेरी हिंदी-शिक्षाका अथ और इति यही है। कुछ और सयाना होनेपर उर्दू पढनेके लिये मदरसे भेजा गया। वहाँसे उर्दू-मिडिलकी परीक्षा पास करनेके बाद अग्रेजी पढनेमें ही शिक्षण-कालका सारा समय बीत गया। हिंदीसे इतना ही नाता रहा कि पहलेसे झुकाव हो जानेके कारण नित्य श्रीमानसजीका पाठ कर लिया करता था। शिक्षा समाप्त होनेपर श्रीमानसजीकी कृपासे यह अभिलाषा हुई कि 'कोई ऐसी नौकरी मिल जाती, जिसमें अधिक प्रपञ्च न होता, नियमित समय-तककी ड्यूटी होती, श्रीमानसजीका भलीभाँति अध्ययन कर आनन्द लेनेका और श्रीरामनाम रटनका पूरा समय मिलता।' ऐसा विचार हो जानेके बाद सीधे फौजकी कमीशन-अफसरी (जमादारी) की कोशिश होने लगी। शरीरके सम्बन्धी पूर्वज फौजमे सूबेदारी और सूबेदारमेजरी आदि करके पेंशन पा रहे थे। उनकी सहायतासे कलक्टर और कमिश्नर आदिने सिफारिस करके पूरा-पूरा योग जुटा दिया, परतु जिस फौजमें जगह खाली थी, उसके कमाडिंग अफसरने यह लिखकर टालमटूल कर दी कि 'हम एक व्यक्तिको सीधे ले चुके हैं, अब फिर तत्काल ही दूसरेको ले लेनेसे बडी कठिनाई और अव्यवस्था होगी।। इनको दूसरा अवसर दिया जायगा।' परतु कमिश्नर आफ डिवीजनने हठ करके उसी साल मुझे पुलिस ट्रेनिंगमे भेज दिया। वहाँ सालभरतक थानेदारीकी शिक्षा प्राप्त कर लेनेके बाद श्रीअयोध्याके थानेमे प्रोबेशनरी पीरियडके लिये मेरी तैनाती हो गयी। फिर भी फौजकी जमादारी न मिलनेके कारण मुझको जितना शोक हुआ, वह सर्वथा अकथनीय है, परतु उसमें ईश्वरीय लीलाका कितना अद्भुत रहस्य था। थोडे ही समयके पश्चात् जर्मनका महायुद्ध आरम्भ हो गया। उसमें वह फौज,

जिसका मैं जमादार बननेवाला था, बुरी तरह समाप्त हो गयी। उस अपेक्षित जगहपर मेरे बजाय जो जमादार नियुक्त किये गये थे, उनका तो कहना ही क्या! उनके पीछे एकके बाद न जाने कितने भाई कालके ग्रास बन गये। उस घटनाको देखकर सरकारकी साहबीको हृदय धन्यवाद देता हुआ दग रह गया और उस जमादारीके न मिलनेकी बडी खुशी हुई। क्यो न हो, बडी साहबीमे नाथ बडे सावधान हैं।

श्रीअवधधाममे रहकर श्रीरामायणजीके अध्ययनका खूब सुअवसर मिला। सरकारकी पुरीका पहरा भी दत्तचित्त होकर दिया जाने लगा, परतु जब-जब सतवेषधारियोंके दुराचारोंकी रपटे आती थीं और जाँच करनेपर उनके दुर्व्यवहारोंकी स्थितियोका पता चलता था, तब-तब समाजसे चित्त खिन्न-सा हो जाता था। मै श्रीभगवान्से यह प्रार्थना करने लगता कि 'हे प्रभु! सतोके लक्षण जिस तरह श्रीरामायणमें वर्णित हैं, वैसे सत कहाँ प्राप्त होंगे? इन दम्भियोसे तो साधारण गृहस्थ ही अच्छे हैं।' इस प्रकार वहाँपर श्रीसरयूस्नान और श्रीहनुमान्जी, जन्म-भूमि एव बडे-बडे मन्दिरोका शुभ दर्शन होते रहनेपर भी अच्छे सच्चे सत-महात्माओंकी सनिधिका सयोग नहीं मिलता था। मुकदमेबाजोको देखकर तो घृणा हो जाती थी। अजीब दशा हो गयी थी। उधर पुलिसके कठिन कार्योंका तौर-तरीका भी असत्यपूर्ण हो चला था। तबतक भगवत्-कृपासे श्रीप्रयागमे माघ-मेला लगा और एक मासके लिये मुझको इन्तजामकी डयूटीपर जाना पडा। वहाँ पूर्व चेष्टानुसार किसी सच्चे सत-सद्गुरुकी प्राप्तिकी अभिलाषा बढी। श्रीमानसजीकी कृपासे मुझको रामायण और गीताका पाठ करते देखकर दारागजके छोटी लाइनवाले स्टेशनमास्टर मेरे पास आकर बैठ गये। उनको बडी प्रसन्नता हुई। उनमें भक्ति-बीज देखकर पाठ समाप्त होनेके

पश्चात् मैंने उनसे यह प्रश्न किया कि 'भाई ! आप यहाँ बहुत दिनोसे हैं, इस तीर्थराजमें निवास करनेवाले किसी सच्चे संत-महात्माके पास ले चलकर मुझे दर्शन कराइये।' प्रभुकी कृपासे उन्होने तत्काल ही कहा कि 'आप जैसे संतकी खोजमे हैं, उनका मै आज ही शामको दर्शन करा दूँगा।' बस, क्या था, सायंकाल होते ही वे मुझको बाँधगुफापर श्रीपूज्य परमहंस दिगम्बरस्वरूप श्रीनागाबाबाजी महाराजकी शरणमें ले गये। उनसे उन्होने यह भी निवेदन कर दिया कि 'ये (मै) रामायणका बडा अच्छा पाठ करते हैं।' श्रीपूज्यमहाराजजीने आज्ञा दी कि 'रामायण लाओ और हमको सुनाओ।' 'दीन' ने आज्ञापालन किया। महाराजजी बहुत प्रसन्न हुए और पुन: आज्ञा हुई कि 'जबतक यहाँ डयूटीपर रहो, रोज सध्याकालमे रामायण सुनाया करो।' माघ मकरभर यह सौभाग्य रहा। मेला समाप्त होनेपर दासने प्रार्थना की कि 'प्रभो ! इस दीनसे यही सेवा बराबर ली जाय। अब पुलिसका काम सपरना इससे असम्भव है। आज्ञा हो तो छोडकर हाजिर हो जाऊँ।' इसपर आदेश हुआ कि 'फल पककर जब टपकता है, तब अधिक मीठा होता है। हाँ, इतना खयाल रहे कि कोई बेगुनाह तुम्हारेद्वारा चालान न हो।' मै लौटकर फैजाबाद आया और श्रीभरतकुण्डके थाने (पूरा कलन्दरमे) मेरी तैनाती हो गयी। जहाँपर श्रीभरतजीने **'महि खनि कुस साथरी सँवारी'** और चौदह वर्षतक तपस्या की थी, 'दीन' अकेलेमें चुपकेसे उस जगहपर जाकर श्रीभरतचरितका पाठ करता और जंजालसे छुटकारा पाने तथा राघवजीके चरणोमे प्रीति होनेकी बारम्बार विनती करता था। दूसरे माघमें अनायास ही 'दीन' की डयूटी फिर प्रयागके माघमेलेमे हो गयी। इतना ही नहीं, प्रभु (ईश्वर) की अद्भुत कृपासे उन्ही स्टेशनमास्टर बाबू श्यामानन्दके यहाँ (आजकल भी आप झूँसी

स्टेशनपर हैं) ड्यूटी मिली। अत यह दूसरा माघ फिर आनन्दपूर्वक श्रीपूज्यस्वामी परमहसराजजीके दुर्लभ सत्सङ्गमे व्यतीत हुआ। तीसरे माघमें तो सतभगवतकी असीम कृपा तथा श्रीमानसजीके प्रतापसे मैं उस कठिन कार्यसे अलग ही हो गया और निश्चिन्तरूपसे श्रीपूज्यपादजीकी शरणमे चला गया। आज उसे लगभग बीस वर्ष हो रहे हैं।

उस समय कहाँ तो श्रीमानसमें वर्णित खलोंके स्वभावानुसार ('जे पर दोष लखहिं सहसाखी') मुझको पुलिसकी ड्यूटी मिली थी और कहाँ आज अहर्निश यह धारणा दृढ करायी जा रही है कि 'सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक॥' अत यह उस परम प्रभु ईश्वरकी ही कृपा है कि ऐसे दीन-हीन सर्वोपायशून्यको भी ऐसे महानुभावोके चरणोंकी शरण मिल गयी है। वास्तवमें तीनो दुर्लभ साज सजा दिये गये हैं, अब अपनी ही जडता है कि कृतार्थ होनेमे कसर रह गयी है। यथा—

नर तन भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मद मति आत्माहन गति जाइ॥

भगवान्‌की करुणाका कुछ भी ठिकाना नहीं है। वे प्रतिक्षण प्राणिमात्रकी रक्षा कर रहे हैं, परतु यह न जाननेके कारण जीव कुछ और ही गुनता है। भगवान्‌के भजनमें विश्वास करके उसमें हठात् लग जानेसे भगवत्कृपा अवश्य आरम्भ हो जाती है और उसके द्वारा भगवान्‌की प्रभुताका बोध होने लगता है। फिर प्रभुताके बोधसे प्रतीति उत्पन्न होती है, प्रतीतिसे प्रीति होती है और प्रीतिसे भगवद्भक्ति दृढ हो

जाती है। यह श्रीभुशुण्डिजीका अनुभव है। जिसको इस अनुभवकी सत्यता देखनी हो, वह श्रीरामनामरटनरूपी भजनको नियमितरूपसे करके देख ले। नियमानुसार नित्य एक लाख, पचास हजार या पचीस हजारका नाम रटन न हो सके तो कम ही सही, पर दृढ़ संकल्पके साथ करे। देखिये—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥
जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥
बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥
बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥
अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥

सियावर रामचन्द्रकी जय !

डा० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर

ईश्वर-प्रार्थनामे अपूर्व शक्ति है। ईश्वर-उपासनासे सब प्रकारके दु खों और कष्टोका निवारण होता है। उससे न केवल रोगके निवारणमें शान्ति मिलती है, किंतु जीवनकी सभी आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं। प्रार्थनाकी अलौकिक शक्तिमे भारतवासियोका आजकल बहुत कम विश्वास है, परंतु पाश्चात्त्य देशोंमें इसके लिये खास-खास सस्थाएँ खुली हैं। प्रार्थनासे अनेक रोग निवृत्त किये जाते हैं और अनेक कामनाएँ पूर्ण होती है, जिसका वहाँ विधिपूर्वक रेकार्ड रखा जाता है। उन देशोंमें लाखो मनुष्य प्रार्थनाके प्रभावपर विश्वास करते हैं। प्रार्थनाका रहस्य क्या है, इसका दिग्दर्शन कराते हुए हम यहाँपर पाठकोंके अवलोकनार्थ कुछ उदाहरण देते हैं।

प्रार्थनाका रहस्य

प्रार्थनाका विषय एव तत्त्व जानना प्रार्थना करनेवालोके लिये परम आवश्यक है। प्रार्थना क्या है और क्यों की जाती है ? प्रार्थनाका उत्तर मिलता है या नहीं ? मिलता है तो किस प्रकार ? और यदि नहीं तो उत्तर न मिलनेका कारण क्या है ? प्रार्थनाका अर्थ है—'किसी अर्थकी याचना करना' या 'किसी अभावका अनुभव कर उसकी प्राप्तिके लिये सहायता प्राप्त करना।' प्रार्थनाके तीन प्रयोजन विशेषकर होते हैं—(१) सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके हेतु या किसी स्थूल अभावकी पूर्तिके निमित्त प्रार्थना की जाती है, जैसे अन्न, वस्त्र, नौकरी, धन, स्त्री या पुत्र-प्राप्ति, रोगनिवारण, किसी क्लेश या दु खसे रक्षा, आपत्तिका

नाश, सम्मानप्राप्ति, परीक्षामे सफलता और विद्या-प्राप्ति आदि सब व्यावहारिक सिद्धियोंके लिये। (२) आत्मिक उन्नतिके लिये, काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि मानसिक विकारोंपर जय प्राप्त करनेके लिये, आत्मा क्या है, ईश्वर क्या है, मृत्यु क्या है, मृत्युके बाद क्या होता है और सृष्टि क्या है इत्यादिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये, मानसिक और बौद्धिक उन्नतिके लिये, अध्यात्म-ज्ञान और यथार्थ साधन जाननेके लिये। (३) तीसरे प्रकारके वे सच्चे प्रार्थना करनेवाले प्रेमी भक्त होते हैं, जिन्हें कुछ भी माँगना नहीं है। जो केवल उस महाप्रभुके ध्यानमें और प्रेममें ही निरन्तर लीन रहना चाहते हैं या उस प्रियतमसे एक होनेके लिये अपनी खुदीको मिटाकर ईश्वर-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार करनेके लिये अतीव हार्दिक उत्कण्ठा रखते हैं। यह सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना है।

जो जिस कामनाके लिये प्रार्थना करता है, उसकी वे सब कामनाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं। **'यत् यत् इच्छति तस्य तत्।'** प्रार्थनाका उत्तर अवश्य मिलता है। जो धनके लिये प्रार्थना करते हैं, उनको यथावाञ्छित धन किसी भी साधनसे मिल जाता है। जो अन्न-वस्त्रके लिये प्रार्थना करता है, उसके द्वारपर अन्न, वस्त्र किसी भी प्रकार पहुँच जाते हैं। जो विद्या-प्राप्तिके निमित्त प्रार्थना करता है वह बड़ा विद्वान हो जाता है। अनाथालय आदि धार्मिक कार्योंमें परोपकारी पुरुषोंके पास, जिनका उद्देश्य केवल प्राणिमात्रको सहायता देकर सेवा करना है, प्रार्थना करनेपर आवश्यक सहायता अवश्य पहुँच जाती है। कभी-कभी प्रार्थना पूर्ण नहीं भी होती। इसका कारण यह है कि पूर्व-जन्मके कर्मका कोई प्रबल सम्बन्ध इसी प्रकारका होता है कि उसका उसी समय उनको अवश्य ही फल मिलना चाहिये। इसके विरुद्ध यह भी प्रत्यक्षमें देखा जाता है कि अनेक पुरुषोंकी प्रार्थनाका कोई उत्तर भी नहीं मिलता, इसका कारण यह

है कि या तो उन्हे असली प्रार्थना करना नहीं आता या उनके भी पूर्वजन्मका कोई महान् प्रतिबन्धक होता है।

जो मनुष्य परोपकारी, चरित्रवान्, श्रद्धासम्पन्न, ईश्वरमें विश्वासी, प्रबल धारणा-शक्तिवाले और नि स्वार्थी होते हैं, उनकी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। पापी, कुकर्मी, अविश्वासी, अश्रद्धालु और निर्बल इच्छा शक्तिवालोकी प्रार्थना ही प्राय निष्फल हुआ करती है। प्रार्थनाओका उत्तरदाता ईश्वर ही है। ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है। जिसकी शक्तिमें, जिसके ज्ञानमें, जिसके प्रेममें समस्त चराचर स्थित है—जो सृष्टिमे सर्वत्र मौजूद है, जिसके ज्ञानके बिना एक पक्षी भी आकाशमे नहीं उड़ता, जिसके ज्ञानके बिना एक चींटी भी भूमिपर पैर नहीं रखती, ऐसा सर्वविधाता ईश्वर ही है, वही प्राणियोकी प्रार्थनाओंको सुनता है और उनको यथोचित उत्तर देता है।

दृढ श्रद्धासे ईश्वर-प्रार्थना करनेवालेके जीवनमें अनेक विचित्र-विचित्र अनहोनी घटनाएँ घटित होती हैं। मैं यहाँ पाश्चात्त्य देशके प्रार्थना करनेवाले कुछ भद्र पुरुषोंका ही परिचय दूँगा।

१—विलायतके स्वर्गीय जार्ज मूलर प्रसिद्ध ईश्वर-भक्त थे। इन्होने सेकडों अनाथालय स्थापित किये हैं। इनका सारा काम प्रार्थनापर ही चलता था, ये कभी न तो किसीके पास एक पाईके लिये भी याचना करने गये थे और न कभी इन्होंने अपील ही प्रकाशित की थी, फिर भी इन्हें १५,००,००० पौंड द्रव्य अर्थात् २,२५,००,००० सवा दो करोड रुपये घर बैठे प्राप्त हुए थे। मूलर साहबका प्रार्थनामें बडा ही अटल विश्वास था। एक बारका वृत्तान्त है कि उनके अनाथालयमें बालकोंके लिये भोजन नहीं था। प्रबन्धकने आकर कहा कि 'आज तो एक मुट्ठी अन्न भी नहीं है—क्या किया जाय ?' मूलर

साहबने कहा—'आप अपना काम कीजिये, टेबल, तस्तरी आदि सब ठीक कीजिये।' वह आश्चर्य करने लगा कि 'यह मनुष्य क्या पागल हो गया है?' फिर थोडी देर बाद उसने आकर कहा कि 'कुछ प्रबन्ध कीजिये, बालकोके भोजनका समय सनिकट है।' मूलर साहबने पुन वही उत्तर दिया कि 'आप अपना काम कीजिये', किंतु इससे प्रबन्धकको सतोष न हुआ, वह पुन मूलरके पास आकर तेजीसे बोला कि 'खानेका समय हो गया, क्या घण्टा बजा दिया जाय?' मूलर साहबने पूर्ण आशा और दृढ विश्वाससे उत्तर दिया—'घण्टा बजा दो। हमारा जो काम था, हमने कर दिया, अब शेष जिनका काम है वे अपना करेगे।' भोजनके लिये सब बालकोके एकत्र होते ही तुरत भोजनकी पकी-पकाई पूरी सामग्री अनाथालयमे उसी समय आ गयी। किसी बडे आदमीने उस दिन अपने मित्रोको बडा भोज देनेका आयोजन किया था और एक होटलमे सब सामग्री तैयार करवायी थी किंतु किसी कारणवश वह भोज स्थगित करना पडा। उस मनुष्यको यह अन्त -प्रेरणा हुई कि सामान सड जायगा, इसलिये इसको मूलर साहबके अनाथालयमे भेज देना चाहिये। उसने होटल मैनेजरको आज्ञा दी कि सारी सामग्री भोजनके समयतक अनाथालयमे पहुँचा दो। बालकोने प्रेमपूर्वक भोजन किया और सबको बडा आश्चर्य हुआ। मूलर साहबने प्रार्थनासे उठकर प्रबन्धकको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि 'तुम्हारे *समान अविश्वासी मनुष्यकी मुझे आवश्यकता नही, जिसे उस परम* पिता परमेश्वरपर घटेभरके लिये भी विश्वास नही है।'

एक बार मूलर साहब ईश्वरवादपर व्याख्यान देनेको जहाजसे कही जा रहे थे। मार्गमे बडे जोरोसे कुहरा पडा, सर्वत्र धुध छा गयी, कहीं मार्ग दिखायी नही देता था। मूलरने कप्तानसे कहा कि 'महाशय!

मुझे शनीचर पहली तारीखको अवश्य पहुँचना है।' कप्तानने कहा—'असम्भव है, देखो कैसा कुहरा पड़ रहा है।' मूलरने कप्तानके कंधोपर हाथ रखकर कहा कि 'आओ, ईश्वरसे प्रार्थना करें, जिससे यह दूर हो जाय!' कप्तानने कहा—'तुम किस पागलखानेसे आये हो, जो इस प्रकारकी अनहोनी बात कर रहे हो?' मूलरने कहा—'मैंने प्रार्थना की है और अभी उसका उत्तर मिलेगा। मैं ५७ वर्षोंसे अपने प्रभुका साक्षात्कार कर रहा हूँ और अभीतक मेरी प्रार्थनाके अचूक उत्तर मिले हैं। मेरी दृष्टि उस परम प्रभुकी ओर है, जो जीवनकी प्रत्येक स्थितिपर शासन करता है। जाओ, डेकपर जाओ, देखो कुहरा उतर रहा है।' कप्तान भी इस सीधे-सादे मनुष्यकी प्रार्थनाके प्रभावको देखकर चकित हो गया। कुहरा दूर हुआ और मूलर केवेकको ठीक उसी समय पहुँचा, जिस समय उसे पहुँचना आवश्यक था। मूलरका सारा जीवन प्रार्थनामय था। *

२—अमेरिका (कनसास) मे इस समय ईश्वरवादका प्रचार करनेवाले मिस्टर चार्ल्स फिलमोर महाशय है, जिन्होने 'युनिटी स्कूल ऑफ क्रिश्चियानिटी' नामक अध्यात्मवादकी एक बडी भारी संस्था स्थापित की है। मिस्टर फिलमोर जन्मसे लूले-लँगडे थे, महान् दरिद्र-अवस्थामें थे और इनके स्त्री-बच्चे सभी क्षय-रोगसे पीड़ित थे, इनकी पत्नीको प्रेरणा हुई कि ईश्वरकी प्रार्थनासे हम चंगे हो सकते हैं।

केवल प्रार्थनाके बलसे अपनेको तथा कुटुम्बियोंको रोगमुक्त करके कोई चालीस पैंतालीस सालसे आप उक्त सस्थाका संचालन कर रहे हैं और केवल भगवत्प्रार्थनासे श्रद्धालु पुरुषोंकी आधि-व्याधि,

---

* मूलरके विषयमें विशेष जानना हो तो 'A venture of faith' पुस्तक देखिए।

दरिद्रता, रोग-शोक मिटाकर उन्हें सुख-शान्तिपूर्ण जीवन प्रदान कर रहे हैं। एक करोड़के लगभगकी सम्पत्ति संस्थाको समर्पण करके स्वयं एक साधारण व्यक्तिका-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यूनिटी एक नगर-सा बस गया है। इसके 'यूनिटीडेली बर्ड' आदि दस मासिक साप्ताहिक पत्र हैं, जिसमें ईश्वर-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं, बाहर भेजे जाते हैं। १३,५०० ग्राहक तो अकेले लॉस एंगलीज शहरमे ही हैं। ४,००० पत्र नित्य आते हैं और ८,००० से ऊपर पत्र नित्य जाते हैं, ६०,००० पार्सल पैकेट प्रतिमास भेजे जाते हैं, यूनिटीके प्रतिदिन १,००० ग्राहक बनते हैं, बीस लाख नोट-पेपर प्रतिवर्ष काममे लिये जाते हैं। संस्थामे चार सौ आदमी नित्य काम करते है। सबको वेतन मिलता है। ९० आदमी तो सिर्फ प्रार्थनाके लिये नियुक्त हैं, इनको जो लोग निःस्वार्थभावसे प्रेमस्वरूप भेंट भेजते हैं, उसीमेंसे दे दिया जाता है।

इसमें बच्चोके लिये, युवाओके लिये, अन्धोंके लिये अलग-अलग मासिक साहित्य प्रकाशित होता है। पत्र कई भाषाओमे— जर्मन, इटली, फ्रेंच, स्पेनिश, नारवेजियन आदिमे प्रकाशित होते हैं। यूनिटीके ४० विभाग है।

(१) रोगीको बिना देखे प्रार्थनासे इलाज करना।

(२) गरीब, बेकार दिवालियेंके लिये प्रार्थनासे सहायता दिलवाना।

(३) मानसिक उन्नति और अपने-अपने सुधारके लिये प्रार्थना करना।

(४) शारीरिक, मानसिक, समाजिक एवं आध्यात्मिक कठिनाइयोंको प्रार्थनाके बलसे दूर करनेका प्रयत्न करना।

संस्थाका खर्च लोगोंकी प्रसन्नता या प्रीतिसे दिये हुए दानपर चलता है। सम्पूर्ण कार्यकर्ता मांस-भोजनसे परहेज करते हैं, सब धर्मोंको आदरकी

दृष्टिसे देखते है एवं अध्यातमवादी हैं। कर्म और पुनर्जन्मके सिद्धान्तोको क्रिश्चियनधर्मसे सिद्ध करते हैं एवं सत्यग्राही हैं।

३—एक अमेरिकन धनिक स्त्रीका पुत्र दिवाला निकलनेसे घरसे लापता हो गया। उसकी माताका अपने पुत्रपर परम स्नेह था। वह परमात्माकी परम भक्त थी और ईश्वर-प्रार्थनापर उसका अटल विश्वास था। पुत्रके वियोगमे वह रात-दिन ईश्वर-प्रार्थना किया करती थी। पड़ोसके लोग उसे पागल समझते थे कि इतने वर्षोसे पुत्रके लिये प्रार्थना कर रही है, पुत्र कहीं मर-मरा गया होगा। पागल और व्यर्थ रो-रोकर जीवन-नाश कर रही है; पर उसे प्रार्थनामे दृढ़ विश्वास था। वह घरसे बाहर नहीं निकलती थी। तीस वर्ष बाद एक बूढ़ा व्यक्ति उसका पता पूछता-पूछता उसी गलीमें आया, तलाश करनेपर पड़ोसके लोगोने कहा—'हाँ, यहाँ एक पागल स्त्री रहती है, जो अपने पुत्रके पीछे पागल हो रही है।' वह व्यक्ति वहाँ दरवाजेपर पहुँचा। लड़केने आवाज दी—'मा, मैं आ गया।' माताने तुरंत दरवाजा खोला और तीस वर्षकी प्रार्थनाकी कठिन तपस्याके बलसे उसको अपने पास बुला लिया। अब तो सब लोग उस स्त्रीका बड़ा आदर करने लगे और उसके द्वारा प्रार्थनाका बड़ा प्रचार हुआ। उसका पुत्र इस समय अमेरिकामें प्रसिद्ध धर्मोपदेशक है।

४—अमेरिकामें होलीयोकमें नवीन विचारोंका और ईश्वरवादका प्रचार करनेवाली विश्व-सुप्रसिद्ध श्रीऐलिजावेथ टाउन महोदया हैं। वह नाटिलस नामका नवीन विचारोंका प्रसिद्ध पत्र प्रकाशित करती हैं। इस पत्रके लाखों पढ़नेवाले हैं। प्रत्येक अङ्कमें ईश्वर-प्रार्थना-सम्बन्धी सम्पादकीय महत्त्वपूर्ण लेख रहते हैं और प्रार्थनाके बलसे दुःख, दरिद्रता, रोग आदि मेटनेके अनुभवपूर्ण अन्य लेख छपते हैं। इस

पत्रद्वारा लाखो मनुष्योमे ईश्वर-भाव और उपासनाकी ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट हुआ है और लाखोका जीवन चिन्ता, क्लेश और कष्टसे मुक्त होकर आनन्दमय बना है। डाक्टर थोरो और इमर्सनके बाद एलिजाबेथ टाउन ही नूतन मतकी अग्रगण्य नेत्री है। इन्होने नवीन विचारके कई ग्रन्थ लिखे हैं।

५—इंग्लैंड चिचेस्टरमे मिस्टर हेम्बलिन ईश्वरवादके प्रचारका सराहनीय कार्य कर रहे हैं। आप 'साइन्स आफ थॉट रिव्यू' पत्र प्रकाशित करते हैं, कई पुस्तकोके लेखक हैं और उच्च विचारके परम ईश्वर-भक्त व्यक्ति हैं। इनके जीवन और कार्यसे हजारो मनुष्योके जीवनमें परिवर्तन हुआ और अनेको नास्तिक आस्तिक हो गये हैं। धन्य है, ऐसे नररत्नोको जो ईश्वर-तत्त्वका स्वयं साक्षात्कार करके जनताका कल्याण कर रहे है।

६—डॉक्टर मेयर एक जहाजपर जा रहे थे। तव प्रार्थनासे उत्तर मिलता है या नही, इस विषयमे उनके भाषण होते थे। एक भाषणमे एक नास्तिक उपस्थित थे, उन्होने कहा कि 'मैं आपके एक शब्दपर भी विश्वास नहीं करता।' दूसरे दिनकी बात है, डॉक्टर मेयर तीसरे दर्जेके मुसाफिरोमें भाषण देने जा रहे थे, उनके पीछे नास्तिक महोदय भी हो लिये और अपने पाकेटमे दो नारंगी लेते गये। जब वे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंके पाससे होकर जा रहे थे, तब उन्होने देखा कि एक बृद्धा स्त्री आँखें बंद किये हाथोको फैलाये हुए खूब गाढ निद्रामें सोयी हुई है। नास्तिक महोदय दोनो नारंगी उसके हाथोमे डालकर भाषणमे चलते बने। भाषणसे लौटते समय नास्तिक महोदय देखते हैं कि वह बृद्धा स्त्री आनन्दपूर्वक नारंगी खा रही है। नास्तिक महोदयने कहा—'श्रीमती संतरेके आनन्दका उपभोग कर रही हैं।' उसने जवाब दिया—

'हाँ महाशयजी ! मेरे पिता बडे भले आदमी हैं, उनकी मुझपर बडी कृपा है।' नास्तिकने आश्चर्यसे पूछा—'तुम अस्सी वर्षकी हो, तुम्हारे पिता कैसे जीवित हैं ? तुम कैसी पागलकी-सी बातें करती हो ?' बुढियाने कहा—'महाशय ! मैं कई दिनोंसे समुद्री हवाके रोगसे पीडित हूँ, मैंने अपने परमपिता परमात्मासे प्रार्थना की कि किसी तरह मेरे पास एक नारगी भेज दो। मैं प्रार्थना करते-करते गाढ निद्रामें सो गयी, जब मेरी आँखें खुलीं तब क्या देखती हूँ कि मेरे दयालु पिताने एकके बदले दो नारगी मेरे लिये भेज दीं।'

नास्तिक महोदयने जाते समय मजाकके तौरपर ऐसा किया था, किंतु बुढियाका दृढ विश्वास देखकर वे दग रह गये और उस दिनसे उनकी ईश्वरपर अटल श्रद्धा हो गयी।

७—अभी थोडे दिनोंकी बात है कि अमेरिकामें एक ग्राममें वर्षाके लिये स्त्री-पुरुष सम्मिलित प्रार्थना कर रहे थे, वहाँ वर्षा न होनेसे खेतीको बडी हानि पहुँच रही थी। वे सब मिलकर प्रार्थना कर रहे थे कि उनमेंसे एक बालिका चट भागकर घरपर चली गयी और छाता ले आयी। प्रार्थना समाप्त होनेपर सब लोग चलने लगे। बालिका छाता लगाकर चली, उसपर कई लोग हँस पडे कि 'कैसी पगली लडकी है, कहीं वर्षाका चिह्न नहीं है और यह छाता लगा रही है।' छोटी-सी बालिका कहती है—'हाँ, हाँ, अभी मूसलाधार वर्षा होती है। हमने प्रार्थना की है।' थोडी ही देरमें मूसलाधार वर्षा होने लगी। धन्य है उस बालिकाको, जिसे इतना दृढ विश्वास था।

८—वेल्यारि बाइबलके समय एक स्त्रीने सम्मिलित प्रार्थनामें अपने अत्यन्त शराबी पतिकी शराबकी आदत छुडानेके लिये प्रार्थना की। दूसरोंने भी उसकी प्रार्थनामें योग दिया। उस समय उसका पति

शराबकी दूकानपर बैठा हुआ शराब लेकर पीनेको ही था कि किसी जबरदस्त शक्तिने उसको प्रेरणा करके प्रार्थना-मन्दिरमें भेज दिया। वहाँ जाकर उसने शराब न पीनेकी शपथ ले ली, तबसे जीवनमें उसने शराब कभी नहीं पिया।

इस प्रकारकी नित्य ही अनेकों घटनाएँ प्रार्थना करनेवालोंके जीवनमें घटित होती हैं। इस सब कथनका सारांश यह है कि प्रार्थनामें अमोघ बल है। प्रार्थनासे मनुष्य अपने जीवनमें चाहे जैसा विलक्षण परिवर्तन कर सकता है और उसकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं। सब जगत्का कल्याण हो।

━━ ★ ━━

हनुमानप्रसाद पोद्दार

इन प्रश्नोंपर बहुत बड़े-बड़े प्रात स्मरणीय पूज्यचरण महात्माओं और विद्वानोंने उत्तर लिखने-लिखवानेकी कृपा की है, फिर मुझ-सरीखा व्यक्ति क्या लिखे ! पहले तीन प्रश्नोंपर तो कुछ लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं। कारण, प्रथम तो ईश्वरके स्वरूप और तत्त्वका यथार्थ ज्ञान भगवत्प्राप्त पुरुषोंको ही होता है और जिनको होता है वे भी वाणीद्वारा उसका निर्वचन नहीं कर सकते। दूसरे इन प्रश्नोंके उत्तरमें विशेषज्ञ अनुभवी महात्माओं तथा विद्वानोंके द्वारा यथेष्ट बातें कही जा चुकी हैं। तीसरे मेरा कोई अधिकार भी नहीं। वास्तवमें अनुभवकी दृष्टिसे तो ऐसे प्रश्न ही नहीं बन सकते। इसके सिवा ईश्वरका जो कुछ वर्णन होता है वह अधूरा ही होता है। वर्णनका विषय, ईश्वर, यथार्थ ईश्वर स्वरूपसे बहुत ही नीचे उतरा हुआ होता है। जो बुद्धि-मन-वाणीके परेकी चीज है, उसका कोई क्या वर्णन करे ? निर्गुण रूप स्वसंवेद्य है। सगुण-साकार रूप ऐसा मन-मोहक और पागल बना देनेवाला है, जिसको देखकर जनक-जैसे ज्ञानी राजर्षि चकित और उन्मत्त हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणको पहले-पहल देखकर राजर्षि जनक महर्षि विश्वामित्रसे कहते हैं—

कहहु नाथ सुदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चद चकोरा ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

अतएव इन प्रश्नोंपर मैं कुछ भी न लिखकर चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें कुछ लिखनेकी चेष्टा करता हूँ।

सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान्की सत्ताका प्राणिमात्रको पल-पल और पद-पदपर प्रत्यक्ष होता है। भगवान्की सत्तासे ही सबकी सत्ता है। कहने और सुननेवाला चेतन-सत्ता-धारी प्राणी भगवान्की सत्ताको अस्वीकार कर ही नहीं सकता, जो करता है वह उन्मत्त प्रलाप करता है और प्रकारान्तरसे भगवत्सत्ताकी ही घोषणा करता है।

इसी प्रकार हम जिस स्थितिमें स्थित होकर इस समय क्रिया कर रहे हैं, उस स्थितिमें, ईश्वर केवल सच्चिदानन्दघन होनेपर भी, ईश्वरकी दयाका भी वैसे ही पल-पल और पद-पदपर प्रत्यक्ष होता है जैसे उनकी सत्ताका। भगवान्‌की दयासे मनुष्य अपने जीवनमें ऐसे-ऐसे महान् विलक्षण अनुभव करता है; जिनके सम्बन्धमें सहसा सर्वसाधारणके सामने कहना-सुनना मोहवश अविश्वासके उत्पादन करनेके सिवा और कुछ फल उत्पन्न नहीं करता। जिन दिव्य और अलौकिक रहस्योंको भगवत्कृपासे भगवत्प्रेमी जान पाता है, कहा जाता है कि वे इतने गुह्य, इतने सूक्ष्म और इतने गम्भीर होते हैं कि न तो उनकी किसी लौकिक प्रमाणसे सिद्धि की जा सकती है, न किसीकी लौकिक बुद्धिमें वे बातें आ सकती हैं और न उनके प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता ही होती है।

इतना सब होनेपर भी वे बातें इतनी सत्य, इतनी प्रत्यक्ष और इतने तथ्यकी होती हैं कि दूसरोंको समझाने और उनके सत्य सिद्ध करनेका साधन या उपाय दृष्टिगोचर न रहनेपर भी; जिसको वे प्राप्त होती हैं, उसके लिये वे उतनी ही अपरोक्ष हैं जितना अपने लिये अपना आत्मा। एक मनुष्यको किसी अत्यन्त एकान्त स्थलमें किसीके द्वारा अमरफल प्राप्त हो जाय और वह उसके महान् स्वादका अनुभव करनेके साथ ही उसे खाकर अमर हो जाय, और फिर वह चाहे इस बातको प्रमाणोंसे, युक्तियोंसे सिद्ध न कर सके, तो इससे न तो उसका अनुभव मिथ्या होता है और न उसे दूसरोंको समझाकर उससे सचाईका प्रमाण-पत्र लेनेकी आवश्यकता ही रहती है। इसी प्रकारकी अनेकों रहस्यमयी बातें भगवत्कृपासे भक्तोंके अध्यात्म-जीवनमें हुआ करती हैं, पर उनका पता उनको और उनके भगवान्‌को ही होता है! भगवान् कहते हैं—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

ज्यों-ज्यों मनुष्य भगवत्कृपाका अधिकाधिक प्रत्यक्ष करता है त्यों-ही-त्यों वह भगवत्-रहस्यके राज्यमें प्रवेश करता है, परंतु—

'भगतरसिक' रसिककी बाते,
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।

ऐसी रहस्यकी बातोके विषयमे मैं क्या लिखूँ ? मेरी तो यही प्रार्थना है कि दैवी सम्पदासम्पन्न प्रेमी महापुरुषोके जीवनकी ऐसी ईश्वरकी दयासे होनेवाली दिव्य घटनाओकी सत्यतापर पूर्ण विश्वास करनेमे ही लाभ है।

सासारिक विषयोंमे तो भगवान्‌की दया स्थूलरूपमे भी दर्शन देती रहती है ? परतु मनुष्योको यह एक महाभ्रम हो रहा है कि धन-जन-मन आदि सासारिक वस्तुओकी रक्षा और प्राप्तिमे ही वे भगवान्‌की दया समझते है, उनकी अप्राप्ति और विनाशमे नहीं। वास्तवमे भगवान्‌की दया दोनो ही प्रकारसे होती है। कई बार मनुष्यके जीवनमें ऐसी घटनाएँ होती है, जो उस समय देखनेमें बडी भयानक, अवाञ्छित, दु खदायिनी और अपनी इच्छाके प्रतिकूल प्रतीत होती हैं और उस समय मनुष्य भ्रमवश नारदके मोहकी भाँति भगवान्‌को कोसने भी लगता है, परतु जब उनका अन्तिम परिणाम प्रकट होता है, तब मोह-निशाका नाश होता है और भगवदनुग्रहरूप भुवनभास्करके दिव्य प्रकाशसे उसका मनपद्म प्रफुल्लित हो उठता है। उस समय उसके रोम-रोममें अपने-आप ही भगवान्‌के प्रति हार्दिक कृतज्ञताकी ध्वनि निकलने लगती है, चित्त उस चिन्ताहरण चतुर-चूडामणिके चिन्तनमे सलग्न हो जाता है। वास्तवमें विषयी पुरुषोकी दृष्टिमे जो अशुभ घटनाएँ हैं, वे ही परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें ईश्वर-दयाका एक प्रकारका प्रकाश हैं, जो साधकके यथार्थ कल्याणके लिये ही सघटित होती हैं।

मनुष्यके जीवनमें इस प्रकारकी अवाञ्छित और मनोवाञ्छित फलके रूपमें प्रकट होनेवाली दयाके दर्शन अगणित बार होते हैं, मेरे जीवनमें भी ऐसी अगणित घटनाएँ हुई हैं और हो रही हैं, परतु न तो उन सबका स्मरण ही रहता है और न जिनका स्मरण है उन सबके प्रकाश करनेका स्थान, सुअवसर और सकल्प ही है। यहाँ सिर्फ मौतके मुँहसे बचनेकी तीन घटनाओंका वर्णन करना

चाहता हूँ, जिनसे भगवान्‌की सत्ताका कुछ पता लगता है।

(क) सन् १८९६ ई० में आसाममे भयानक भूकम्प हुआ था, उस समय मेरी उम्र लगभग चार वर्षकी थी। शिलांग (आसाम) में हमारा कारबार था। मेरे दादाजी कनीरामजी वहाँ रहते थे। पिताजी कलकत्तेका कारबार सँभालते थे। माताजीकी बहुत छोटी उम्रमे मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीजीने मुझको पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एवं उन्होने मेरे लिये जितने कष्ट सहे, उसका बदला मैं हजार जन्म सेवा करके भी नहीं चुका सकता। उनके जीवित रहते मैंने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया, अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं। जिनके माता-पिता आदि जीते हैं, उन्हें बड़ा सौभाग्य प्राप्त है, वे जीभर उनकी सेवा करके आनन्द लूट लें, नहीं तो पीछे मेरी तरह पश्चात्तापके सिवा प्रत्यक्ष सेवाका और कोई साधन नहीं रहेगा। अस्तु, मै दादीजीके पास शिलागमें रहता था। मेरी एक बूआ भी वहीं आयी हुई थीं, उनके दो सतान थीं—एक कन्या और एक पुत्र। वे दोनों मेरे समवयस्क थे। हम तीनों साथ-साथ खेला करते। भूकम्पके दिन हमारे निकटवर्ती श्रीभजनलाल श्रीनिवासके यहाँ किसी व्रतका उद्यापन था। उनके यहाँ हमे भोजन करने जाना था। बूआजीके दोनो बालकोने जानेसे इन्कार कर दिया, मै अकेला ही गया, वे घरपर रह गये। संध्याका समय था, लगभग पाँच बजे होंगे। मैंने श्रीभजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पीछे रसोईमे जाकर भोजन किया, रसोईसे निकलकर गोलेमे घुस ही रहा था कि धरती बडे जोरसे काँप उठी। मैं चिल्लाया और मेरे आसपास पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। सारा मकान क्षणोमें ही भूमिसात् हो गया। मै दब गया। परतु आश्चर्य ! मेरे चारों ओर पत्थर हैं, उनपर एक तख्ता आ गया और उसके ऊपर पत्थरोका पहाड। मै मानो खोहमे—काली गुफामें पड़ गया। पता नहीं, वायुके आने-जानेका रास्ता कैसे रहा, परंतु

मैं मरा नहीं। भूकम्प बद होनेपर मूसलधार वर्षा हुई और उसी समय हमारे बगलके एक गोलेमें आग लग गयी, चारों ओर हाहाकार मचा था। कौन दबा, कौन बचा कुछ पता नहीं। दादाजी हम तीनो बालकोंकी खोजमे लगे। मेरी बूआके दोनो बालक गोलेके पत्थरोंके नीचे मरे मिले। मेरी बडी बूआजीके पौत्र मुझसे कुछ बडी उम्रके श्रीराम गोयनकाकी भी लाश मिली, ढूँढते और पुकारते दादाजी भजनलाल श्रीनिवासके गोलेके पास आये। वे बडे जोरसे पुकार रहे थे—'मन्नू मन्नू।' मैंने आवाज सुन ली। नन्हा-सा बालक था, भयभीत था, रो रहा था, परतु न मालूम किस प्रेरणासे मैंने शक्तिभर जोरसे उत्तर दिया, 'यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये ?' पत्थरोंका ढेर हटाया गया। मैं निकलकर दादाजीकी गोदी चढ गया, उन्होने हृदयसे लगा लिया। दोनो रोने लगे। उनके रोनेके कई अर्थ थे। दादीजी तबतक अपने इष्ट श्रीहनूमान्जीको याद कर रही थीं। हनूमान्जीने उनकी पुकार सुनी—बूआजीके बालकोंके दबनेका दु ख क्षणभरके लिये कुछ हल्का हो गया।

तबसे शिलागमें पत्थर-चूनेसे मकान नहीं बनते। प्राय तख्ते और टीनोके ही होते हैं।

(ख) सन् १९१९ की बात है, मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफाजी श्रीलक्ष्मीचन्दजी लोहियाके घरपर, जो बम्बईसे कुछ दूर बी॰ बी॰ एण्ड सी॰ आई॰ रेलवेके शान्ताक्रुज-स्टेशनके प॰ श्रीशिवदत्तरायजी वकीलके बँगलेमे रहते थे, जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है, रातको करीब ८ बजे थे, कृष्णपक्षकी अँधेरी रात थी। मैं लोकल ट्रेनसे जाकर शान्ताक्रुजके प्लेटफार्मपर उतरा। अब तो दोनों ओर प्लेटफार्म है। उस समय एक ही ओर था और रोशनीका भी प्रबन्ध नहीं था। न इंजिनके सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्तरायजीके बँगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन लाँघकर उस ओर जाना पडता था। मैंने बेवकूफी की। दौडकर इंजिनके सामने लाइन पार करने चला। लोकल ट्रेन एक ही मिनट ठहरती है।

मैं नया था, मैंने समझा, गाडी छूटनेसे पहले ही मैं लाइन पार हो जाऊँगा। परतु ज्यो ही मैंने लाइनपर पैर रखा त्यों ही गाडी छूट गयी, परतु ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय, किसी अज्ञात पुरुषने मेरा हाथ पकडकर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जाकर गिर पडा, गाडी सर्राटेसे निकल गयी। तीन काम साथ हुए—मेरा लाइन लाँघने जाना, गाडी छूटना और अज्ञात व्यक्तिद्वारा खींचा जाना, एक-ही-दो सेकडके विलम्बमें मेरा शरीर चकनाचूर हो जाता, परतु बचानेवाले प्रभुने उस अँधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रवन्ध कर रखा था। मै थर-थर काँप रहा था, ईश्वरकी दयालुतापर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। आँखोसे आँसू बह रहे थे। मैंने स्टेशनके धुँधले प्रकाशमें देखा, एक नौजवान बोहरा मुसलमान खडा हँस रहा है और बडे प्रेमसे कह रहा है—'आइदा ऐसी गलती न करना, आज भगवान्‌ने तुम्हारे प्राण बचाये।' मैंने मूक अभिनन्दन किया, कृतज्ञता प्रकट की। लाइनपर रोडोंमे गिरा था, परतु दाहिने पेरमे एक रोडा जरा-सा गडनेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं लगी। मैं दौडकर घर चला गया और ईश्वरको याद करने लगा।

(ग) सन् १९२६ की बात है। मै लक्ष्मणगढ़ (जयपुर) के भाई श्रीलच्छीरामजी चूडीवालाके धन और परिश्रमसे स्थापित ऋषिकुलके उत्सवमे शरीक होनेको बम्बईसे जा रहा था। अहमदाबादसे दिल्ली एक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ। मैं सेकड क्लासमे था, मेरे साथ एक छोटा ब्राह्मण-बालक ऋषिकुलमें भर्ती होने जा रहा था। मै इधरकी एक सीटपर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अदाज पाँच बजे थे। ब्यावर-स्टेशनपर एक टी० टी० महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। मैं जिस सीटपर सोया था, उसीपर मेरे पैरोके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था, अपने पैरोंके पास किसीका बैठना मुझे अच्छा नहीं लगा, इससे शिष्टाचारके नाते मे उठ बैठा। सोया था तब मेरा सिर सीटकी अन्तिम तीसरी खिडकीके पास था, जागकर बैठा तो वह खिडकी खाली हो गयी, मैं बीचकी खिडकीके पास बेठ

गया और टी॰ टी॰ महोदय इधरकी तीसरी खिडकीके पास बैठे थे। तीनो खिडकियाँ बद थी। मै टी॰ टी॰ महोदयके साथ बाते कर रहा था। इतनेमे ही पीछेसे बडे जोरकी आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण-बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौंचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो मालूम हुआ कि एक बहुत बडा पत्थर खिडकीके कॉंचके लगा। खिडकीका बहुत मोटा कॉंच चूर-चूर हो गया और उसके टुकडे उछल-उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा-सा टुकडा बालकके सिरमे लगा था, इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिडकीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और कॉंचकी चोटसे टूट जाता, परतु बचानेवालेने टी॰ टी॰ महोदयको भेजकर मुझे प्रेरणा की, मै बैठ गया और बच गया। यह घटना अजमेरके पास मकरेरा और सरधना स्टेशनके बीचकी है। टी॰ टी॰ महोदयने कहा कि यहॉं अक्सर ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। अजमेरमे टी॰ टी॰ महोदयने कमरा साफ करवाया और उन्हींकी कृपासे मैं शीशा तोडनेके इलजामके बखेडेसे सहज ही बच गया।

अपने ही सम्पादकत्वमे निकलनेवाले ग्रन्थमे, अपने ही किये हुए प्रश्नोंके उत्तरमें, अपने ही जीवनकी घटनाओका वर्णन लिखना धृष्टता है। लिखना नहीं चाहता था, परतु कुछ मित्रोंकी इच्छा देखकर अन्तमें सक्षेपमें दो-चार बातें लिख दी हैं। विद्वान् गुरुजन और पाठकगण क्षमा करें।

—★—

पण्डित श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, काशी

(१)

यह उस समयकी घटना है जब मैं चौदह वर्षका था। पंजाब गया था। वहाँ मेरे ननिहालके लोग आये और मुझे घोड़ेपर सवार कराकर ले चले। मैंने अपने ठाकुरजीको भी साथ ले लिया था। रास्तेमें मेरे अन्य साथियोंने अपने-अपने घोड़े दौड़ाये। मेरा घोडा भी उनके पीछे दौड़ने लगा। मुझे सवारी करनेका पूरा अभ्यास न था, इससे मैं थोड़ी ही दूर जाकर घोडेसे गिर पड़ा। पास ही एक नहर बड़े वेगसे वह रही थी, मेरे ठाकुरजी उसमे जा गिरे।

उठनेके बाद मैंने सबसे पहले ठाकुरजीको खोजा। बहुत छान-बीन की, पर पता न लगा। फिर तो मैं अधीर हो उठा। मेरे साथियोंने मुझे बहुतेरा समझाया-बुझाया, पर मेरी अधीरता बढ़ती ही गयी। वह लोग मुझे समझा-बुझाकर अपने घर गये और मैं अपने मामाके घर गया। परंतु ठाकुरजीका वियोग मुझे असह्य था। मैं अनाथके समान व्याकुल होकर रोता रहा। मुझे खाने-पीनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। मेरे मामाके घरमे सब लोग मेरी इस अवस्थासे बहुत ही उदास हो गये। भोजनके लिये जब उन लोगोंने आग्रह किया तो मैंने कह दिया कि अब तो जबतक ठाकुरजी न मिलेंगे, अन्न ग्रहण न करूँगा।

सन्ध्याको मेरे माता-पिता भी आ गये। मुझे रोता हुआ देखकर उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और जबरन् दूध पिलाया। दूधके घूँट बड़ी कठिनाईसे मेरे गलेके नीचे उतरे। रोते-रोते सन्ध्या हो आयी और रोते-ही-रोते मैं रातको सो गया।

सोनेपर मुझे एक स्वप्न दीख पड़ा। एक सुन्दर पुरुष मेरे

ठाकुरजीको हाथमे लिये हुए आया और उसने मुझसे कहा—'लो अपने ठाकुरजीको। पहचानो तो, यही न तुम्हारे ठाकुरजी ?' मैंने उनके हाथसे अपने ठाकुरजीको ले लिया और मैं मन-ही-मन आनन्दित हो उठा। परतु नींदके टूटते ही न तो वह मनुष्य ही रहा और न ठाकुरजी ही मेरे पास रहे। मैं पछताने लगा और फिर मुझे निराशाने आ घेरा।

दूसरे दिन प्रात काल दो घण्टे दिन चढनेपर खबर मिली कि ठाकुरजी मिल गये। घटना इस प्रकार हुई कि जिस समय मेरे ठाकुरजी नहरमे गिरे थे, उस समय उसमे बाढ आयी थी। फिर पीछे पानी कम हो गया। वहाँ एक स्त्री अपने एक लडकेको साथ लेकर वस्त्र धोनेके लिये गयी। ठाकुरजीके खोने और मेरे रोनेकी खबर तो फैल ही रही थी, बालकने ठाकुरजीको किनारे पाया और उस स्त्रीने उससे उन्हे लेकर एक आदमीके द्वारा शीघ्र ही मेरे पास भेजवा दिया।

अपने खोये हुए ठाकुरजीको पुन पाकर मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर तो ठाकुरजीकी पूजा करके और उनका प्रसाद पाकर मैं कृतार्थ हो गया। मुझे इस घटनाका वर्णन भेजते समय डर लग रहा है, कहीं मैं दण्डनीय न बनूँ।

(२)

करीब साठ वर्षकी बात है। बाबू शिवदयालजी अपनी पत्नीको साथ ले पजाबसे काशी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होने यह निश्चय किया कि परमात्मा जैसे रखेंगे, वैसे ही रहकर निर्वाह करेंगे पर मोक्षदायिनी काशीको न छोड़ेंगे। मोहल्ला नीची ब्रह्मपुरीमें उन्होंने एक छोटा-सा मकान खरीदा। साधारण कारोबार शुरू किया और सदाचारपूर्वक सरलतासे भगवान्‌का भजन करते हुए भगवत्-शरण होकर जीवन बिताने लगे।

एक दिन रात्रिको उन्हे एक स्वप्न हुआ। आनन्द-कन्द नन्द-नन्दन

मुरलीमनोहर श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन्हे दर्शन देकर कहा—'भाई ! मैं तुम्हारे मकानकी दीवालमे हूँ। पास ही नाली बह रही है। उससे बडी दुर्गन्ध आती है। मुझे यहाँसे निकालो।' इस स्वप्नके देखते ही शिवदयालजीकी आँखे खुल गयी। सामने देखा तो वह परम मनोहर मूर्ति गायब है। इस विचित्र स्वप्नसे उन्हे बडा ही कुतूहल हुआ। नाना प्रकारके सकल्प-विकल्प मनमे उठने लगे। सबेरा होते ही उन्होने कुछ विद्वानोसे इस विषयपर सम्मति माँगी। एक विद्वान्ने कहा—'भाई ! स्वप्नकी बात है, इसमे क्या कहा जाय ? हाँ, आज भगवान्की प्रार्थना करके सोना, यदि पुन वैसा ही स्वप्न हुआ तो कल विचार किया जायगा।' पण्डितजीको विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने यह कहकर सरल शिवदयालजीको टाल दिया।

उन्होने वैसा ही किया। सोनेके पूर्व पवित्रतापूर्वक शुद्ध हृदयसे भगवान्की प्रार्थना करके सोनेपर पुन वैसा ही स्वप्न हुआ। भगवान्ने पुन उसी मनोहर मूर्तिसे दर्शन दिया और बोले—'तुम दूसरे लोगोसे क्यो पूछते हो ? क्या मै तुम्हे व्यर्थ ही आदेश देता हूँ ?'

बस, क्या था ! शिवदयालजी चौंककर उठ बैठे और भगवत्-स्मरण करते हुए उन्होने ज्यो-त्यो रात बितायी। प्रात होते ही राजोंको बुलाकर मकान खुदवाना शुरू कर दिया। उनके इस कामको देखकर पडोसके लोग तरह-तरहकी बाते करने और हँसने लगे। इतनेमे एक मजदूरने जैसे ही दीवालमे एक झटका मारा, वैसे ही चूनेके एक ढेलेमें सटी हुई भगवान् *वृन्दावन-बिहारीलालकी एक मनोहर स्वर्ण-मूर्ति यकायक नीचे गिरी।* उस समय वहाँ कितने ही स्त्री-पुरुष-बच्चे खडे थे। श्रीशिवदयालजीकी छोटी कन्या भी, जिसका नाम मुन्नादेवी था, वहाँ खडी थी, उसकी निगाह उस ढेलेमें चिपकी हुई मूर्तिके ऊपर पडी और उसने शीघ्र ही कहा—'देखिये बाबूजी, यह क्या चीज है ?'

शिवदयालजीने जो भगवान्‌की उस स्वर्णमयी मनोहर मूर्तिको देखा, वह आनन्दसे उछल पड़े। उनके हर्षका पारावार न रहा। वह प्रेम-गद्गद हो उठे, आँखोंसे अश्रुधारा बह चली। भगवान्‌की उस मूर्तिको ढेलेसे अलग करके विद्वानोको बुलाकर उन्होने विधिपूर्वक पूजा करके एक घरमे स्थापित किया। उसी दिनसे दम्पति श्रीभगवान्‌की सेवामे तन-मन-धनसे लग गये। दिन-रात ठाकुरजीकी चर्चा और अर्चामे बीतने लगे।

अब भगवान्‌की कृपासे उनके व्यवहारमे भी उन्नति होने लगी। कुछ ही दिनोमे उनके पास काफी सम्पत्ति हो गयी। उन्होंने उस मकानको नये ढगसे बनवाया। चौमासा, सर्दी, गर्मीके लिये ठाकुरजीके निमित्त भाँति-भाँतिके सामान, शृङ्गार आदिके समारोहमे ही उनके दिन बीतने लगे। अब तो उनकी निष्ठा इतनी बढी कि जो कुछ करना होता सब भगवान्‌के आगे निवेदन करते और उनसे जो आदेश होता उसीके अनुसार आचरण करते।

सुख-दु ख, शादी-गमी सब प्रकारके व्यवहारमे ठाकुरजीकी आज्ञाका पालन करते हुए उन्होंने अपने जीवनमें अन्त समयतक भगवान्‌की सेवामे ही शान्ति लाभ किया।*

भगवान्

इस 'ईश्वराङ्क' में ईश्वरके सम्बन्धमे अनेक ऐसे-ऐसे पूज्यचरण सन्तो, महात्माओं, विद्वानों और गुरुजनोंके लेख प्रकाशित हो रहे हैं कि जिनकी पवित्र चरण-धूलिको मस्तकपर चढाकर मुझे अपना जीवन सफल करना चाहिये। इनमें कई महानुभाव तो ऐसे हैं, जिनके चरणोंमें बैठकर

* पूज्य शास्त्रीजी महाराजने कृपा करके काशीमें मुझे भगवान्‌के इस मूर्तिके दर्शन कराये थे।—हनुमानप्रसाद पोद्दार

आजीवन उपदेश ग्रहण करना मेरे लिये परम सौभाग्यका विषय है। ऐसी अवस्थामें मैं क्या लिखूँ ? मुझमें न तो योग्यता है और न कुछ लिखनेको मेरे लिये रह ही गया है। तथापि कुछ प्रेमी मित्रोकी अभिलाषा देखकर मैं बहुत ही संक्षेपमे अपने विचार लिख रहा हूँ।

१-सच्चिदानन्दघन परमात्मा स्वयं ही अपने स्वरूपके ज्ञाता है, वे अनिर्वचनीय है, अनुभवगम्य है।

२-भगवान् ही सब कुछ है, भगवान् ही सब रूपोमे भासते है, भगवान् ही अपनी मायाशक्तिके द्वारा सब रूपोमे परिणत है, भगवान्मेसे ही सबकी उत्पत्ति है,उन्हींमें सबका निवास है, उन्हींमें सब लय होते हैं। सृष्टि-स्थिति-प्रलयके आधार, निवास और कर्त्ता वही है। वे सत् है, सत्-असत् है, सत्-असत् दोनोसे परे हैं। सब कुछ उनमे है, वे सब कुछमे है, 'सब कुछ' कुछ नहीं है, केवल वे ही हैं। ये सभी बाते अपनी-अपनी सीमामे सत्य है। इतनेपर भी भगवान् इन सबसे विलक्षण हैं। जितना भी परमात्माके स्वरूपका वर्णन होता है, सब शाखाचन्द्रन्यायसे उनका लक्ष्य करानेके लिये ही है।

३-भगवान् सर्वाधार, सर्वव्यापी, सर्वेश्वर, सर्वशिरोमणि, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, सर्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, सत्य, शिव, सुन्दर, गुणातीत और कालातीत हैं। वे निर्गुण है, सगुण है, निराकार है, साकार है, दोनोसे परे है, उनमे सब कुछ सम्भव है। अनवकाशमे अवकाश और अवकाशमे अनवकाश कर देना उनकी लीलामात्र है। वे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थ हैं।

४-वे एकदेशीय, एककालीन न होते हुए ही अवतार लेते है, प्रकट होते है, भक्तको उसके इच्छानुसार दिव्य साकार दिव्य विग्रहमे दर्शन देकर कृतार्थ करते है। यह सर्वथा सत्य है। वे परम दयालु, परम सुहृद, परम न्यायकारी, परम पिता, स्नेहमयी माता, स्वामी, सखा सब है। वे पतितपावन, दीनबन्धु, अशरणशरण, भक्तवत्सल हैं, इसीलिये अपना

दिव्य साकार रूप प्रकट करते हैं। वे सम, उदासीन, ५५. .ले सबके आश्रय, शुभ-प्रेरक, अशुभ-बाधक, रक्षक, ोग‍े . , शरणागतवत्सल, प्रेममय और पावनकर्ता हैं।

५-उनको प्राप्त करनेके अनेक मार्ग हैं, अपने-अपने अ अनुसार मार्गोंका अनुसरण होता है। अनेकों नाम-रूपोसे आख्या भगवान् वास्तवमे एक ही है, उनको पानेके मार्ग भिन्न-भिन्न है। जै भगवान्‌की एकतामे कभी द्वैत नहीं हो सकता, ऐसे ही सभी मार्गोंव कभी एकता नहीं हो सकती। लक्ष्य स्थान एक हे, परतु वहाँ पहुँचने पथ सदा ही अलग-अलग रहेगे।

६-अपने-अपने पथपर चलकर सबको भगवान्‌की ओर अ बढना चाहिये। मनुष्य-जीवनका यही परम और चरम उद्देश्य है।

७-जो इस उद्देश्य-सिद्धिमे लगे हैं वही बुद्धिमान् हैं, शेष स लोग भूलमे हैं। इस भूलका परिणाम महान् दु खदायी होगा।

८-ईश्वरके न होनेकी बात करना और सुनना वस्तुत महापाप इस महापापसे सबको सदा बडी सावधानीके साथ बचना चाहिये

९-'ईश्वर हैं' यह विश्वास दृढ और पूर्ण होनेपर सारे दोष आप मिट जायँगे और सदाके लिये परम शान्ति प्राप्त हो जायग ईश्वर-कृपापर भरोसा करनेसे ही ईश्वरमे विश्वास होगा।

१०-इसके लिये सन्त-महात्माओं और शास्त्रोंकी वाणी विश्वासपूर्वक श्रवण, मनन करना चाहिये तथा शरणागत हो भगवान्‌से आर्त प्रार्थना करनी चाहिये।

११-भगवान्‌के नामका जप प्रेमसहित सदा करते रहना चाहि जीवन बीता जा रहा है। यह व्यर्थ चला जायगा तो फिर पछतावे पार नहीं रहेगा।

विनीत—हनुमानप्रसाद